डा० भीमराव अम्बेडकर का भारतीय राजनीतिक दर्शन में योगदान



बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी०एच०डी० (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

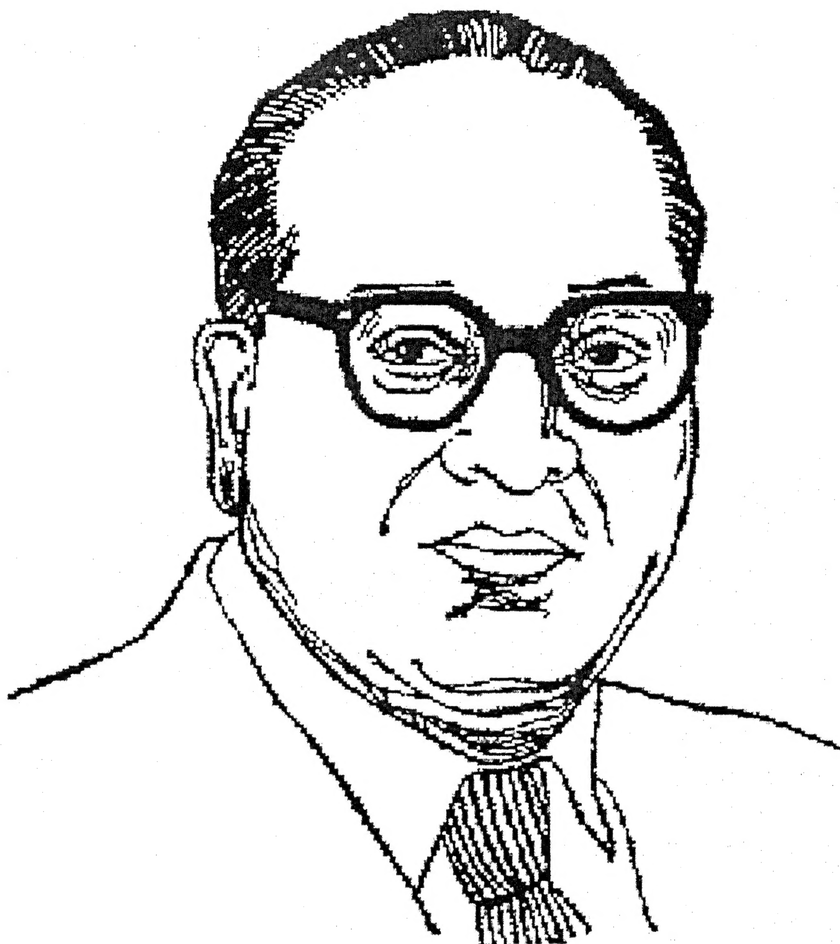
शोध प्रबन्ध

2002



निर्देशिका :
डा० जयश्री
विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ०प्र०

शोधकर्ता :
भास्कर अवस्थी



CERTIFICATE

It is certified that the thesis entitled "डा० भीमराव अम्बेडकर का भारतीय राजनीतिक दर्शन में योगदान" is being submitted by **Bhasker Awasthi** for the award of Ph.D. in Political Science of Bundelkhand University (U.P.). This is a record of candidate's work carried under my supervision and guidance. He has worked under me for the period, required under ordinance, (more than 200 days).

It is also to certify that this is his original work and has never been submitted for the award of any degree in any University.

(Dr. Jayshree)

Date 29.12.02

Head of the Department of
Political Science
D. V. (Post Graduate) College,
Orai (U.P.)

DECLARATION

I hereby, solemny declare that the present thesis entitled "डा० भीमराव अम्बेडकर का भारतीय राजनीतिक दर्शन में योगदान" submitted by me for the Degree of Ph. D. in Political Science to the Bundelkhand University, Jhansi, is my own work and has not been submitted earlier. however, if anything contrary to this declaration is found later on, I shall be fully responsible for the consequences thereof.

Bhasker Awasthi

Bhasker Awasthi

Date ...29-12-02...

आभार प्रदर्शन

मै डा0 जयश्री विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान, दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई का ह्रदय एवं आत्मा से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके कुशल निर्देशन में मैंने शोध प्रबन्ध तैयार किया। शोध प्रबन्ध के निर्माण में उनके मूल्यवान निर्देश, उपयोगी सुझाव, तार्किक प्रणाली एवं प्रेरणास्पद मार्ग दर्शन के कारण अभियोजित अध्ययन पूर्ण हो पाया हैं।

मैं डा0 राजेन्द्र पुरवार जिनका कृतित्व एवं व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही मुझे प्रभावित करता रहा हैं, का ह्रदय से आभारी हूँ। उन्होंने इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में अपना मूल समय निकालकर मेरा मार्ग दर्शन किया है। मैं डा0 रिपुसूदन सिंह, डा0 आदित्य कुमार एवं डा0 रामलखन विश्वकर्मा का विशेष आभारी हूँ, जिनके रचनात्मक सुझावों, मार्गदर्शन एवं सहयोग से प्रस्तुत शोध में उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई। मैं इसी कड़ी में अपने ताऊ डा0 जे0डी0 अवस्थी, पं0 प्रभुदयालु नायक, डा0 शैलजा गुप्ता का भी उल्लेख करना चाहूँगा, जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मैंने इस अध्ययन को पूर्ण किया।

मैं अपनी पूज्यनीय माताजी एवं पिताजी के चरणों का वन्दन करता हूँ, जिनके स्नेह, आशीर्वाद एवं सतत् प्रेरणा से मेरा प्रयास पूर्णता को प्राप्त हो सका। मैं अपने ताऊ श्री इन्देश्वर दयाल अवस्थी, बड़े भाई श्री प्रमोद तिवारी एवं श्री प्रभाकर अवस्थी का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने रचनात्मक सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया।

मैं अपनी भाभी एवं अपने परिवार के प्रमुख सदस्यों प्रशान्त, यशी एवं सक्षम के स्नेहपूर्ण विशेष सहयोग का भी आभारी हूँ। मैं अपनी जीवन संगिनी साधना का भी विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने अपने शोध प्रबन्ध एवं गृह कार्यो के मध्य में भी मुझे अथक सहायता प्रदान की।

मैं निम्न संस्थाओं के प्रभारी एवं कर्मचारियों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने आवश्यक सामग्री प्रदान करने में आत्मीय भाव से सहयोग दिया।

1. तीन मूर्ति भवन, नेहरू स्मृति पुस्तकालय, नई दिल्ली
2. संसद पुस्तकालय, संसद भवन, नई दिल्ली
3. जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
4. मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़
5. इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद
6. जानकीबाई पुस्तकालय, उरई
7. राजकीय जिला पुस्तकालय, उरई
8. गाँधी महाविद्यालय पुस्तकालय, उरई
9. दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, पुस्तकालय उरई

मैं उन समस्त व्यक्तियों एवं संस्थाओं जिन्होंने आवश्यक सामग्री प्रदान करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया, आभार व्यक्त करता हूँ। मैं हर्ष प्रिन्टर्स एवं अहतिशाम अहमद खॉ के विशेष सहयोग का भी आभारी हूँ।

मैं अपने स्व0 नानाजी जिनके सामने इस प्रयास का शुभारम्भ हुआ था, को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

अन्त में मैं सर्वशक्तिमान परमेश्वर, जिसने मुझे प्रतिक्षण शक्ति प्रदान की, जो समस्त जगह व्याप्त है, के सामने श्रद्धानत् हूँ।

Bhaskar Awasthi

दिनॉक 29-12-02 भास्कर अवस्थी

अनुक्रमणिका

साथ जीने के लिए दलितों में आशा की किरण जगा दी। जहाँ कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग को राज करने का सपना दिखाया, डा0अम्बेडकर ने भारतीय समाज के वंचित वर्गों में उसी तरह से अपनी अधिकारों एवं न्याय को प्राप्त करने की जाग्रति पैदा की । वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था इसकी साक्षी है। सत्ताधारी वर्ग एवं दमनकर्ताओं के मन में भी वंचितों को उनके अधिकार देने के लिये चेतना जगायी ।

डा0अम्बेडकर ने राजनीतिक प्रजातंत्र को स्थापित करने में सक्रिय सहयोग किया एवं दलितों के सामाजिक,आर्थिक एवं राजनीतिक अधि ाकारों के लिये संघर्ष किया। उनका प्रखर मानवतावादी विचार, आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन विश्व को अनुपम देन है। इस शोध के विषय को आज की ज्वलंत समस्याओं से संदर्भित करने का भी प्रयास किया गया है।

अतः प्रस्तुत शोध महान सामाजिक दार्शनिक,अर्थशास्त्री,दलित उद्धार आन्दोलन के प्रणेता एवं राजनीतिक चिंतक डा0अम्बेडकर के समग्र दर्शन को समाविष्ट करने की दिशा में एक लघु प्रयास है,जिसका सर्वोपरि लक्ष्य श्रेयस्कर मानवीय सभ्यता के निर्माण के परिप्रेक्ष्य में उनके दर्शन के महत्व एवं औचित्य का विश्लेषण करना है।

प्रथम अध्याय

जीवन दर्शन

(१) प्रारम्भिक जीवन
(२) सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि
(३) अन्य दार्शनिकों का प्रभाव

डा0 भीमराव अम्बेडकर एक प्रबुद्ध दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री एवं समाज सुधारक भी थे। मानव जीवन एवं समाज के हर आयाम को उन्होंने स्पर्श किया है। व्यक्ति के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पहलुओं पर उन्होंने समान रूप से विचार किया। उनका चिंतन समाज सुधार एवं राजनीति दोनों की ओर निःसृत हुआ। उनके विचार एक नवीन सामाजिक क्रान्ति का सूत्र पात्र करते है। संविधान की रूप–रेखा के निर्माता के रूप में उनकी अद्वितीय भूमिका रही। इसमें उनके राजनीतिक चिंतन की झलक दिखाई पड़ती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य उनके जीवन दर्शन के विविध आयामों का समीक्षात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है।

1. प्रारम्भिक जीवन :–

डा0 भीमराव अम्बेडकर का जन्म रत्नगिरी जिले में इन्दौर के निकट मऊ गांव में 1891 में हुआ था।[1] इनके पिता रामजी राव फौज में सूबेदार थे। डा0 अम्बेडकर के केवल दो भाई आनंदराव एवं बसंतराव तथा मंजुला एवं तुलसी दो बहनें थी। लोग भीमराव को देखकर कहते थे कि बच्चा काफी होनहार है। इसके पाँव पालने में ही दिख रहे है। यह दुनिया में नाम करेगा।[2] डा0 अम्बेडकर के जन्म पर रामजी सकपाल के चाचा ने भविष्यवाणी की थी, कि जिस पुत्र का जन्म होगा वह विश्वविख्यात होगा। रामजी सकपाल के चाचा सन्त थे। भीमराव की माँ भीमाबाई कबीर पंथी थी। पिता धार्मिक आचरण वाले थे। डा0 अम्बेडकर पर परिवार के परिवेश का काफी असर पड़ा। उसका परिणाम यह था, कि आगे चलकर उनमें कबीर की अक्खड़ता, तुलसी की विनम्रता एवं सहनशक्ति,

1. बी0 एल0 ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 – 488
2. कमल शुक्ल, डा0 अम्बेडकर पृ0 – 09

मीरा की आत्मैक्यता एवं सूर की वत्सलता तथा मधुरता जीवन्त हो उठी। वे परिवार के संस्कारों के परिणाम स्वरुप कभी अन्याय एवं अत्याचार के आगे नहीं झुके।

महाराष्ट्र में महार जाति अछूत मानी जाती है। पूर्व में यह जाति अपनी वीरता के लिये विख्यात थी। इस जाति के लोग बहादुर, र्निभीक, प्रतिभाशाली, साहसी एवं सक्षम व्यक्तित्व के धनी थे। डा0 अम्बेडकर के दादा मौलाजी सकपाल महार जाति के एक अच्छे परिवार से थे। कुछ विद्वान "महार" शब्द से ही महारोराष्ट्र (महाराष्ट्र) की उत्पत्ति मानते हैं।[1]

अम्बेडकर का पूरा नाम "भीमराव रामजी राव अम्बेडकर" था। इसके तीनों शब्द 'भीम', 'रामजी' एवं 'अम्बेडकर' अपने पीछे कहानियाँ लिये है। उनकी माता का नाम भीमाबाई था, जिसमें से 'भीम' शब्द लिया गया था। पिता का नाम रामजी राव था, इससे 'रामजी' शब्द लिया गया था। इस प्रकार माता पिता के नामों को आगे–पीछे जोड़कर रखा गया। अम्बेडकर शब्द की अलग कहानी है। अम्बेडकर के गाँव का नाम अम्बावड़े था। इस कारण उनके पिता ने उनका नाम अम्बावड़ेकर लिखवाया था। यह नाम काफी समय तक चलता रहा। हाईस्कूल में अम्बेडकर के एक ब्राह्मण शिक्षक थे, जिनका उपनाम अम्बेडकर था। वे शिक्षक उदार, मानवताप्रेमी एवं सहृदय थे। वे भीम को काफी स्नेह करते थे। वे प्रतिदिन मध्यावकाश में बालक भीम के लिये अपने साथ ही घर से भोजन सामग्री लाने लगे। इस भोजन में बालक भीम एक अजीब मिठास महसूस करते थे। यहीं एक सुखद घटना घटी, कि उस ब्राहमण शिक्षक ने अछूत बालक भीम को इतना प्यार दिया कि, उसे अपना उपनाम भी दे दिया। उन शिक्षक ने बालक भीम को अपना उपनाम 'अम्बेडकर' अम्बावड़ेकर की जगह दे दिया।[2] बडे होकर डा0 अम्बेडकर ने

---

1. शंकरानन्द शास्त्री, युगपुरुष बाबा साहेब डा0 भीमराव अम्बेडकर, पृ0 – 16
2. डा0 धर्मवीर, बालक अम्बेडकर, पृ0 – 12

इस शिक्षक द्वारा लिखे पत्रों को जीवन पर्यन्त सहेज कर रखा। यह पत्र उनके जीवन की महान सम्पत्ति थे। उनके इस नाम के कारण ही प्रारम्भ में महात्मा गाँधी ने भी उसे कोई ब्राह्मण युवक ही समझा था।[1]

इन दिनो बालक भीम के मन में गहरा अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। उनकी माँ की मृत्यु के बाद पिता ने दूसरी शादी कर ली थी। इसका बालक भीम पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे माँ के स्थान पर दूसरी स्त्री को स्वीकार नहीं कर पाये।[2] इसी घटना के कारण वे पिता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी जीवन की योजना बनाने लगे। उनमें प्रारम्भ से ही आत्म विश्लेषण एवं आत्मनिरीक्षण की शक्ति थी।

बाल्य जीवन के विचार :–

डा0 अम्बेडकर के घर में पूरी तरह निर्धनता छाई थी। भीमराव ने कुछ कमाने का विचार किया। वे सुन चुके थे, कि बम्बई के कपड़ा मिलों में सबको काम मिल जाता है। उन्होंने बम्बई जाने का मन बनाया, ताकि घर की आर्थिक स्थिति सही हो सके। इस हेतु उन्होंने बुआ के बटुए से पैसा चुराने की सोची, जो बुआ के जाग जाने के कारण नहीं हो सका।[3] बुआ ने बालक भीम को बम्बई (मुम्बई) न जाने के लिये समझाया। बुआ ने दिवंगत माँ की आखिरी बातों को दुहराते हुये बताया कि उन्हें बड़ा आदमी बनना है। अंग्रेज एवं समाज व्यवस्था से बदला लेना है। सभी के कष्टों से मुकाबला करने वाला सक्षम व्यक्ति बनना है। इस प्रकार बुआ के शब्दों से भीम की पीड़ा कम हुई। उन्होने पढ़ाई के लिये दृढ़ निश्चय किया। बुआ बिना पढ़ी–लिखी होते हुये भी बालक भीम का खूब ख्याल रखती थी। परीक्षा में पास होने पर भीम को खूब प्यार करतीं।

---

1. डा0 धर्मवीर, बालक अम्बेडकर, पृ0 – 13
2. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर–जीवन और दर्शन, पृ0 – 30
3. डा0 धर्मवीर, बालक अम्बेडकर, पृ0 – 29

बालक भीम की माँ कबीरपंथी थी। रामजी सकपाल रोज सुबह–शाम घर के सब सदस्यों से भजन करवाते थे। सन्त परम्परा के इस वातावरण का भीम के बालक मन पर काफी प्रभाव पड़ा था। बचपन में सीखे कबीर के जाति विरोध से उन्हें बाद के जीवन में छुआछूत से लड़ने में बहुत मदद मिली।[1]

इन बातों ने बालक भीम के मन पर काफी प्रभाव डाला। उसके मन पर सृष्टि एवं समाज के रहस्य की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। इस समय का जीवन प्रेम एवं घृणा का समान रुप से भागी था। वह ऐसा समाज देख रहा था जो विपत्ति के समय भी एक नहीं होता था।

हाईस्कूल में प्रवेश के साथ ही उनके साथ अनुभवों का सिलसिला जुड़ने लगा, जिसमें उनके अन्तर्मन को चोट लगी। उस समय एक घटना घटी। एक दिन वह बड़े भाई व भतीजे के साथ पिता से मिलने के लिये गोरे गाँव के लिये चल पड़े। वे पड़ोसी रेलवे स्टेशन से मंसारे पहुँचे। पिता के स्टेशन पर न मिलने पर वह एक बैलगाड़ी से गंतव्य की ओर चल पड़े, पर रास्ते में जाति जानने पर गाड़ीवान ने नीचे उतार दिया। वे भूखे प्यासे अर्धरात्रि को पैदल पिता के पास पहुँचे, तब उनकी समझ में आया कि वे अछूत जाति से सम्बन्धित हैं। एक अन्य घटना में नाई ने उनके बाल काटने से मना कर दिया था। एक बार बालक भीम को कुँये से पानी पीने पर मार खानी पड़ी थी।[2] कई बार उसे स्कूल के वातावरण में उपेक्षा का भाव सहन करना पड़ा, जिससे उसे लगने लगा कि जाति मनुष्य से बड़ी है।[3]

इन घटनाओं के कारण उसमें अनवरत् विचार उठते रहते। वह जब जलालत भरी जिन्दगी के बारे में सोचता तो कई कारण उसके

---

1. डा0धर्मवीर, बालक अम्बेडकर, पृ0 – 15
2. वही, पृ0 – 22
3. वही, पृ0 – 18

Place and Year of Publication

मन में आते। वह देख रहा था कि जाति के कारण व्यक्ति निरन्तर उपेक्षा का शिकार है। इंसान का सम्मान जाति की वजह से ही है। इंसान को जन्म के समय से ही जाति व्यवस्था की सलीब पर चढ़ा दिया जाता है। उसके मन में यह सब विचार उठते रहते। उसे कोई रास्ता नही सूझता। इन सब कारणों की खोज में वह धर्म पर आकर रुक जाता। वह धर्म पर एवं उसके स्वरूप पर विचार करने लगता। वह महसूस कर रहा था, कि किस प्रकार धर्म के नाम पर मनुष्य के बीच नफरत फैलाई जा रही है। भेदभाव की दीवार खड़ी की जा रही है। वह अपनी उपेक्षा का कारण भी समाजगत रूढ़ियों को मानता था। इन सब दुःखों के बीच वह मित्रों से दूर चुपचाप एकान्त में बैठा रहता। कई बार उसे अपना अस्तित्व समाप्त होता नजर आता तो वह घबराकर कक्षा में चला जाता। वास्तव में यह वह स्थिति थी जिसे डा0 भीमराव अम्बेडकर ने बचपन में भोगा था। यहीं पर उनके मन में अंकुर उठा कि वे जाति व्यवस्था के दूषित प्रभाव को नष्ट करने का प्रयास करेंगे।

भीम एक प्रतिभाशाली एवं अध्यवसायी बालक था। उनका विद्यार्थी जीवन अनेक समस्यायों से ग्रस्त रहा, परन्तु इससे उनकी संकल्प शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनमें पढ़ने की प्यास तेजी से पैदा हुई। वे सदैव नई पुस्तकों को पढ़ने के लिये उत्सुक रहते। बालक भीम ने महापुरूषों की जीवनी से जाना कि, महान पुरुष पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। बालक भीम के पिता भी चाहते थे कि वे पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य पुस्तकें पढ़ें। उनके पिता ने उन्हें मुम्बई के प्रसिद्ध एलीफिन्सटन कॉलेज में दाखिला दिलवा दिया। बाद में उन्होंने संस्कृत एवं वैदिक साहित्य का गहरा अध्ययन किया।

1907 में उन्होने मेट्रीकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की एवं अपने वर्ग में महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की। पर उन्हें संस्कृत के स्थान पर परशियन भाषा लेनी पड़ी उस समय उनकी अवस्था सत्रह वर्ष थी।[1] उन्हें संस्कृत न ले पाने का दुख था। मि0 एस0 के0 भोले की अध्यक्षता में एक समारोह में उनकी जाति के द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। इसमें मराठी के प्रसिद्ध लेखक कृष्ण जी अर्जुन उपस्थित थे। भीम को इस समारोह में "लाइफ ऑफ गौतम बुद्ध" पुस्तक भेंट की गई। कृष्ण जी अर्जुन ने उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी। भीम के जीवन का यह नया अनुभव था।[2]

बालक भीम किशोर हो रहा था। जीवन के नए रहस्य उद्‌घटित हो रहे थे। उनमें आगे बढ़ने की अदम्य इच्छा थी वे जीवन का स्वप्न साकार करना चाहते थे। ज्ञान पिपासा को पूर्ण करना चाहते थे। पिता, जाति, वर्ग व कुल को उन पर गर्व था। वे ठोस आधार पर खड़े थे। वे देश, जाति, एवं जीवन के प्रति मौलिक, अप्रतिम व स्फूर्तिवान थे।

उच्च शिक्षा :

महान पुरुष स्वभावतः ही दूसरों से अलग दृष्टिगोचर होने लगते है। डा0अम्बेडकर के मन पर वंचित दलित वर्ग की जीवन की दशा ने गहरा प्रभाव डाला था। खास बात यह थी कि इस अछूत समस्या के शिकार वे स्वयं बने थे। तत्कालीन समाज एवं राजनीति चाहे भले ही अछूत शब्द को हरिजन नाम से सुशोभित करे, पर यह उनके जीवन को कष्टप्रद बनाये हुये था। वे यथार्थवादी चिन्तन के पक्षधर थे। उनका चिन्तन धीरे–धीरे पुष्ट हो रहा था।

---

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर–जीवन एवं दर्शन, पृ0 – 32
2. डा0 धर्मवीर बालक अम्बेडकर, पृ0 – 59

उसी समय सामाजिक परिवर्तनों का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका था। 1906 में "दलित वर्ग मिशन ऑफ इंडिया" का उदय हुआ। यह वंचित समाज को उनके अधिकार दिलाने के लिये प्रथम प्रयास था। "सर्वेटस ऑफ इंडिया सोसायटी" भी उनके प्रति सुझाव रखने लगा था। भीम ने एलीफिन्सटन कॉलेज में प्रवेश लिया था। अस्वस्थ होने के कारण उनका एक साल बेकार हो गया। उन्होंने इण्टर के बाद बी0 ए0 की पढ़ाई शुरु कर दी। बड़ौदा महाराज ने 25 रु0 मासिक स्कॉलरशिप दिया।[1] इससे उन्हें प्रेरणा व उत्साह मिला। इस वक्त उनको एक ही धुन सवार थी, कि वह ज्ञान प्राप्त करे और स्वयं को उस ज्ञान के सहारे स्थापित करें।

1912 में उनके बी0 ए0 करने के साथ ही सारे देश में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना प्रारम्भ हो चुकी थी। 1911 में क्रान्तिकारी ढ़ंग की 18 घटनायें हुई। सम्पूर्ण देश में, स्कूलों में अग्रेंजो के प्रति घृणा भड़क उठी। नौजवान भीम क्रान्तिकारी आन्दोलनों के प्रति भी जागरुक था। बालक भीम ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति को भली–भाँति समझ रहे थे। ठीक इसी समय जब उनकी बड़ौदा स्टेट फोर्सेज में नौकरी लगी, तब पिता की मृत्यु लगभग साथ–साथ हुई।[2] पिता की मृत्यु एक बारगी भीम को अपने सपनों, इच्छाओं एवं इरादों की मृत्यु लगी। उनके पिता शक्ति एवं साहस के प्रतीक थे। इस वज्राघात को झेलकर भी वे बिना विचलित हुये आगे की ओर चल पड़े।

बड़ौदा महराज ने भीमराव को जुलाई 1913 में पढ़ाई के लिये अमेरिका भेज दिया। अमेरिका में जिंदगी का दृष्टिकोण ही दूसरा था। वहाँ अछूतों के लिये कोई भेद नहीं था। वह समान धरातल पर खड़े थे। एक नया समाज

---

1. कमल शुक्ल, डा0 अम्बेडकर पृ0 – 21
2. वही, पृ0 – 23

सामने था। उस समाज की गति बहुत तेज थी। वहाँ स्वतंत्रता एक सहज उपलब्धि थी। उनके मस्तिष्क का आयाम विस्तृत होने लगा। वे जीवन का एक नया अर्थ देख रहे थे। और उन दिनों एक नया दृष्टिकोण जन्म ले रहा था। इन अनुभूतियों को उन्होने पत्रों में स्पष्ट किया था। उन्होने देखा कि कर्म का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षा स्त्री–पुरुष दोनों के लिये जरुरी है। भाग्यवाद का दर्शन कापुरुषता का दर्शन है। यही शोषण का प्रमुख कारण है। उन्होंने स्वावलम्बी एवं आत्म सम्मान पूर्ण जीवन तथा कर्म पर जोर दिया। उनका उद्देश्य न केवल एम0 ए0 की उपाधि प्राप्त करना था वरन् वह विज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषयों में भी निष्णात होना चाहते थे, तथापि उन्होंने बी0 ए0 की डिग्री अग्रेंजी एवं परशियन भाषा से ली थी।

1915 में उन्होनें शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया ''ऐंशियन्ट इंडियन कामर्स''। डाक्टर गोल्डन वाइजर की 1916 में प्रारम्भ होने वाली **"Anthropology Seminer"** से पूर्व उन्होंने **"Castes in India"** पर एक निबन्ध पढ़ा, जिसमें उनका निष्कर्ष रहा था, कि **Caste** का एकवचन में होना अस्वाभाविक है। **Caste** का सदैव बहुवचन में ही अस्तित्व है।[1]

इसके बाद उन्होने ''नेशनल डिवीडेन्ड ऑफ इंडिया–ए हिस्टोरिकल एण्ड एनालिटिकल स्टडी'' में कोलंबिया विश्व विद्यालय से पी0 एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। यह विस्तृत चर्चा का विषय बनी। इनके शोध में बजट अध्याय काफी महत्वपूर्ण माना गया। इन्होंने सिद्ध किया था कि ब्रिटिश सरकार की सभी नीतियाँ उद्योगपतियों के हितों को ध्यान में रखकर बनाईं जातीं थी। अम्बेडकर को पुस्तक में देय तथ्यों के कारण ''रॉयल कमीशन ऑन इंडिया

---

1. B.R.Ambedkar, The Indian Antiquity - P. 81, 95

करेंसी" के सामने प्रमाण देने के लिये आंमत्रित किया गया।

उन दिनों लन्दन अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के केन्द्र के रुप में विख्यात था। डा0 अम्बेडकर ने विदेश में रहकर केवल विश्वविद्यालयी पढ़ाई व शोध ही नहीं किया, वरन् वहाँ की संस्कृति, समाज, परिवेश आदि का अनुभव किया। वे उस समय विश्व में होते परिवर्तन पर पैनी नजर रख रहे थे। वे उपनिवेशवाद के अस्त होते सूर्य को देख रहे थे। पुराने उपनिवेशवाद की जगह नया उपनिवेशवाद सामने आ रहा था। नया युग आर्थिक था। उनका मानना था कि व्यक्तिवाद एवं समाजवाद के युग में यदि अर्धविकसित देश न चेते, तो वे भौगोलिक रुप से आजाद होते हुए भी आर्थिक उपनिवेशवाद की पकड़ में आ जायेंगे। जो राष्ट्र ध्रुवीकरण करके सोच रहे हैं कि वे फिर दुनिया के भाग्य विधाता बन जायेंगें तो, वे गलती पर हैं।

डा0 अम्बेडकर पर पश्चिमी समाज के प्रजाताँत्रिक मूल्यों का विशेष प्रभाव पड़ा है।[1] शिक्षा जगत में वे उसी के अनुरुप व्यवस्था चाहते थे। डा0 अम्बेडकर विदेश में रहकर नव मानव मूल्यों एवं जीवन के प्रति स्वस्थ तथा मुक्त विचारों की स्थापना हेतु अपने आपको तैयार कर चुके थे। वे हिन्दू समाज को विश्व की प्रगतिशीलता से जोड़ना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर विदेश में रहकर नव मानव मूल्यों एवं जीवन के प्रति स्वस्थ तथा मुक्त विचारों की स्थापना हेतु अपने आपको तैयार कर चुके थे। वे राष्ट्र के रुप में हिन्दू समाज के बारे में सोच रहे थे। विदेश में उन्होने लोकतंत्र को करीब से देखा था। वे आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों का सामंजस्य लोकतंत्र की सफलता मानते थे।

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, सोशल फिलासफी ऑफ डा0 अम्बेडकर P.33

वे विभाजित भारतीय समाज की दशा को देखकर समझ चुके थे, कि विभाजित होकर नहीं जिया जा सकता है। वह समाज से दलित एवं वंचित वर्ग समाप्त करना चाहते थे। लोकतंत्र की असफलता का प्रमुख कारण परस्पर विभाजन है। डा0 अम्बेडकर कानून एवं प्रशासन में समानता चाहते थे। उनका विचार था कि लोकतंत्र ऐसा पौधा नहीं है, जिसे हर कही उगाया जा सके।[1]

डा0 अम्बेडकर के जीवन पर विदेशी कुप्रभाव कतई नहीं पडे। वे भारतीय जीवन की दुःख एवं कठिनाइयों से द्रवित थे। डा0 अम्बेडकर इसी दुख को दूर करने की योजना बनाते रहते थे।[2] डा0 अम्बेडकर राजनीतिज्ञ की जगह सामाजिक चिन्तक अधिक थे। वे सामाजिक विसंगतियों के मूल में सामाजिक कारणों को महत्व देते थे। वे समाज सुधार के पक्ष में थे एवं नवीन सामाजिक संरचना के प्रति कटिबद्ध थे।

1920 के अंतिम दिनों में डा0 अम्बेडकर के मन में कानून एवं अर्थव्यवस्था की पढ़ाई पूरी करने की इच्छा फिर से जागी। इस बार कोल्हापुर के शाहू महाराज ने उनकी सहायता की। शाहू महाराज ब्राह्मणशाही के विरोध में थे। दलितों के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति थी। डा0 अम्बेड़कर ने न केवल बैरिस्टरी परीक्षा पास की, वरन् वित्तीय एवं मौद्रिक समस्या का भी पूरा अध्ययन किया। इन विषयों पर उन्होंने पूरी विशेषज्ञता प्राप्त की।

2. सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि :–

भारत की राष्ट्रीय समाज के रुप में उठने की गति बहुत धीमी रही है। भारत विविधतापूर्ण देश रहा है। यहाँ समाज कई प्रकार के समूहों में

---

1. दस स्पोक अम्बेडकर, वॉल्यूम – I, P.75
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, सोशल फिलासफी ऑफ डा0 अम्बेडकर P.31

बँटा है। इसमें कई प्रकार के धर्म, सम्प्रदाय एवं पंथों की मिली–जुली खिचड़ी है। इस समाज में अधिकांश लोगों के अशिक्षित,अल्पशिक्षित और सामाजिक दृष्टि से बंटे होने के कारण विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं, परन्तु देखें तो पायेंगे कि भारत में इस प्रवृति के बावजूद वह एकता के सूत्र में बँधा हुआ है।[1] वर्तमान में भी सामाजिक विविधता से समन्वय स्थापित करना एक बड़ी समस्या रही है।

प्राचीन समय में भारतीय समाज मुख्यतः तीन प्रकार की इकाइयों में विभाजित था। इसमें एक इकाई गाँव, कस्बा, मोहल्ला या तीर्थ स्थान जैसी स्थानीय इकाई थी। दूसरी इकाई जाति व्यवस्था की थी। तीसरी इकाई अलग–अलग धंधे के अनुसार पेशेवर समूह की थी। ये इकाइयाँ बिल्कुल अलग–अलग नहीं होतीं थी। परिस्थितियों के अनुसार परस्पर तालमेल बैठाने की जरुरत पड़ती थी। ऐसा तालमेल समय–समय पर होता भी रहता था। इस प्रकार सभ्यता के लिहाज से भारत हमेशा एक अविभाज्य क्षेत्र माना गया है। हालाँकि भारत छोटे–छोटे राजनीतिक घटको में बँटा रहा है।

वर्तमान शोधकार्य के केन्द्र बिन्दु डा0 भीमराव अम्बेडकर एक सामाजिक क्रान्तिदर्शा थे। वे पूरे जीवन भर कठोर सामाजिक बुराइयों से लड़ते रहे। वह सामाजिक विविधताओं में समन्वय लाना चाहते थे।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार हर मानव का एक जीवन दर्शन होना चाहिये। इससे उस व्यक्ति का मूल्याँकन होता है। इस मूल्याँकन का स्तर मानव को स्वयं ही तय करना चाहिये।[2] व्यक्ति में एक नैतिक स्तर बरकरार रहना चाहिये, ताकि स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का विकास हो सके। यह मापदण्ड न केवल व्यक्ति वरन् सम्पूर्ण समाज के लिये उपयोगी हो सकता है।

---

1. रजनीकोठारी, भारत में राजनीति — पृ0 - 6
2. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर-जीवन और दर्शन — पृ0 - 158

डा0 अम्बेडकर सादा जीवन में निष्ठा रखते थे, वे आडम्बरहीन थे। वे निर्धन एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों में भेद नहीं करते थे। डा0 अम्बेडकर समाज सुधार को राजनीतिक सुधार की अपेक्षा अधिक मौलिक एवं आवश्यक मानते थे। डा0 अम्बेडकर ने जाति एवं वर्ण में जकड़े भारत का गहराई से अध्ययन किया। जाति भेद, ऊँच–नीच, छुआ–छूत एवं नाना प्रकार के अमानवीय गुणों से लिप्त भारतीय समाज उन दिनों उनके अध्ययन का विषय था। डा0 अम्बेडकर के अनुसार तत्कालीन समाज को बदलने की जरुरत थी। डा0 अम्बेडकर ऐसे समय में ऐसे समाज की कल्पना करते थे, जिसका आधार स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा हो।[1]

भारतीय समाज का आधार जाति व्यवस्था है। यह जाति व्यवस्था ऊँच–नीच के भेद भाव पर कायम है। भारत में व्यक्ति परिवार या समाज में नहीं, जाति में पैदा होता है। डा0 अम्बेडकर विस्मित होकर देख रहे थे, कि दुनिया में ऐसा कोई समाज नहीं हैं, कि जहाँ लोगों की दृष्टिमात्र से दूसरे लोग गन्दे हो जायें। इस समाज में लोगों की ऐसी जातियाँ थी, जहाँ बच्चे को जन्म से ही अपराध की ओर धकेल दिया जाता हो। लोगों के पास पहनने को वस्त्र तक न हों। यह दुर्भाग्यपूर्ण लोग करोड़ो में थे। डा0 अम्बेडकर इसे अपकीर्ति का विषय मानते थे। एक घटना है कि राहुल साँकृत्यायन के किसी विदेशी मित्र ने पत्र डाल कर पूछा था, कि क्या भारत में कुछ लोग ऐसे भी है, जिन्हें आम लोग छूना पसन्द नहीं करते एवं धोखे से छू जाने पर पवित्र होने के लिये स्नान करते हैं। राहुल जी का कहना था कि इस राष्ट्रीय गरिमा के प्रश्न पर मुझे लज्जातिरेक में सिर झुकाकर स्वीकृति देनी पड़ी। यह घटना का यथार्थ विवरण है।[2] डा0 अम्बेडकर जीवन भर विरोधों से लड़ते रहे। वे सवर्णो से संघर्षरत रहे। एक स्वतंत्र चिन्तक होने के नाते, एवं अछूत वर्ग के कारण वे किसी भी स्थिति

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 – 132
2. दैनिक जागरण, 16 अप्रैल 1995

में संघर्ष नहीं छोड़ सकते थे। धर्म के विषय में डा0 अम्बेडकर ने गहरा चिन्तन किया। हिन्दू धर्म के अभिशापों को झेलने के बाद भी वे धर्म की आवश्यकता एवं महत्व को नहीं नकारते थे।[1] वे धर्म के द्वारा मानव जाति के उद्धार व स्वस्थ समाज की कल्पना करते थे। वे हिन्दू धर्म की रूढ़िग्रस्तता में दलित वर्ग की स्थिति में सुधार की सम्भावना नहीं देखते थे।

डा0 अम्बेडकर आर्थिक व समाजिक अधिकारों के लिये, संघर्षरत् गरीब, कमजोर लोगों को धार्मिक उपदेश देकर संघर्ष से नहीं हटाना चाहते थे। वे धर्म को मानसिक एवं नैतिक विकास के लिये जरुरी मानते थे। डा0 अम्बेडकर व्यक्ति को धर्म के लिये जरुरी न मानकर धर्म को व्यक्ति के लिये आवश्यक मानते थे। वे कहते थे, "धर्म को व्यक्ति के अस्तित्व एवं महत्व को स्वीकारना चाहिये, तथा उसके आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास के लिये अनुकूल वातावरण का सृजन करना चाहिये"।[2] धर्म नैतिकता पर आधारित होना चाहिये। इसका स्वरुप समय–समय पर बदलता रहता है, और वंचितों को हिन्दू समाज में उपेक्षाजनक स्थिति प्राप्त थी। अम्बेडकर को लगा कि हिन्दू धर्म के रहते दलितों की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं। वे हिन्दू धर्म में गरिमा, स्वतंत्रता एवं समानता को नही देखते थे। वे हिन्दू धर्म में सार्वकालिक सेवाभाव की कमी देखते थे।

धार्मिक ज्ञान का क्षेत्र संकुचित होने पर धर्म की सत्ता भी खिसकती चली गई। चिन्तन के क्षेत्र में विज्ञान ने नई क्रान्ति पैदा की जिससे कथित धर्मशास्त्रीय स्थापनाओं का विरोध हुआ। इसके परिणाम स्वरुप स्वतंत्र चिन्तन का आविर्भाव हुआ। अंधविश्वास समाप्त हुआ। डा0 अम्बेडकर के विचार से विज्ञान के अभ्युदय से धार्मिक जीवन से जुड़े कई अन्धविश्वास स्वतः हट गये।

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 - 40
2. एच0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 - 128

वैज्ञानिक क्रान्ति ने धर्म को विशेष रुप से उसके चिन्तन के क्षेत्र एवं सत्ता को प्रभावित किया।

डा0 अम्बेडकर मानव के लिये धर्म जरुरी मानते थे। मानव की सामाजिकता एवं बौद्धिकता के कारण धर्म की अनिवार्यता को उन्होने स्वीकार कर लिया था। धर्म को वे आध्यात्मिक आस्था नही मानते थे। धर्म को वे मानवीय सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली महज एक मानवीय आस्था ठहराते हैं।[1]

डा0 अम्बेडकर हिन्दूधर्म में कर्मकाण्ड, आदेश एवं निषेध अर्थात् संस्कारित रीतियों एवं नियमों का ढ़ेर देखते थे, इसी से वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति हुई। यह कानून या कानून के रुप में वर्ग आचार है। यह अपेक्षित सामाजिकता की स्थापना नहीं कर सकता। असमानता को वे हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कुरीति मानते थे। वास्तव में हिन्दू धर्म विषयक यह सोच डा0 अम्वेडकर की उस सोच की उपज है जो कि उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक धारणाओं को खुराक देती है। युगों–युगों के सामाजिक अभिशाप का निराकरण न होने के कारण डा0 अम्बेडकर इसे अधार्मिक मानते हैं। वे मानते थे कि जो धर्म व्यक्ति–व्यक्ति में भेद करे, वह कुछ भी हो परन्तु धर्म नहीं हो सकता।

डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म में तिरस्कार की भावना से काफी उद्वेलित थे। उन्हें लगा कि जब तक हिन्दू धर्म है, दलितों की मुक्ति राम्भव नहीं। हिन्दू धर्म शोषण का प्रतीक है। हिन्दू धर्म में वे व्यापक बदलाव चाहते थे।

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टैगोर औरं अम्बेडकर, पृ0 – 129

3. अन्य दार्शनिकों का प्रभाव :–

डा0 अम्बेडकर बाल्यकाल के कटु अनुभवों से काफी परेशान थे। उनके जीवन का लक्ष्य दलितों की स्थिति में सुधार एवं समतामूलक समाज की स्थापना करना था। वे समझते थे कि स्वतंत्र समाज की स्थापना के लिये जाति संस्था को तोड़ना होगा। वह जाति संस्था को समता पर आधारित समाज के विरुद्ध मानते थे। उनका कहना था कि, ''वर्ण व्यवस्था केवल श्रम का विभाजन नहीं हैं, वरन् यह श्रमिकों का विभाजन है''।[1] वे जाति संस्था के उद्गम को खोजकर उसके स्वरुप को नष्ट करना चाहते थे।[2] समाज की अत्याधिक व्यक्तिवादी कल्पना को अस्वीकार करते थे।

डा0 भीमराव अम्बेडकर पर कई भारतीय महापुरुषों, राजनेता एवं समाज सुधारकों का विरोधी व अच्छा प्रभाव पड़ा।

महात्मा गाँधी के विचार डा0 अम्बेडकर से नही मिलते थे। दोनों में एक बहुत बड़ा अन्तर था। डा0 अम्बेडकर स्वयं दलित वर्ग के थे उन्होने पीड़ा को स्वयं सहा था। महात्मा गाँधी उस पीड़ित वर्ग के नहीं थे वे मात्र समाज सुधारक थे, स्वयं पीड़ा से नहीं गुजरे थे। दोनो में अन्तर यही था, इसी कारण दृष्टि में अन्तर था। गाँधी जी जहाँ जाति को बनाये रखने के हिमायती थे,[3] वही डा0 अम्बेडकर छुआछूत एवं जातिवाद के साथ–साथ होने के कारण, जातिवाद को नष्ट करना चाहते थे।[4] देखा जाय तो एक अर्थ में डा0 अम्बेडकर गाँधी जी को नापसन्द करते थे, हालाँकि वे उनसे घृणा नहीं करते थे।[5] इसका कारण भी डा0 अम्बेडकर को जातिरहित भारत से प्रेम होना था। वास्तव में डा0 अम्बेडकर

---

1. रशीदउद्दीन खान, भारत में लोकतंत्र (N.C.E.R.T.) पृ0 – 203
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, भारत में जाति प्रथा पृ0 – 5
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, जाति भेद का अच्छेद पृ0 – 02
4. एच0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टेगौर एवं अम्बेडकर पृ0 – 143
5. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, रानाडे, गाँधी एवं जिन्ना पृ0 VII

पर महात्मा गाँधी का काफी कम प्रभाव पड़ा। डा0 अम्बेडकर के एवं महात्मा जी के लक्ष्य समान होने पर भी दोनों की प्रक्रिया एवं भूमिका भिन्न थी। एक प्रयास बीमारी के अन्दर से था, तो दूसरे का बाहर से था। डा0 अम्बेडकर पूरे राष्ट्र की चिन्ता करते थे उन्होंने दलित समस्या का हल लोकतंत्र के भीतर ही खोजा। वे गाँधीजी के आचरण को अन्तर्जातीय पाखण्ड कहते थे।

गाँधी ने गोलमेज सम्मेलन में डा0 अम्बेडकर के दलित प्रतिनिधित्व को भी चुनौती दी। डा0 अम्बेडकर ने गाँधी जी के बारे में कहा कि वे एक मित्र का रोल अदा नहीं कर रहे हैं,वरन् ईमानदार दुश्मन का भी पार्ट अदा नहीं कर रहे है।[1] डा0 अम्बेडकर गाँधीवाद को एक प्रतिक्रियावादी विचार प्रणाली मानते थे, जो मशीनी युग की वैज्ञानिक प्रगति से मुँह मोड़कर पशु जीवन की ओर ले जाता था।[2] डा0 अम्बेडकर पर गाँधीवाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

महात्मा बुद्ध के विचारों का प्रभाव डा0 अम्बेडकर के जीवन के हर पहलू पर दृष्टिगोचर होता है। डा0 अम्बेडकर इस सम्बन्ध में स्पष्ट करते हुये कहते हैं, कि यह विश्व के लिये उपयोगी है।[3] भगवान बुद्ध के विचार चितंन ने अम्बेडकर के विचारों को काफी आंदोलित किया। डा0 अम्बेडकर के अनुसार उनके विचार मौलिक थे, वे बुद्धिवादी थे। भगवान बुद्ध की विशेषता रही कि उनके बहुत कुछ कहने सुनने के बाद जब उनके अनुयायियों ने अन्तिम समय मार्गदर्शन के लिये आग्रह किया तो बुद्ध ने कहा कि वह स्वयं प्रकाशित हों उनका कहना था"अप्प दीपो भव" इसने डा0 अम्बेडकर के इस चिन्तन की पुष्टि की कि जो वैज्ञानिक सत्य नहीं है वह अन्धविश्वास है।[4] डा0 अम्बेडकर के सामाजिक और राजनीतिक दर्शन को बुद्ध विचारों से प्रशस्ति मिली उनके लोकतंत्र के समर्थन करने

1. डा0 धर्मवीर, डा0 अम्बेडकर और दलित आन्दोलन, पृ0 - 24
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 - 22
3. वही, पृ0 - 71
4. वही, पृ0 - 72

के पीछे भी बुद्ध के लोकतंत्र सम्बन्धी विचार थे। गौतम बुद्ध अपने समय के काफी बड़े समाजवादी थे, उन्होने तत्कालीन ब्राह्मणवाद के एकाधिकार को समाप्त किया। महात्मा बुद्ध करुणा की मूर्ति थे। डा0 अम्बेडकर ने उनके विचारों में स्वदेशी खुशबू, मातृभूमि की मिट्टी की महक अनुभव की। डा0 अम्बेडकर ने बुद्ध के आदर्श के अनुरूप यहां पर समाजजीवन खड़ा करने का प्रयास किया।[1]

कार्ल मार्क्स के विचारों के सम्पूर्ण विश्व में फैले होने के बावजूद डा0 अम्बेडकर मार्क्स से ज्यादा प्रभावित नहीं थे। हालांकि कार्ल मार्क्स सर्वहारा वर्ग की बात करता है वही डा0 अम्बेडकर दलित वर्ग की भलाई चाहते है। मार्क्स हिंसक क्रांति के द्वारा परिवर्तन लाना चाहता था,और समाजवादी शासन के तहत् अनवरत् तानाशाही की बात करता है। डा0 अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे।[2] डा0 अम्बेडकर इससे भी सहमत नहीं थे कि साम्यवाद जबरन थोपा जाना चाहिये। वे साम्यवादी क्रान्ति की जगह वैचारिक क्रान्ति को महत्वपूर्ण समझते थे। डा0 अम्बेडकर साम्यवाद की सफलता से जरा भी प्रभावित नहीं थे। डा0 अम्बेडकर साम्यवादियों को अवसरवादी मानते थे। साम्यवादी सर्वहारा वर्ग के हित के अलावा राजनीतिक अवसरवाद की तलाश में रहते हैं। साम्यवाद राजनीतिक उद्देश्यों को प्रमुख एवं मजदूरों की स्थिति सुधार को गौण महत्व देता है। जो काम साम्यवाद क्रान्ति के सहारे करता है, बुद्धवाद वही काम पंचशील का सहारा लेकर कर सकता है।[3] डा0 अम्बेडकर साम्यवाद की तुलना जंगल की आग एवं राक्षस से करते हैं, जो रास्ते में आने वाली हर चीज को लीलता एवं खाता जाता है। डा0 अम्बेडकर सोवियत रुस की मुक्ति में अन्य लोगों की दासता देखते थे। धर्म के क्षेत्र में भी कार्ल मार्क्स जहाँ धर्म को अफीम की संज्ञा देता है, डा0 अम्बेडकर धर्म को नैतिकता का मूलमंत्र मानते थे, एवं जीवन के लिये इसे आवश्यक मानते थे। इसी

---

1. दत्तों पंत ठेंगड़ी, डा0 बाबा साहब अम्बेडकर पृ0 - 03
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 - 73
3. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 - 144

प्रकार उन्होंने सोवियत रुस के पतन का अनुमान काफी पहले लगा लिया था।[1] डा0 अम्बेडकर कार्लमार्क्स से प्रभावित नहीं थे।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती हिन्दू धर्म के पुनरुद्धारक रहे हैं। उन्होने शुद्धिकरण कार्यक्रम चलाया, परन्तु इसके बावजूद डा0 अम्बेडकर उनसे ज्यादा प्रभावित नहीं थे[2] महर्षि दयानन्द सरस्वती जाति व्यवस्था को बनाये रखने के समर्थक थे।[3] वे जाति परम्परा का स्वरुप बदल देने के पक्षधर थे। वे जाति को कर्म से मानते थे, कई लोगो को ब्राह्मण बनाया गया। बाबा साहेब इस बात से असहमत थे कि अछूतों का उद्धार आर्य समाज में शामिल होने से हो सकेगा।[4] दादर, बम्बई एवं शोलापुर में डी0 ए0 वी0 कालेज खोलने में बाबा साहेब ने सहायता की। वे धर्म से बिल्कुल प्रभावित नहीं थे। वे सोचते थे कि आर्य समाज की चातुर्वर्ण व्यवस्था के अर्न्तगत यदि एक व्यक्ति को उसके गुणों के आधार पर हिन्दू समाज में स्थान मिलता है, तो यह बात समझ में नहीं आती कि आर्य समाजी उस पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का लेबल लगाने पर जोर क्यों देते है।

डा0 अम्बेडकर बाल गंगाधर तिलक से काफी प्रभावित थे। डा0 अम्बेडकर उनकी वज्रशक्ति, दृढ़ संकल्प, उत्कट आकांक्षाँ एवं अदम्य आत्म सम्मान के प्रशंसक थे। वह अछूतों का कागजी क्रान्ति के लिये नहीं, वरन् जीवन के नव मूल्यों को स्थापित करने वाली ठोस क्रान्ति के लिये आवाहन कर रहे थे। परन्तु वह तिलक की इस बात से सहमति नहीं रखते थे कि आर्य ध्रुव सागरीय क्षेत्र से आये।[5] वे इस बात से भी मतभिन्नता रखते थे कि देश की आजादी के लिये राजनीतिक सुधार पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 - 74
2. शंकरानन्द शास्त्री, युगपुरुष बाबा साहेब अम्बेडकर, पृ0 - 204
3. राजेन्द्र मोहन भटनागर,डा0अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 131
4. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नही, पृ0 - 132
5. दत्तोपंत ठेगड़ी, बाबा साहेब अम्बेडकर, पृ0 - 04

डा0 भीमराव अम्बेडकर पर महादेव गोविन्द रानाडे के विचारों का काफी प्रभाव पड़ा। वे रानाडे के सामाजिक लक्ष्य, एवं सामाजिक सेवा के तरीकों से प्रभावित थे। वास्तव में डा0 अम्बेडकर रानाडे के इतिहासवेत्ता, अर्थशास्त्री और शिक्षाशास्त्री होने के बाद भी समाज सुधारक के रुप को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। रानाडे की दूरदृष्टि एवं साहस दोनों से डा0 अम्बेडकर प्रभावित थे। डा0अम्बेडकर रानाडे को कल्पनाशीलता के मामले में किसी पैगम्बर से कम नहीं मानते थे।[1] रानाडे ने समाज सुधार को प्रोन्नत करने में साहस दिखाया, जो तत्कालीन समय में कठिन कार्य था। डा0 अम्बेडकर पर इस बात का भी काफी प्रभाव पड़ा जिसमें मानते थे कि राजनीतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा नैतिक ऊर्जस्विता अधिक महत्वपूर्ण है। बिना सामाजिक बुराइयों को बदले अन्य सब परिवर्तन की उम्मीद बेकार है। रानाडे की महानता इसी तथ्य में निहित है कि वह न केवल इस वर्तमान पीढ़ी, अपितु आगामी पीढ़ियों के पथ प्रदर्शक, मित्र एवं दार्शनिक बन सकते है।

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर रानाडे, गाँधी और जिन्ना, पृ0 - 15

द्वितीय अध्याय

डा० अम्बेडकर के विचारों की आधारभूमि

(१) दर्शन का प्रभाव एवं दर्शनिक प्रणाली
(२) विचारों का विकास
(३) आर्थिक विचार
(४) धर्म सम्बन्धी विचार

धर्म सदैव से मानवीय विचारों का उदात्त प्रेरक रहा है। धर्म एवं दर्शन परस्पर सूत्रबद्ध रहे हैं। जहाँ धर्म नियमों का संग्रह रहा है, वही दर्शन लक्ष्य की ओर क्रमशः यात्रा है। दर्शन विचारधारा का अजस्त्र प्रवाह होता है।[1] डा0 अम्बेडकर की विचारधारा का केन्द्र बिन्दु वंचित वर्ग को आगे लाने से सम्बन्धित है। यह सारा संग्रह समाज को गति प्रदान करता है। समाज इस संग्रह को सुरक्षित एवं परिष्कृत करता है। इस परिष्करण को डा0 अम्बेडकर पूर्ण मानवतावाद में पाते हैं।

1. दर्शन का प्रभाव एवं दार्शनिक प्रणाली :-

डा0 अम्बेडकर का जीवन एक सच्चे मानवतावादी के रुप में उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने जीवन को समता, न्याय एवं परोपकार के लिये समर्पित कर दिया। डा0 अम्बेडकर का यह कार्य भारत एवं सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक समरसता लाने की दिशा में एक कदम था। उन्होनें अन्यायपूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक वातावरण को सहन नहीं किया था।[2] भारत में दर्शन व्यवहारिक रहा है, जीवन की समस्याओं को हल करने के लिये दर्शन का सृजन हुआ है।[3] डा0 अम्बेडकर के विचार व्यवहारिक थे। वे कर्मयोगी थे। उन्होने सदैव विचारों एवं कार्यो के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। वे ज्ञान के प्रति जिज्ञासु रहे। वे नवीन प्रगति के हामी थे। सामाजिक एवं व्यक्तिगत प्रगति के आकाँक्षी थे। मानव जीवन को सार्थक मानते हुये सर्वोत्तम के अभिलाषी थे। उनके अनुसार दर्शन मानव आचरण के मूल्याँकन का मापदण्ड है।[4]

डा0 अम्बेडकर ने धर्मान्धता एवं उन परम्पराओं जो तर्कहीनता

---

1. डा0 जगदीश सहाय श्रीवास्तव, पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ, पृ0 - आमुख
2. बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर के पत्र, पृ0 - 34
3. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रुपरेखा, पृ0 - 02
4. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर - लाइफ एण्ड मिशन, पृ0 - 455

पर आधारित थी, के विरुद्ध बिगुल बजाया। इसी संघर्ष की स्थिति के दौरान उनके राजनीतिक दर्शन का जन्म हुआ। उनके विचार राष्ट्र जीवन के प्रति काफी लाभदायक रहे । डा0 अम्बेडकर का दर्शन मानव जीवन की अमूल्य धरोहर है। डा0 अम्बेडकर के विचार एवं कार्यों में जीवन की वास्तविकताओं, आदर्शों, व्यवहारिक पहलुओं एवं आध्यात्मिक मूल्यों का न्याय संगत संतुलन मिलता है। डा0 अम्बेडकर उपयोगितावादी विचारों से प्रभावित थे। वे पुरानी संस्कृति से मात्र उपयोगी एवं मूल्यवान बातों का ही संग्रह करना चाहते थे वे जॉन डीवी के उदारतावादी एवं उपयोगितावादी विचारों से प्रभावित थे। वे काफी गतिशील थे। पूर्वकाल को धर्मान्ध होकर नहीं मानते थे।

डा0 अम्बेडकर ने विश्व की क्रान्तियों का अध्ययन किया। वे दुनिया में मानवता को करुण क्रन्दन करते देख रहे थे। उन्होने मानव जीवन को बेहतर बनाने वाले महापुरूषों एवं युग प्रर्वतकों को पढ़ा, इन सबका वर्तमान से तुलनात्मक अध्ययन किया। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि रंगभेद पर आधारित भेदभाव की तुलना में जातिभेद पर आधारित भेदभाव ज्यादा है। वे इसे साहसपूर्वक समझने एवं बदलने के लिये प्रयासरत् रहे। हमेशा नैतिकता, मानवता एवं समाज से जुड़े रहे। उनका चिन्तन कल्पना जगत में नहीं विचार जगत के यथार्थ धरातल पर रहा।[1]

दर्शन एवं जीवन का सीधा सम्बन्ध है। दर्शन जीवन की समस्यायें सुलझाता है। वह समाज को दुरावस्था से निकलता है। डा0 अम्बेडकर ने साँसारिक समस्याओं पर विचार–विमर्श किया।[2] शब्दजाल के बजाय दर्शन को व्यवहारवादी बनाया। वे दर्शन को मानव जीवन के लिये लाभदायक बनाना चाहते

---

1. छोटे लाल ओझा, मुक्तिदूत पृ0 – 32
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 – 36

थे। डा0 अम्बेडकर अच्छे गुणों को खराब परिवेश के कारण तिरस्कृत नहीं करते थे। वे समाज में मानव के स्थान को जानने के लिये सदैव उत्सुक रहे। उन्होंने इस बात का मूल्याँकन किया कि वर्तमान परिस्थिति में लोगों के दैनिक जीवन का संचालन किस प्रकार किया जाय। उनका विचार जीवन को रचनात्मक बनाना था। डा0 अम्बेडकर का जीवन दर्शन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साँस्कृतिक आदि समस्याओं के समाधान में प्रभावपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

डा0 अम्बेडकर अपने ढ़ंग से समस्याओं के निराकरण में गहरी रुचि रखते रहे। व्यक्तिगत स्तर पर जातिगत अभिशाप को सहने से उनमें जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण जन्मा था। वे उस दृष्टिकोण के द्वारा उन हालातों का सामना करते हुए हिन्दू समाज को विकृतिमूलक अमानववादी व्यवहार से मुक्त कराना चाहते थे। वे पुराने मूल्यों एवं रीति–रिवाजों में परिवर्तन करना चाहते थे।[1] उन्होंने जीवन के मूल्यों में पूर्ण परिवर्तन एवं मानवों के प्रति नवीन दृष्टिकोण अपनाया, जिसमें एक नये जीवन का अर्थ प्रतिध्वनित होता है। नया जीवन नए शरीर में ही टिक सकता हैं, पुराने शरीर में नही। उनका विचार था कि वर्तमान में असामयिक पुरानी बातों का कोई मूल्य नहीं है। निरर्थक बातों को छोड़ देना ही श्रेयस्कर रहेगा।[2] वे सभी बातों यहाँ तक कि नैतिकता एवं धर्म को भी आधुनिकता एवं उपयोगिता के आधार पर ग्रहण करने के पक्षपाती थे। वे जीवन एवं समाज के लिये उत्तम तत्वों पर अधिक ध्यान देना चाहते थे।

डा0 अम्बेडकर जीवन में आदर्शों एवं सिद्धान्तों को जरूरी मानते थे, जिससे कि जीवन, विचार एवं कार्य उसके अनुरुप ढ़ाले जा सकें। बिना आदर्शों के जीवन मूल्यहीन है। सिद्धान्तविहीनता अपूर्णता एवं भटकन है। भगवान

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन, पृ0 – 125
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, स्वराज हमारे ऊपर राज, पृ0 – 45

बुद्ध की तरह जीवन पर आत्म नियंत्रण होना चाहिये। डा0 अम्बेडकर का दर्शन तीन शब्दों पर आधारित है – स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व। यह तीनों शब्द डा0 अम्बेडकर ने फान्स की क्रान्ति से उधार न लेकर अपने मार्गदाता भगवान बुद्ध से ग्रहण किये है।[1] डा0 अम्बेडकर के दर्शन की जड़ धर्म में है, राजनीति शास्त्र में नहीं।

डा0 अम्बेडकर ने भाग्य, पूर्वजन्म एवं विधाता द्वारा निर्दिष्ट कर्म दर्शन या भाग्यफल को बिल्कुल नकार दिया। गीता के कर्मफल के सिद्धान्त को शरारती बताया। डा0 अम्बेडकर ने तमाम लोगों को भौतिक सुख की प्राप्ति एवं नैतिक उत्थान के लिये सर्वस्व त्यागने का आवाहन किया। बाबा साहब ने संघर्षपूर्ण एवं आत्म सम्मान पूर्ण जीवन जीने का आवाहन करते हुये कहा है, "आप अपनी दासता की बेड़ियां स्वयं ही तोड़ो। अपमानित होकर जीवन जीना धिक्कार है। स्वाभिमान जीवन के लिये अत्यावश्यक है। इसके बिना जीवन निकम्मा है। स्वाभिमान के साथ जीवित रहने के लिये मानवों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कठिन एवं तीव्र संघर्ष से ही शक्ति, विश्वास और आदर प्राप्त होता है।"[2]

2. विचारों का विकास :–

डा0 अम्बेडकर समाज के प्रारब्ध के सिद्धान्त से कतई सहमत नहीं थे। वे इसे स्वतंत्रता एवं समता के सिद्धान्त के विरुद्ध मानते थे। वे इस प्रकार के बन्धनों का अर्थ सदियों की दासता से लगाते थे। वे सामाजिक अन्याय को वैध ठहराने वाले इन कारणों की निन्दा करते थे। इस प्रकार की विचारधारा कर्मशीलता को समाप्त कर देती है। लोग उत्तरदायित्व से विमुख होने

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 – 38
1. वही, पृ0 – 39

लगते हैं। स्वयं को कुछ अज्ञेय शक्तियों के हाथों में कठपुतली समझने लगते हैं। वे सभी लोगों को इकट्ठा होकर संकटों का सामना करने एवं मानवोचित गुण पैदा करने की सलाह देते हैं। डा० अम्बेडकर प्रारब्ध के सिद्धान्त को नकार देते हैं। उनके विचारानुसार प्रारब्ध के सिद्धान्त को बनाये रखने का लक्ष्य राज्य या समाज को उत्तरदायित्व से बचाना है। राज्य को गरीब लोगों के प्रति जिम्मेदारी से बचाना है।

परमेश्वर सम्बन्धी विचार :—

डा० अम्बेडकर चेतना में विश्वास करते थे। वे आत्मा एवं ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे। डा० अम्बेडकर ईश्वर पर चर्चा करके समय को नष्ट नहीं करते थे। भगवान बुद्ध परमेश्वर को अव्याकृत (व्याख्या न करने वाला) विषय मानते थे। परमेश्वर पर बात करके समय नष्ट होता है, एवं अन्धविश्वास फैलता है। डा० अम्बेडकर का मानना था कि ईश्वर के प्रचार-प्रसार में होने वाले खर्च का आधा भाग भी यदि सही ढ़ंग से खर्च किया जाय तो पीड़ित लोगों के दु:खों को मिटा देगा। इतना प्रयास यदि शोषण-कर्त्ताओं से मुक्ति दिलाने में होता तो संसार में जीवन का दूसरा ही रूप होता।[1]

डा० अम्बेडकर की आस्था मानव समाज में थी। वे मानव की शक्तियों में विश्वास करते थे। मानव को ईश्वर से अधिक महत्वपूर्ण स्थान देते थे, और सोचते थे कि ऐसा न करने से सारे कार्य निरर्थक हो जायेंगे। लोग स्वयं अपने दुखों का निवारण करने का प्रयास बंद कर देंगे। गरीबी का अन्त मानव के हाथ में है। शोषण के अन्त के लिये शोषितों का प्रयास ही अधिक महत्वपूर्ण है। शोषण की मुक्ति तीर्थ स्थानों, पूजा पाठ या भक्ति द्वारा सम्भव

---

1. शंकरानन्द शास्त्री, युग पुरुष बाबा साहब डा0 भीमराव अम्बेडकर पृ0 - 412

नहीं है सैकड़ों वर्षो से शोषितों को कोई सुख नहीं मिला उनके धार्मिक विश्वास उन्हें गरीबी, गंदगी एवं भुखमरी से नहीं बचा सके।[1]

डा0 अम्बेडकर एक विधिशास्त्री भी थे। उन्होंने बुद्धि और अनुभव के आधार पर ईश्वर की स्थिति को स्वीकार नहीं किया भगवान बुद्ध का अनुसरण करते हुये उन्होने कहा था, कि ईश्वर को किसी ने देखा नहीं है। लोग ईश्वर की मात्र चर्चा करते हैं। ईश्वर अज्ञात एवं अदृष्टा है, कोई व्यक्ति ईश्वर को सिद्ध नहीं कर सकता है। संसार स्वतः विकसित है। इसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं हुई है। ईश्वर में विश्वास करने से कोई लाभ नही है, इससे केवल अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है।[2]

डा0 अम्बेडकर भाग्यवादी नहीं थे न भाग्यवाद को स्वीकार करते थे। वे इस विश्वास को छोड़ देना चाहते थे कि दुख पूर्वनिर्धारित है, और पिछले जन्मों के कर्मो के फल हैं। यह सब समृद्धिशाली, सत्तासीन ऊँचे वर्ग के लोगों द्वारा प्रस्तुत झूठी कल्पनायें हैं। इन कल्पनाओं के सहारे सदैव शोषित वर्ग के प्रति अन्याय को जायज ठहराने की कोशिश की जाती रही है गरीबी और शोषण शक्तिशाली वर्गो के आधिपत्य के कारण है। डा0 अम्बेडकर दलित और वंचित वर्ग को साहसी एवं कर्मठ बनाना चाहते थे। इसके लिये शील आचरण एवं नियमित दिनचर्या पर जोर देते थे।[3] डा0 अम्बेडकर संघर्ष और सम्मान को विशेष महत्व देते थे, और उन्होंने दलितों से हीन भावना को छोड़ने का आवाहन जुलाई 1942 में नागपुर में दिये गये भाषण में किया। डा0 अम्बेडकर अवतारवाद की अवधारणा को भी नकारते हैं। मानव को स्वयं उत्तरदायित्वपूर्ण होने के लिये कहा। व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्तरादायित्व डा0 अम्बेडकर के दर्शन का प्रमुख अंग है,

---

1. द बुद्धा एण्ड हिज धम्म 1957
2. जनतंत्र के सफल क्रियान्वयन के लिये आवश्यक शर्ते (लेख) 1951
3. शंकरानन्द शास्त्री, युग पुरुष बाबा साहेब डा0 भीमराव अम्बेडकर पृ0 - 411

जो मानव प्रगति के लिये प्रमुख अंग है। वह अवतारवाद में विश्वास नहीं करते थे। ईश्वर का प्रत्यय धर्म का अनिवार्य अंग नहीं है।[1]

वे इस बात से भी सहमत नहीं थे, कि ईश्वर ने संसार को शून्य से या पूर्व-स्थित पदार्थो से पैदा किया। वे तर्क देते है कि यदि संसार को पूर्व स्थित पदार्थ से पैदा किया गया है तो ईश्वर को प्रथम कारण की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि पूर्व स्थित पदार्थ का किसने निर्माण किया। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर अपनी दार्शनिक विचारधारा का केन्द्रबिन्दु मानव एवं समाज कल्याण को ही बनाये रहे।

वे यह मानते थे कि ईश्वर के प्रति आस्था ने अनेक प्रकार की भ्रान्तियों एवं अन्धविश्वासों को जन्म दिया है।[2] वे प्रत्यक्ष प्रकृति में विश्वास करते थे। प्रत्येक घटना के पीछे किसी न किसी कारण को जरुर मानते थे। मानव के अतिप्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर रहने को बुद्धिहीनता मानते थे।[3]

मानव, उसका लक्ष्य, कर्तव्य एवं आचरण :–

डा0 अम्बेडकर मानव जीवन के अध्ययन को प्रमुख विषय मानते रहे। वे मानवीय विचारों एवं कार्यो की शुचिता पर ज्यादा ध्यान देते थे। मानव जीवन में आदर्श का भी प्रमुख स्थान है। व्यक्ति को स्वयं पर आस्था रखनी चाहिये।[4] डा0 अम्बेडकर जीवन में आत्मसम्मान को महत्व देते थे, एवं चाहते थे कि इसके लिये वर्ण भेद की भावना को समाप्त करना होगा। डा0 अम्बेडकर ने आत्म-सम्मान रहित जीवन को गुलामी के समान माना। वे आत्मविश्वास का मूल आधार संघर्ष एवं कठिन जीवन को मानते को थे। डा0 अम्बेडकर के शब्दों में,

---

1. द फिलॉसफी ऑफ रिलीजन (डा0 बाबा साहब-राइटिंग एण्ड स्पीचेज), खं0-3, पृ0 - 12
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 भीमराव अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन, पृ0 - 18
3. संविधान सभा में दिया गया भाषण - 25 - 11 - 1949
4. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 - 37

"केवल जीवित रहने में कोई विशेष बात नहीं है। मुख्य बात जीवन स्तर की है। कोई व्यक्ति दास बनकर जीवित नहीं रह सकता, कोई कायरता का जीवन व्यतीत कर सकता है, कोई संघर्ष करते हुये जीवित रहता है"।[1] समाज का हजारों सालों से जीवित रहना महत्वपूर्ण नहीं है। इसकी बजाय उसमें स्तर एवं गुण देखना चाहिये। इस प्रकार प्रमुख विषय मात्रा नहीं गुण है। डा0 अम्बेडकर के विचारों में आदर्श, आत्मसम्मान, समाज एवं देश प्रेम के बिना जीवित रहना निरर्थक है। मानव को पशुवत् नहीं मानवोचित व्यवहार करना चाहिये। वे मानव के जीवन को विकास की ओर यात्रा मानते हैं, जो सोपानवत् है, एवं भावी जीवन का निर्माण करते हुये लक्ष्य की तरफ बढ़ रहा है।

डा0 अम्बेडकर मानव स्वभाव के किसी भी वर्गीकरण के खिलाफ हैं। इस वर्गीकरण से मानव समाज को लाभ होने वाला नहीं है। वे मानव स्वभाव की विशेषतायें प्रदर्शित करते हुये कहते हैं, "मानव के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जो जिस दिशा में जाता है, वैसा ही बन जाता है।"[2]

डा0 अम्बेडकर मानव में कुछ ऐसी शक्तियाँ मानते है, जो संसार एवं समाज को सुखमय बना सकती हैं। समाज को एक परिवार मानना चाहिये, जिसमें सभी सदस्य भाई–बहिन हैं। प्रत्येक नागरिक को ऐसी स्थिति में स्वतंत्र होना चाहिये ताकि भावी जीवन अच्छा हो सके, जीवन में सेवा एवं सहयोग रखना चाहिये। मानव को अन्याय, अत्याचार, धर्मान्धता, अन्धविश्वास, दोषपूर्ण परम्पराओं एवं सामाजिक बुराइयों के प्रति निरन्तर संघर्षरत रहना चाहिये।

डा0 अम्बेडकर जहाँ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की शालीनता से परिचित थे, वहीं पश्चिमी संस्कृति की जिजीविषा से काफी प्रभावित थे। आत्म

1. एम0 एन0 दास, द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ जवाहर लाल नेहरू, 1961 पृ0 – 158
2. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन पृ9 – 353–354

सहायता एवं आत्मोद्धार के लिये वे भगवान बुद्ध के प्रेरणास्पद वाक्य "अप्पदीपो भव" के अनुयायी थे। मानव अपना भाग्य विधाता स्वयं ही है। मानव को परिस्थितियाँ बुरा बना देती है। शोषण के इस दुष्चक्र से निकलने के लिये चेतना का आविर्भाव जरुरी है। व्यक्ति को स्वयं के आत्मावलोकन द्वारा ही बोध उत्पन्न होगा। शोषण से मुक्ति संघर्ष एवं शिक्षा द्वारा होगी। उन्होंने जीवन में दुःखों का अन्त करने के लिये स्वयं की संयोजना एवं परिश्रम पर बल दिया।

सामाजिक संरचना के प्रति विचार :-

सामाजिक संरचना समाज के ढाँचे की परिचायक है। समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है।[1] उसके अंग होते हैं। यह विभिन्न अंग व्यवस्थित ढंग से संयुक्त होकर एक ढाँचे या रुपरेखा की रचना करते है। सामाजिक संरचना से समाज की बाहरी रूपरेखा या प्रतिमान का बोध होता है। इस प्रकार सामाजिक संरचना रचनात्मक या प्रतिमानात्मक पक्ष से संबंधित होने के कारण अपेक्षाकृत स्थिर धारणा है। कार्ल मेनहाइम इसे स्पष्ट करते हुये कहते हैं, कि सामाजिक संरचना अन्तःक्रियात्मक सामाजिक शक्तियों का जाल है, जिससे कि विभिन्न प्रकार के निरीक्षण एवं चिन्तन प्रणालियों का जन्म हुआ है।[2]

बाबा साहब ने जाति एवं वर्ण में जकड़े भारत राष्ट्र का गहराई से अध्ययन किया था। जाति-भेद, ऊँच-नीच, छुआ-छूत तथा नाना प्रकार के अमानवीय गुणों से लिप्त भारतीय समाज का अध्ययन किया था। बाबा साहब ने भारतीय समाज को सुधारने की नहीं बदलने की चेष्टा की थी। डा0 अम्बेडकर समाज में समानता के गुणों को ही प्रमुख आधार नहीं मानते थे। डा0 अम्बेडकर

---

1. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, पृ0 155
2. आइडियोलॉजी एण्ड यूटोपिया, पृ0 45-46

समाज के सभी सदस्यों में सामान्य एकता एवं सामान्य उद्देश्यों के भाव भी चाहते हैं। इसके बिना भाई चारे का निर्माण नहीं हो सकता । डा0 अम्बेडकर ने समाज की कल्पना करते हुये कहा था, "मेरी कल्पना का समाज ऐसा होगा, जिसका आधार स्वतंत्रता, समानता एवं भाई चारा होगा।"[1]

समाज का निर्माण निःस्पृह एवं त्यागी लोग ही कर सकते हैं, जो समस्त सांसारिक भोगो सें ऊपर उठ चुके हों। स्वार्थ की भावना तिरोहित हो चुकी हो। समाज परिवर्तन की आशा सत्ता से करना व्यर्थ है। समाज ही स्वयं में ऐसा परिवर्तन कर सकता है। सामूहिकता की भावना ही लोकतंत्र एवं मानवता की भावना को प्रबल करती है, इस प्रकार समाज परस्पर अन्तःक्रिया के द्वारा ही आगे बढ़ता है।[2] उनके अनुसार जिस समाज में भलाई की सामान्य भावना एवं समान जीवन मूल्यों के प्रति आस्था हो, वह समाज निर्माण की ओर अग्रसर होता है। समाज में छोटी–छोटी इकाइयाँ भी होती है, इनमें परस्पर सामंजस्य होना चाहिये। इनमें उपेक्षा का भाव नहीं होना चाहिए। सामाजिक न्याय की दृष्टि से वर्ण, वर्ग एवं आय के आधार पर समाज में भेद मानना समाज के लिये अत्यंत हानिकारक है।[3] डा0 अम्बेडकर सामाजिक सुधार को राजनीतिक सुधार की अपेक्षा अधिक मौलिक मानते थे।

3. आर्थिक विचार :–

डा0 अम्बेडकर मूलतः अर्थशास्त्री थे। अर्थशास्त्र के संदर्भ में उन्होंने समाज शास्त्र का अध्ययन किया। "प्रॉविन्सियल डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया" शीर्षक शोध पर उन्हें 1921 में एम0 एससी0 की उपाधि लन्दन विश्वविद्यालय से मिली, एवं "द प्राबलम ऑफ द रुपी

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, पृ0 – 132
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन पृ0 – 25
3. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 132

इट्स ऑरिजन एण्ड इट्स सोल्यूशन "शोध पर लन्दन वि0 वि0 से डी0 एस0 सी0 की उपाधि मिली।[1] उनका आर्थिक चिन्तन उनके समेकित चिन्तन का एंक पक्ष है। यह उनके यथार्थ के अनुभव से निकला है। उन्होंने पाया कि वर्ण, जाति एवं जजमानी द्वारा संचालित हिन्दू समाज का पारम्परिक सामाजिक आर्थिक ढ़ॉचा न केवल अन्यायपूर्ण है, वरन् अवैज्ञानिक भी है। प्रगति की दौड़ एवं समाज के संतुलित विकास में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी जरुरी है।

उनके आर्थिक विचार भारत की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल थे। ये चिन्तन ,संघर्ष के दौरान विकसित हुये थे। उनके आर्थिक विचार प्रमुखतः भारत की कृषि व्यवस्था, औद्योगिक नीति, बीमा, नशाबन्दी आदि के सुधार से सम्बन्धित थे।[2] वे सुधार की सुसंगतता जनतंत्र एवं राज्य समाजवाद से बनाना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर सुधारों का कार्यान्वयन संवैधानिक कानूनों के अनुसार करना चाहते थे। वे जानते थे कि यदि नेताओं का सशक्त राजनीतिक संकल्प हो, एवं नीतियों का ईमानदारी से परिपालन हो, तो भारत का आर्थिक ढ़ाँचा निर्धन एवं कमजोर वर्गों के पक्ष में बदल सकता है।

भारत में कृषि योग्य भूमि का वितरण काफी असमान ढंग से था। सामान्यतः वितरण जमींदार (भूस्वामी), मध्यम वर्ग (खेतिहर) एवं निम्न जातियों (भूमिहीन मजदूर) में विभक्त था। आजादी के बाद अधिकतम जोत सीमा कानून आदि के कारण यह वर्गीकरण यद्यपि शिथिल हुआ है। कृषि के द्वारा बड़े-बड़े कृषक आर्थिक लाभ उठाते रहे है।[3] भूमिहीन मजदूरों का शोषण होता रहा है। पम्परागत गाँवों की आर्थिक व्यवस्था कृषीय भूमि पर आधारित होने के कारण दलित वर्गों की आर्थिक स्थिति दयनीय रही है। उनके द्वारा किये गये श्रम

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन, पृ0 - 48
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित, पृ9 - 27
3. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन पृ0 - 37

की तुलना में उन्हें कम पगार मिलती रही है। वे कृषि भूमि के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे।[1]

राज्य द्वारा कृषि भूमि को निश्चित मानदण्ड के अनुसार सहकारी फार्मों में संगठित किया जाय, कर निकाल कर लाभाँश सदस्यों में वितरित किया जाय।वितरण में किसी प्रकार का जाति, धर्म या जन्म का भेद न रखा जाय। खेती सरकार द्वारा जारी नियमों के निर्देशानुसार होगी। बीज, खाद, औजार, पशु एवं पानी की आपूर्ति कर वित्तीय सहायता देने की जिम्मेदारी भी राज्य की होगी। सरकारी शर्त के अनुसार कार्य न करने वालों को दण्डित करना भी राज्य की जिम्मेदारी होगी।[2] डा0 अम्बेडकर चाहते थे कि कृषि को इतने व्यापक स्तर पर विकसित किया जाय कि वह एक प्रमुख उद्योग बन सके। उनका विचार था कि " कृषि समस्त मुख्य एवं गौण उद्योगो में बहुत ही प्राचीन एवं स्थाई है।[3] डा0 अम्बेडकर छोटी–छोटी जोतों को एक करने के पक्ष में थे, भारत में चल रहा चकबन्दी कार्यक्रम इसी का परिणाम है। पं0 नेहरु की कृषि नीति में भी डा0 अम्बेडकर के विचारों का विस्तार मिलता है। कृषीय निपुणता एवं उत्पादकता के स्तरों को बढ़ाने में डा0 अम्बेडकर सभी वर्गों को लाभ पहुँचाना चाहते थे। वे सामन्ती व्यवस्था से मुक्ति चाहते थे।

बाबा साहेब सभी प्रकार के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे। जो मुख्य उद्योग हैं, अथवा जिन्हें मुख्य उद्योग घोषित कर दिया जाय, उन्हे राज्य द्वारा संचालित किया जाना चाहिये। मात्र मूलभूत उद्योगों को राज्य द्वारा या राज्य के द्वारा स्थापित निगमों द्वारा संचालित किया जाना चाहिये।[4] डा0 अम्बेडकर इसके अलावा कम महत्व के उद्योग निजी क्षेत्र में भी देने की बात

---

1. एव0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 - 126
2. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब — पृ9 - 45
3. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 1 — पृ0 - 455
4. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित — पृ0 - 27

करते हैं, पर उन्हें समाज के व्यापक हित को ध्यान में रखना होगा। वे जानते थे कि निजीक्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का शीघ्रगामी औद्योगीकरण नहीं कर सकता। वे औद्योगीकरण एवं कृषीय ढाँचे के पुनर्निमाण के द्वारा नागरिक एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था दोनों के स्तर को उठाना चाहते थे।

वर्तमान में बीमा हमारे सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। डा0 अम्बेडकर ने काफी पहले बीमा के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया। बीमा के राष्ट्रीयकरण से लोगों के आर्थिक हितों की सुरक्षा होती है, एवं राज्य की अर्थव्यवस्था को भी भारी बल मिलता है। डा0 अम्बेडकर चाहते थे कि बीमा राज्य के एकाधिकार में हो। इसके पीछे उनके दो मुख्य उद्देश्य थे– 1. प्राइवेट कम्पनी अपने भुगतान के लिये, राज्य के ही संसाधनों को सुरक्षा के रुप में उपयोग करती है। परन्तु बीमाधन राज्य के ही हाथों में पूर्णतः सुरक्षित रहता है, इसलिये इसका राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। 2. राष्ट्रीयकृत बीमा से राज्य को जो धन की प्राप्ति होगी, वह उसका उपयोग अपनी आर्थिक योजनाओं में कर सकता है, अन्यथा वह धन उसे ऊँची ब्याज की दर पर कहीं से उधार लेना पड़ेगा।[1]

इस प्रकार उन्होने राज्य बीमा का विचार व्यक्ति एवं राज्य दोनों के हितों की दृष्टि से प्रस्तुत किया। उन्होंने यह सुझाव दिया कि बीमा व्यवसाय राज्य के एकाधिकार में हो, एवं इस बात पर भी बल दिया कि "राज्य प्रत्येक वयस्क नागरिक को बीमा पॉलिसी लेने के लिये बाध्य करे, जो उसकी आय के अनुकूल हो अथवा जिस प्रकार विधान सभा निर्धारित करे।"[2] भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने इन नीतियों का अनुसरण किया है जिससे अनेक लोगों एवं संस्थाओं को लाभ पहुँचा है। यद्यपि सरकारी कर्मचारियों के लिये बीमा अनिवार्य

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, स्टेट्स एण्ड माइनोरिटीज — पृ0 - 31
2. वही, — पृ9 - 15

कर दिया गया है, पर उसे गैर–सरकारी क्षेत्रों में अधिकाधिक लागू करने की अति आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज के विस्तरित हितों की सुरक्षा हो सके।

उन्होंने नशाबन्दी की नीति को राज्य की आर्थिक स्थिति का प्रश्न माना, एवं नाजायज शराब को रोकना सरकार के लिये चुनौतीपूर्ण काम माना। यदि सरकार को वास्तव में नशाबन्दी करना है तो उसे अपनी कर व्यवस्था को नियमित एवं सुदृढ़ करना होगा। राजस्व घाटे की पूर्ति भी नशाबन्दी में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सरकार को लोगों को घटिया स्तर की नाजायज शराब पीने से बचाना चाहियें।[1]

आर्थिक दर्शन का प्रमुख उद्देश्य राज्य को इस प्रकार उत्तरदायित्व सौंपना था, कि राज्य लोगों के जीवन का इस प्रकार नियोजन करे, जो निजी उद्योग के क्षेत्र के प्रत्येक स्थान को बन्द किये बिना उत्पादकता के सर्वोच्च बिन्दु की ओर ले जाय एवं राज्य धन का समान रुप से वितरण भी करे[2] डा0 अम्बेडकर ने कृषि क्षेत्र में जोत की सामूहिक पद्धति सहित राज्य के स्वामित्व एवं उद्योग के क्षेत्र में राज्य समाजवाद के एक परिवर्धित रुप का प्रस्ताव रखा। वे शीघ्र औद्योगीकरण के लिये भी राज्य समाजवाद को जरुरी मानते थे। वे यूरोप के निजी पूँजीवाद को भारत के लिये एक चेतावनी मानते थे।[3] वे राज्य समाजवाद की स्थापना संवैधानिक कानून द्वारा करना चाहते थे, उसे विधायिका की इच्छा पर नहीं छोड़ना चाहते थे। वे इसका लक्ष्य अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आक्रमण से सुरक्षा बताते थे, जो मौलिक अधिकारों के निर्माण का लक्ष्य होता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज के आर्थिक ढाँचे के स्वरुप के बीच जो संबंध है, प्रत्येक को स्पष्ट भले न हो, फिर भी दोनों के बीच वास्तविक संबंध है।[4]

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन — पृ0 - 42
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित — पृ0 - 43
3. वही, — पृ9 - 43
4. वही, — पृ0 - 44

वे इस तथ्य को भी जानते थे कि बेरोजगार लोग चिन्ताग्रस्त एवं अधंकारमय जीवन व्यतीत करते है। ऐसा निजी पूँजीवादी व्यवस्था के कारण होता है। इससे शोषण का चक्र बना रहता है। बेरोजगार को शोषण मुक्त कार्य की या संगठन, धर्म, अभिव्यक्ति में चुनाव की छूट दी जाय तो वह शोषण मुक्त कार्य चुनेगा, ऐसा करने का कारण पूर्णतः दयनीय आर्थिक होगा।[1] विभिन्न प्रकार के यथार्थ भय उसे मौलिक अधिकारों के पक्ष में खड़े रहने की अनुमति नहीं दे सकते।[2] डा0 अम्बेडकर व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी सुरक्षित रखना चाहते थे। इसके लिये सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप जरुरी है। ऐसा न होने पर सम्पन्न वर्ग स्वतंत्रता का मनमाना दुरुपयोग करेगा। वे मालिक की तानाशाही एवं एकाधिकार का अन्त करना चाहते थे। यह तभी सम्भव है जब राज्य समाजवाद संविधान का एक कानून बन जाय। देश के आर्थिक जीवन में इसे स्थाई संस्था बनाना राष्ट्रहित में होगा।[3]

डा0 अम्बेडकर ने लोगों के आर्थिक कल्याण को संसदीय प्रजातंत्र सहित राज्य समाजवाद के ढ़ाँचे में परिलक्षित किया। वे आर्थिक सम्पन्नता को ऐसी ओर ले जाना चाहते थे, जहाँ धन का समान एवं न्यायोचित वितरण हो। साथ ही प्रजाताँत्रिक स्वतंत्रता के आदर्श जीवन के अंग हों। डा0 अम्बेडकर योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे, यह स्थाई होना चाहिये। संसदीय प्रजातंत्र को सुरक्षित रखने का एक ही मार्ग प्रतीत होता है, कि राज्य समाजवाद को संविधानिक कानून द्वारा स्थापित किया जाय, ताकि वह संसदीय बहुमत द्वारा स्थगित, परिवर्तित या समाप्त न की जा सके। इस तरीके से ही त्रयी लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, वह है, समाजवाद की स्थापना, संसदीय प्रजातंत्र को कायम रखना एवं तानाशाही को टालना।[4]

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 - 45
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन पृ0 - 43
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित, पृ0 - 47
4. वही, पृ9 - 47

डा0 अम्बेडकर ने आर्थिक दर्शन में भी 'संतोषम् परमंधनम् को मानव जीवन का आदर्श माना। वे शूकर दर्शन के हिमायती नहीं थे।[1] सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थायें मानव जीवन को सुविधाजनक होनी चाहिये। वे उस आर्थिक व्यवस्था के हिमायती थे, जिससे दलितों के हितों का सम्पादन हो।[2]

इस प्रकार डा0 अम्बेडकर के पास सामाजिक विषमताओं को समाप्त करने के लिये, जो आर्थिक चिंतन था, समाजवादी एवं समय सापेक्ष था। अछूतोद्धार की समस्या से वे जीवन भर लड़ते रहे। वे समाज सुधार संबंधी कार्यो में ही लगे रहे। उनका मानना था कि धर्म, सामाजिक परिस्थितियाँ एवं सम्पत्ति सभी समान रुप से शक्ति एवं सत्ता के स्त्रोत हैं, इसलिये मूलभूत सामाजिक सुधारों को लागू किये बिना आर्थिक सुधारों को लागू करना कठिन होगा।

3. धर्म सम्बन्धी विचार :—

डा0 अम्बेडकर धर्म के नाम पर पाखण्डवाद के विरोधी थे। वरीयता की दृष्टि से उन्होंने धर्म, नैतिकता एवं कानून को अपने दर्शन में महत्व दिया।[3] धर्म समाज के लिये जरुरी है। धर्म मानवता के लिये जरुरी है। वे व्यवस्था को नैतिक बनाना चाहते थे। समाज को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने के लिये नैतिक नियमों का पालन जरुरी है। डा0 अम्बेडकर ने धम्म को भी मात्र धर्म के रुप में नहीं वरन् नैतिक कर्तव्य के रुप में अंगीकार किया। वे धर्म को एक सामाजिक आदर्श समझते थे, जो मानव—मानव के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का एक माध्यम बने। धर्म को लौकिक आवश्यकताओं की अनदेखी नहीं करनी चाहिऐ।[4] धर्मों को समान रुप से सत्य एवं अच्छा नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह भी समाज को लाभ और हानि दोनों पहुँचाते हैं।[5]

---

1. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर—राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 3 — पृ0 - 462
2. एच0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 - 126
3. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन — पृ0 - 07
4. वही, — पृ0 - 12
5. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, — पृ0 - 06

डा0 अम्बेडकर धर्म को जरुरी मानते थे, कहते थे, धर्म की उपेक्षा एक जीवित तार की उपेक्षा करना है।[1] पर फिर भी धर्म को आज्ञाओं एवं निषेधों का पुंज नहीं होना चाहिये। वे कानून के रुप में धर्म को पसन्द नहीं करते थे। ईश्वर किसी धर्म का अनिवार्य अंग नहीं हो सकता। धर्म को स्वतंत्र अन्वेषण या आलोचनात्मक बुद्धि की प्रगति को नहीं रोकना चाहिऐ। साथ ही धर्म व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व से विमुख नहीं करता है। धर्म का केन्द्र बिन्दु मनुष्य होना चाहिये। धर्म की प्रासंगिकता की कसौटी स्वतंत्रता, समता एवं बन्धुत्व होना चाहिये। हिन्दू धर्म इसका विरोधी है।[2] वह एडमण्ड बर्क से सहमत थे, जिसने कहा था,"सच्चा धर्म समाज की नींव है, वह आधार जिस पर समस्त सत्यनिष्ठ शासन आश्रित है और उनकी स्वीकृति भी।"[3] वे वैदिक धर्म को कल्पना व अनुमान प्रधान बताते थे। वे अस्पृश्यता के कारण इसका विरोध करते थे।[4] वे किसी भी असमानतावादी धर्म को नही मानते थे।

वर्ग कलह की समस्या :–

सामाजिक विषमता से सम्बन्धित जो घटनायें है, वे व्यक्ति की अच्छाई बुराई से सम्बन्धित नहीं है। अस्पृश्यता का प्रश्न वर्गकलह से सम्बन्धित है। यह प्रश्न स्पृश्य एवं अस्पृश्य दो वर्गों का कलह है। एक समाज पर दूसरे समाज द्वारा हो रहे अतिक्रमण का प्रश्न है। यह मात्र एक मानव पर हो रहे अत्याचार का नही वरन् एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर हो रहे अत्याचारों और सामाजिक अतिक्रमण का प्रश्न है इस सम्बन्ध में डा0 अम्बेडकर कहते है कि व्यक्ति किसी भी दिशा में जाये उसे जातिवाद के राक्षस से दो–दो हाथ करने पड़ते है।[5] एक वर्ग जो सदियों से निर्धन, निर्बल एवं दलित है, पर दूसरे सबल, शक्तिशाली, सामर्थ्यशाली वर्ग के अत्याचार का प्रश्न है। यह जोर जबरदस्ती और

---

1. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, पृ0 - 24
2. वही, पृ0 - 66
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, एनिहिलेशन ऑफ कास्ट पृ0 - 74
4. एच0 एल0 पाण्डे, गाँधी, नेहरु, टैगोर, एवं अम्बेडकर पृ0 - 120
5. वही, पृ0 - 153

Place of Publication Year of Publication Publisher

शोषण का भी विषय है।

वर्ग कलह सामाजिक दर्जे से सम्बन्धित विषय है। ऊँचे वर्ग द्वारा बातचीत करते समय दलित वर्ग से कैसे सम्बन्ध रखने चाहिये इससे सम्बन्धित विषय है। प्राचीन समय में एवं वर्तमान में वर्ग कलह से सम्बन्धित जो घटनायें हुई हैं, उससे एक समस्या स्पष्ट रुप से सिद्ध हो रही है, यदि दलित वर्ग का कोई व्यक्ति परम्परागत ऊपरी वर्ग से व्यवहार रखते समय बराबरी के रिश्ते से बर्ताव की आशा करता है तो वर्ग कलह की समस्या उत्पन्न होती है। डा0 अम्बेडकर इसे इंगित करते हुये कहते हैं कि तब तक भारत में मुक्त समाज की स्थापना नहीं होगी, जब तक कि समाज के एक वर्ग द्वारा दमन और दुर्व्यवहार जारी है।[1] गेहूँ की रोटी में मेजबानी देने के कारण, जनेऊ पहिनने के कारण, ऊँचे और कीमती कपड़े पहिनने के कारण, ताँबे और पीतल के बर्तन में पानी भरने के कारण, ऊपरी वर्ग के किसी व्यक्ति की कोई हानि नहीं होती। वंचित वर्ग अपना ही रुपया–पैसा खर्च करता है, फिर भी द्वेष पैदा होता है। डा0 अम्बेडकर कहते हैं कि इसमें तुरन्त कहा जाता है कि वे अपने परम्परागत स्तर पर ही रहें, यह अस्पृश्यता नैमित्तिक न होकर नित्य की और सदियों की चीज है।

यह स्पृश्य और अस्पृश्य दो वर्गों का कलह है और यह धर्म की देन है। इस प्रकार हिन्दू धर्म में सभी लोग जातिभेद के दास कहे जा सकते हैं लेकिन विश्व की अन्य दास प्रथाओं की भाँति इन दासों का दर्जा बराबर नहीं होता है।[2]

इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिये कि वग कलह से किस प्रकार बचाव हो। यह निर्णय करना जरूरी है एक बात मान्य करनी होगी

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 – 85
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 – 91

कि किसी भी कलह में, संघर्ष में, क्षमतावान हाथ ही विजयी होते है। अक्षम का विजय की अपेक्षा करना कल्पनावत् है। वंचित वर्ग को स्वयं के अन्दर संगठन क्षमता का गुण पैदा करना होगा।

धर्मान्तरण :

डा0 अम्बेडकर हिन्दू मतावलम्बियों की रुढ़िवादिता एवं दलितों के प्रति हीन भावना से काफी खिन्न थे। डा0 अम्बेडकर के चिन्तन मनन् का धर्म एक प्रमुख विषय रहा है। हिन्दू धर्म के अभिशाप को झेलते हुये भी वे धर्म की आवश्यकता के महत्व को स्वीकारते थे।[1] डा0 अम्बेडकर सवर्णो द्वारा वंचितों पर किये जा रहे अत्याचारों से काफी क्षुब्ध थे। इस अत्याचार के कारण वे हिन्दू धर्म त्यागने पर विवश हो गये। वे एक बात कहते थे कि मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करे।[2] वे इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बड़े से बड़ा बलिदान करने को कटिबद्ध थे। वे उस संघर्ष का आवाहन कर रहे थे। जिसका अभी तक निषेध किया जाता रहा था। वे जीवन को यथासम्भव पूर्ण एवं सुन्दर बनाना चाहते थे।[3]

महात्मा गाँधी के अस्पृश्यता निवारण के लिये चलाये गये कार्यक्रमों की मंदगति से निराश होकर डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म का विकल्प खोजने में लगे थे। उनकी दृष्टि में बौद्धिक आन्दोलन से न केवल आध्यात्मिक उत्थान की पूर्ति सम्भव है, बल्कि उससे राजनीतिक लक्ष्यों की सम्पूर्ति भी सम्भव है। उन्होंने कहा था "मैं तो शान्ति में विश्वास रखता हूँ लेकिन उस शान्ति में जो न्याय पर आधारित हो, न कि कब्रिस्तान की शान्ति में। जबतक संसार में न्यायके प्रति सम्मान नहीं होता, तब तक किसी प्रकार की शान्ति नहीं हो सकती।[4]

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 - 84
2. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन — पृ0 - 233
3. दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड 2 — पृ0 - 145
4. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 - 86

डा0 अम्बेडकर ने 1935 में नासिक में प्रेसीडेंसी अनुसूचित जाति सम्मेलन में कहा था कि अनुसूचित जातियों के साथ हिन्दू होने की वजह से अत्याचार किया जाता है, यदि वे किसी अन्य धर्म के सदस्य होते तो उन्हें अछूत कहने का साहस न होता। उन्होने दलितों से कहा कि वे किसी ऐसे धर्म को चुन लें, जो उन्हें सम्मान, प्रतिष्ठा एवं अवसर दे सके। वर्णवाद एवं ब्राह्मणवाद से मुक्ति पाना उनके जीवन का परम लक्ष्य बन गया था। उन्होंने कहा था कि, "यद्यपि मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ हूँ, क्योंकि मैं उसमें कुछ नहीं कर सकता था, लेकिन मैं एक हिन्दू के रुप में मरुगा नहीं।"[1] उनका संघर्ष त्रिकोणात्मक था। वह मात्र आर्थिक प्रगति में विश्वास नहीं करते थे, न उनका विश्वास सम्मान रहित व्यवस्था में था। वे सामाजिक अपमान की वजह से बेहद तीखी घुटन महसूस करने लगे थे। आत्मसम्मान की सुरक्षा उनकी अन्तःचेतना में गहरे से पैठ गयी थी।[2] डा0 अम्बेडकर शक्ति के प्यासे नहीं थे। उनमें स्वार्थपूर्ण राजनीतिक छल भी नहीं था। वे समता, समरसता और भ्रातृत्व भाव के पुजारी थे। तत्कालीन वर्गीय असमानता में उन्हें कठिनाई महसूस हुई।

उनके धर्म परिवर्तन की बात उठने पर सब आश्चर्य में थे। वह दस वर्ष से हिन्दू समाज में भीतर से लड़ रहे थे। उन्हें इसमें कोई सफलता नहीं मिली। कालाराम मन्दिर की टीस अभी भी उनके मन में थी, उन्हें अभी तक के सभी प्रयास बेकार लग रहे थे। वे स्वधर्म से अलग हो रहे थे। वे ईसाई एवं मुस्लिम धर्म की तरफ भी देख रहे थे। बदायूँ में होने वाली मुस्लिम कांफ्रेस में भी शामिल हुये थे। क्रिश्चियन भी भारत के ईसाई होने की बाट जोह रहे थे। सिक्ख धर्म की तरफ से धर्म बदलने की दावत दी गई थी। डा0 अम्बेडकर ईसाई, मुसलमान और सिक्ख धर्म के गहरे अध्ययन के बाद भी निश्चित नही कर पा

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 87
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 - 44

रहे थे कि कौन–सा धर्म दलित वर्ग की दासवृति से मुक्ति के लिये सहायक सिद्ध हो सकता है। वे इस बात को लेकर सशंकित थे कि कहीं वंचित वर्ग को अन्य धर्मो में भी वही समस्या न झेलनी पड़े, जिस समस्या का सामना इस समय करना पड़ रहा है। वे ऐसा धर्म चाहते थे, जो सदियों से त्रस्त वंचित वर्ग को एक नई रोशनी दिखा सके। डा0 अम्बेडकर धर्म–परिवर्तन के विचार में भी राष्ट्रीय विचारों से ओत–प्रोत थे। उनका विचार था कि यदि दलित युवक मुसलमान या ईसाई बनते है, तो वे न केवल हिन्दू वरन् भारतीय संस्कृति से भी बाहर हो जायेगे।[1] पर यदि वे सिक्ख या बौद्ध धर्म अपनाते है, तो भारतीय संस्कृति के अन्दर रहेंगे, कम से कम हिन्दुओं को थोड़ा लाभ होगा। मुसलमान या ईसाई बनने पर वे अराष्ट्रीय हो जायेंगे।[2]

धर्म–परिवर्तन के विचार पर वे इस बात से कतई चिन्तित नहीं थे, कि लोग उनका अनुसरण करेंगे या नहीं। डा0 अम्बेडकर मानते थे कि हिन्दू धर्म की अवनति के लिये इसकी कुरीतियां जिम्मेदार हैं। हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियां, तत्काल इस समस्या के समाधान की स्थिति में नहीं थी। उनमें समय का तत्व एक आवश्यक पहलू था। डा0 अम्बेडकर ने इस विषय पर पाँच या दस वर्ष तक और विचार करने का संकेत दिया।

डा0 अम्बेडकर ने 1935 में यवला (नासिक) में लाखों अछूतों के सामने बहुत ही गम्भीर एवं मर्मभेदी शब्दों में कहा कि हिन्दू धर्म का आधार जाति–पांत है, यह क्रमबद्ध असमानता का समाज है। यह केवल सामाजिक प्रथा नही है, वरन् राजनीतिक, आर्थिक एवं पौराणिक नियमों, परिनियमों से सुरक्षित व्यवस्था है। सारे ग्रन्थ इन्हीं की रक्षा के लिये लिखे गये हैं। अगर हमें मानवता

---

1. दत्तोपंत ठेंगडी, डा0 बाबा साहब अम्बेडकर, पृ0 – 12
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 46

चाहिये तो यह सारे ग्रन्थ आग के सुपुर्द करने होगें, तभी इस धर्म की असमानता अन्याय, शोषण एवं क्रमिक घृणा समाप्त हो सकेगी। उन्होंने जाति तोड़क मण्डल लाहौर के वार्षिक अधिवेशन 1936 की अध्यक्षता स्वीकार कर लेने के बाद अपने अध्यक्षीय भाषण में भी जातिवाद की बुराई की थी।

धर्मात्तरण का प्रश्न डा0 अम्बेडकर की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। वे धर्मात्तरण को सहज नहीं लेते थे, इसे दलित समाज की जिन्दगी और मौत का प्रश्न मानते थे। जो धर्म अपने अनुयायियों को उपने धर्म–बन्धुओं के साथ मानवीय ढंग से आचरण की शिक्षा नहीं दे पाया हो, वह धर्म नहीं शक्ति प्रदर्शन है। वे उस धर्म को दिखावा मानते थे, जो अज्ञानी को अज्ञानी और गरीब को गरीब बने रहने पर विवश करे।[1] बिना हिन्दू धर्म का त्याग करे मानवता और मनुष्यता से परिपूर्ण कदम कदापि सम्भव नहीं था।

एम0 सी0 राजा ने डा0 अम्बेडकर के धर्म–परिवर्तन पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। गणेश अम्काजी गवाई ने यहाँ तक कहा कि डा0 अम्बेडकर अवसर देखकर रंग बदलते हैं। पूर्व में वे सयुंक्त निर्वाचन की बात करते थे, किन्तु जब अंग्रेज सरकार ने उन्हें गोलमेज सम्मेलन के लिये निमन्त्रित किया, तो वे सरकार एवं मुसलमानों से मिलकर पृथक निर्वाचन की बात करने लगे। जो कभी अम्बादेवी और कालाराम के मन्दिरों के प्रवेश के लिये दौड़ लगा रहे थे, वे ही अब गिरिजाधरों और मस्जिदों के चक्कर काट रहे हैं। हिन्दू नेता समाज से अस्पृश्यता और असमानता की बुराइयों को मिटाने के प्रयास कर रहे हैं, किन्तु उनके पास कोई जादुई चिराग नहीं है, कि वे समाज में सदियों से विद्यमान इन बुराइयों को मिनटों में रफूचक्कर कर दें। जब अम्बेडकर हमारे अपने लोगों में

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 47

विद्यमान अस्पृश्यता एवं असमानता को नहीं मिटा सके, तो उनके लिये यह नैतिक रूप से उचित नहीं है, कि वे किसी को धर्म परिवर्तन की सलाह इस आधार पर दें कि हिन्दू धर्म में विषमता है। अम्बेडकर का धर्म–परिवर्तन का निर्णय दर्शाता है, कि उनमें दूरदर्शिता का अभाव है।[1]

डा0 अम्बेडकर इन आलोचनाओं से कभी नहीं दबे, और अन्त तक कहते रहे, कि हिन्दू धर्म का परित्याग ही दलितों की मुक्ति का एक मात्र मार्ग है। उन्होंने हिन्दू धर्म में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का अभाव होने के कारण इसे पूर्णतः अस्वीकार कर दिया है।[2] डा0 अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था, कि उनका झगड़ा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों से है और बहुत हद तक मौलिक है।

वे बौद्ध धर्म को भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग स्वीकारते थे। हिन्दू धर्म की गहरी यन्त्रणा और असमानता से रूष्ट होकर ही उन्होने हिन्दू धर्म को त्यागने का निर्णय लिया था।[3] बौद्ध धर्म को स्वीकार करने की एक वजह हो सकती है कि डा0 अम्बेडकर की संस्कारगत धारणायें और आस्थायें हिन्दू धर्म के निकट है, और बौद्ध धर्म कुछ बातों को छोड़कर हिन्दू धर्म के समान हैं। डा0 अम्बेडकर के साथ लाखों दलितों ने भी बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था, बौद्ध धर्म में ''धम्म'' शब्द का इस्तेमाल हुआ है, जिसमें ईश्वर के स्थान पर नैतिकता की स्थापना है। इसके अनुसार कोई ऊँच,–नीच नहीं है। सभी समान है।[4] बौद्ध दर्शन में करूणा और दया का प्रमुख स्थान है, उनके बौद्ध धर्म स्वीकार करने का एक कारण दार्शनिक चितंन के अतिरिक्त एक सुधारवादी आंदोलन प्रारम्भ करना भी था। बुद्ध ने पृथकतावाद और अस्पृश्यता के खिलाफ आवाज उठायी थी।[5] उनका धर्म–परिवर्तन व्यक्तिगत पीड़ा की ऊब से निकला हुआ था। वे महसूस करते

---

1. एच0एल0पाण्डे, गांधी, नेहरु, टैगोर, एवं अम्बेडकर पृ0 – 131
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चितंन, पृ0 – 19
3. एच0एल0पाण्डे, गांधी, नेहरु, टैगोर, एवं अम्बेडकर पृ0 – 132
4. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चितंन पृ0 – 18
5. डा0 बी0आर0अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 – [illegible]

थे, कि केवल बुद्ध धर्म ही विश्व का एक मात्र ऐसा धर्म है जो वास्तविक धर्म की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह वास्तविक धर्म की कसौटी पर खरा उतरता है।

वे इस बात से चिंतित थे कि मात्र धर्म परिवर्तन ही विकास नही ला सकता है। इससे अछूतों का विकास सम्भव नही है, विकास तो स्वयं ही करना पड़ेगा, सर्वत्र संघर्ष करना पड़ेगा। धर्म परिवर्तन में दासता की जंजीर खोने के सिवाय कुछ और नहीं खोना है, वरन् इससे चीजों की प्राप्ति के अवसर प्राप्त हो जाते है सामाजिक असमानता कम हो जाने की आशा है।

डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म और समाज दोनो को अस्वीकार कर दिया, उनका पक्का विश्वास था, कि गांधीवादियों, उदार हिन्दुओं और मार्क्सवादियों ने जातीय अन्याय एवं शोषण को कभी भी गहराई से नहीं लिया। अनुसूचित जातियों को एक विकल्प की तलाश थी एवं हिन्दूधर्म को छोडकर बौद्ध धर्म अपनाना इस बात का प्रमाण था, कि हिन्दू धर्म में व्याप्त दोषों को हटाने में हिन्दू समाज पूरी तरह विफल रहा है। वे भिक्षुओं को भी ईसाई मिशनरी की तरह सामाजिक शिक्षक व कार्यकर्ता बनाना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर का राष्ट्र प्रेम प्रशंसनीय था। वे स्वराज एवं धर्म परिवर्तन दोनों का लक्ष्य स्वतन्त्रता मानते थे।[1]

हिन्दू धर्म में सुधार :-

धर्म परिवर्तन के लिये वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ही जिम्मेदार है, हिन्दू धर्म जिम्मेदार है, और हिन्दू समाज जिम्मेदार है।[2] धर्म इस गुलामी का

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 - 49
2. राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 89

कारण है। डा0 अम्बेडकर इसका कारण समयगत रूढियां बताते है। वे कहते हैं, कि इस प्रश्न पर स्पृश्य वर्ग ही सुधारक निर्णय ले सकता है। इस अपराध के लिये समाज को अपराध बोध महसूस करना चाहिये। किसी और के दोष की सजा निर्दोष अस्पृश्यों को क्यों दी जाए। तत्कालीन दलित आंदोलन का लक्ष्य हिन्दू समाज में सुधार करना नहीं था। वह तो उसे बदलना ही चाहते थे। दलित आंदोलन का लक्ष्य स्ववर्ग के लिये लड़ना और स्वतन्त्रता को प्राप्त करना था। उल्लेखनीय है कि डा0 अम्बेडकर धर्म--परिवर्तन को स्वतंत्रता से जोड़ते थे। दलित आंदोलन वास्तव में आजादी और शोषण से मुक्ति चाहता था।

डा0 अम्बेडकर का मानना था कि यदि धर्मान्तरण द्वारा आजादी मिल सकती है, तो फिर हमें हिन्दू समाज को सुधारने के लिये फालतू जिम्मेदारी अपने सिर पर नही लेनी चाहिये। वे इस लड़ाई में दिशा ही बदलना चाहते थे। लौकिक मानव की अवहेलना करने वाले धर्म को वे धारण योग्य नहीं समझते थे।[1] हिन्दू समाज में सुधार अछूत निर्मूलन आन्दोलन का लक्ष्य नही है। इस आन्दोलन का लक्ष्य अछूतों को सामाजिक आजादी दिलाना है। आंदोलन का वास्तविक लक्ष्य समानता भी है।[2] हिन्दू धर्म में समानता प्राप्त करने का कोई अर्थ नहीं, इससे मात्र छुआछूत का अन्त होगा। यह समानता तो चातुर्वर्ण के विध्वंस पर ही हो सकती है।[3] डा0 अम्बेडकर को सबसे अच्छा रास्ता धर्मान्तरण का दिखाई दिया। हिन्दू अन्य धर्मो को समानता की दृष्टि से देखता है, धर्मान्तरण से सामाजिक समानता बड़ी आसानी से हासिल की जा सकती है।

वास्तव में वंचितों को हिन्दू धर्म में रहने पर छुआछूत, रोटी--बेटी के लिये झगड़ना पड़ेगा। इस झगड़े से दोनों वर्ग परस्पर दुश्मन बनेगे।

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चितंन, पृ0 - 67
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चितंन, पृ0 - 19
3. डा0 बी0आर0अम्बेडकर, दलित जन उभार, पृ0 - 63

धर्मान्तरण करने पर झगड़े का मूल कारण ही समाप्त हो जायेगा, फिर न सामाजिक हकों के लिये संघर्ष की जरुरत होगी न आन्दोलन की, अन्ततः परस्पर स्नेह का संचार होगा। धर्मान्तरण से समता स्थापित हो सकती है। डा० अम्बेडकर के विचार में यह वास्तविक आजादी का रास्ता है। वे इसे पलायन का नही वरन् समझदारी और मानवता का रास्ता मानते थे।[1]

डा० अम्बेडकर सामाजिक अस्पृश्यता की वजह से आर्थिक उन्नति को भी धर्मान्तरण के बाद स्थान देते थे। वे मानते थे कि कोई भी व्यापार या उन्नति का साधन सामाजिक बहिष्कार के कारण इस समाज व्यवस्था में सम्भव नहीं है। तत्कालीन परिस्थितियों में लेन देन का कोई व्यवहार नहीं था। अस्पृश्यता रूपी बाधा बिना लेन देन के हटने वाली नही है।

उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे धर्मान्तरण करेंगे, वे धर्मान्तरण में तात्विक बुद्धिनिष्ठता, विवेक, एवं चिरकाल की सुरक्षा देखते थे। वे तात्विक और भौतिक लाभ के लिये धर्मान्तरण को जरूरी मानते थे। मृत्यु के बाद आत्मा की गति को सोचना वे मनोरंजन का साधन मानते थे। मरने के बाद सुख की चिन्ता केवल वही कर सकता है, जिसने जीवन में सुख भोगा हो।जिनको इस लोक में सुख नहीं मिला, वे परलोक के सुख के बारे में क्यों सोचें? जिनको कभी समाजिक सम्मान नहीं मिला, जिनकी बहू–बेटियों की इज्जत को लाठी के बल पर लूटा गया हो, जिनको पीने के पानी के लिये तड़पना पड़ा हो, वे इस समाज और धर्म से स्वाभाविक रूप से विरत् हो जायेंगे। हिन्दू समाज को धर्मान्तरण के कारणों पर तात्कालिक, व्यवहारिक एवं भौतिक दृष्टि से विचार करना चाहिये, इस वंचित समाज की निराशा तत्कालीन व्यवस्था और धर्म से उपजी थी।

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा० अम्बेडकर के विचार पृ० - 44

गाँधी जी के विचार से डा0 अम्बेडकर सहमत थे, कि मानव को समाज में रहने के लिये कोई न कोई धर्म अपनाना जरूरी है। हिन्दू धर्म में वे जन्म से उपेक्षित होते आ रहे थे कई धर्मों का अध्ययन करने के बाद उन्होंने स्वयं को बौद्ध धर्म के निकट पाया था। डा0 अम्बेडकर मानते थे कि धर्म साधन है, और मनुष्य साध्य। धर्म को मानव कल्याण के लिये बदला जा सकता है। तमाम दलित अछूतों की दुर्दशा से बदलाव का वातावरण निर्मित हुआ। धर्मान्तरण में ही सुख देखा गया। भगवान बुद्ध के वाक्य "अप्प दीपो भव" (आत्म दीपो भव) न केवल डा0 अम्बेडकर के लिये बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिये प्रकाश स्तम्भ के समान है।

डा0 अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपनाने का निर्णय मई 1956 में लिया था। एक विशाल रैली में अपने साथियों को भी बौद्ध दीक्षा लेने की सलाह दी थी। वयोवृद्ध भिक्षु महास्थिवर चन्द्रमणि द्वारा 14 अक्टूबर 1956 को पांच लाख व्यक्तियों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिलायी गयी। वहां के वायुमण्डल में अधोलिखित स्वर समवेत रूप से गूँज उठा –

"बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।"

डा0 अम्बेडकर मानते थे कि बुद्ध पर भरोसा रखो, उनकी की शरण में जाओ, सच्चाई की राह पर चलो। बुद्ध ने अन्तिम सत्य, ईश्वर, आत्मा एवं अमरत्व के वितण्डावाद में पड़ने से इन्कार कर दिया था। इस विचार से डा0 अम्बेडकर प्रभावित थे।

तृतीय अध्याय

राज्य एवं राजनीतिक चिन्तन

डा0 अम्बेडकर सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्ति के जनक हैं। उनके विचारों में राजनीतिक एवं सामाजिक संयोजना भी थी। डा0अम्बेडकर दूरदर्शी थे, उनका मानना था कि राजनीतिक गतिविधियां सामाजिक धरातल को प्रभावित करने वाली होनी चाहिये। हिन्दू समाज की दुर्दशा देखकर उन्हें भयंकर पीड़ा होती थी। वे वर्तमान सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में थे। और समाज बदलने के लिये प्रयासशील भी थे। अखिल भारतीय बहिष्कृत वर्ग के अध्यक्ष पद से बोलते हुये 1930 में डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि अस्पृश्य समाज का ध्येय स्वराज है। उस परिषद में उन्होने राष्ट्रवादी घोषणा की, कि अस्पृश्य समाज की दयनीय अवस्था का अंत ब्रिट्रिश शासन में नहीं होगा। वह स्वराज की संरचना द्वारा अपने हाथों राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने पर ही होगा। डा0 अम्बेडकर की राष्ट्रभक्ति उत्कृष्ट एवं बेजोड़ थी।

1. राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद :—

डा0 अम्बेडकर का कहना है कि राष्ट्रवाद वह विचारधारा है, जो देश के प्रति प्रेम और भक्ति भावना पर आधारित है। प्रत्येक देशभक्त व्यक्ति की ऐसी इच्छा होना स्वाभविक है कि अपना देश वैभवशाली बने, राष्ट्र सुखी व सम्पन्न हो। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़े। बेकारी, भुखमरी, बेरोजगारी एवं अशान्ति न हो। न्याय सुलभ हो। आपसी झगड़े समाप्त हों। साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय भाषायी एवं जातीय संकुचितता से ऊपर उठकर लोग सोचे तभी हिन्दुस्तान एक राष्ट्र बन सकता है।[1] दलीय अभिनिवेशों से नेतागण मुक्त हों। राष्ट्र अपने राष्ट्रीय स्वरूप में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक सभी प्रकार के क्षेत्रों में लोक कल्याणकारी सिद्ध हो।

---

1. डा0 बी0आर0अम्बेडकर, स्वराज हमारे ऊपर राज पृ0 - 87

डा0 अम्बेडकर के अनुसार राष्ट्र एक जीवित इकाई है। निश्चित भू–भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब इस भूमि के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है। जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परम्परा और महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है। सुख–दुख की समान स्मृतियां और शत्रु–मित्र की समान अनुभूतियां प्राप्त कर परस्पर सम्बन्धों में ग्रंथित होता है। संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिये सचेष्ट होता है, और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले एवं उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिये महान तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरुषों की श्रंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है, इस भावनात्मक रूप को ही राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीय अस्मिता बनी रहती है, राष्ट्र जीवित रहता है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र क्षीण होता हैं, एवं नष्ट होने से राष्ट्र नष्ट होता है।

राष्ट्र को मकान की तरह से नहीं बनाया जा सकता। राष्ट्र निर्माण के पीछे का भाव उसे मजबूत करना है, राष्ट्र की मूल प्रवृति 'जन' है। एक लम्बी और अनवरत् प्रक्रिया में से पीढ़ियाँ--दर–पीढ़ियाँ एक विशिष्ट प्रकृति को लेकर वह 'जन' पैदा होता है। इस जन की मूल प्रवृति ही उसका जीवनाधार होती है। यही जन अपनी मूल प्रकृति के पोषण के लिये किसी भूमिखण्ड से सम्बन्धित होता है। उस भूमिखण्ड के साथ उसका सम्बन्ध पुत्र एवं माँ का होता है। अपनी जीवनाधार मूल प्रकृति के समस्त पोषक तत्व उसे इस भूमि से ही मिलते है। यह मातृभूमि ही उसका सब भाँति एवं पोषण एवं संवर्धन करती है। भूमिखण्ड केवल भूमि का टुकड़ा न होकर जीवंत मातृशक्ति के रूप में उपस्थित रहता है। इधर इस पुत्र रूप समाज की अपनी स्वतंत्र जीवनशक्ति होते हुये भी बिना मातृभूमि के

प्रकटीकरण नहीं हो सकता। उसका लालन–पालन, पोषण एवं वृद्धि नहीं हो सकती, यदि जननी न हो, तो पुत्र के बिना माँ का अस्तित्व निरर्थक है। कौन है जो उसके गुण गाये, कण–कण से प्यार करे, इतिहास पढ़े उसे, गौरवान्वित करे? यह पुत्र रूप समाज न हो, तो कौन चप्पा–चप्पा धरती के संरक्षण के लिये सीने पर गोलियां सहे। यह भूमि का स्नेह है, जो जीवन का संचार करती है।

भारत, अमेरिका और आस्ट्रेलिया की तरह कॉलोनी नहीं है, वरन् जन्म देने वाली माँ एवं ईश्वर से भी बड़ी माँ है। डा0 अम्बेडकर भारत को इसी रूप में माँ की संज्ञा देते थे, उनके बौद्ध–धर्म स्वीकार करने के पीछे काफी हद तक माँ एवं पुत्र की यह भावना भी थी।[1] डा0 अम्बेडकर इस मूल प्रवृति को जीवित रखते हुए, दलित समाज को समर्थ, स्वावलम्बी, कार्यक्षम विजयी एवं सर्वकाल नवोन्मेषकारी शक्ति से युक्त करना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर के अनुसार राष्ट्रवाद को किसी भी रुप में परखा जाय, एवं कोई भी इसे त्यागने की इच्छा प्रकट करे, पर राष्ट्रवाद एक ऐसा तथ्य बन चुका है कि इसे मानव समाज से पृथक नहीं किया जा सकता है। डा0 अम्बेडकर ने कहा था राष्ट्रवाद एक ऐसा तथ्य है, जिसको न तो भुलाया जा सकता है, न ही अस्वीकार किया जा सकता है । चाहे कोई व्यक्ति राष्ट्रवाद को अबौद्धिक भावना कहे या वास्तविक भ्रम, इसमें एक ऐसी शक्ति निहित है, एक ऐसा गत्यात्मक बल है, जिससे अनेक साम्राज्यों को छिन्न–भिन्न किया जा सकता है। राष्ट्रवाद सही है या मानवता के लिये हानिकारक है, यह केवल जोर देने की भावना पर निर्भर है।[2] राष्ट्रवाद की भावना की प्रभावशीलता सिद्ध हो चुकी है। डा0 अम्बेडकर राष्ट्रवाद को मानव जीवन में एक शक्ति के रूप में मानते है। संसार में राष्ट्रवाद लोगों के लिये जीवन–मरण का प्रश्न रहा है। भारत में स्वतंत्रता संग्राम के समय इसी भावना का प्रखर स्वरूप देखने को

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 45
2. डा0 बी0आर0अम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर दी पार्टीशन ऑफ इंडिया पृ0 – 207

मिलता है। भारतीय नेताओं जैसे तिलक, गांधी, पटेल, नेहरु एवं अम्बेडकर ने लोगों में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया।

1927 में भारत की राजनीतिक स्थिति का सर्वेक्षण करने के लिये साइमन कमीशन का आगमन हुआ। उस समय अनेक दलों और संस्थाओं ने अपनी-अपनी योजनाये एवं शिकायतें उस कमीशन को पेश की। भावी संविधान में हमें क्या करना चाहिये, इसका ब्यौरा हर एक संस्था ने अपने-अपने प्रतिवेदन में दिया था, मुम्बई की तरफ से एक योजना वृत्त दिया गया था। इस वृत्त में बाबा साहब ने एक सलाह पत्रिका जोड़ दी थी, इसमें उन्होंने जातीय प्रांत रचना का विरोध किया था। जातीय एवं प्रादेशिक मतदाता दलों का भी विरोध किया था। उनका विचार था कि मुसलमानों, अग्रेंजों एवं अस्पृश्यों के लिये संयुक्त मतदाता दल हो, उसमें आरक्षित स्थान रखे जाय। उन्होंने स्पष्ट किया कि कई देशों में विभिन्न सम्प्रदायों या धर्मों के लोग संयुक्त मतदाता दल का विरोध न करके एक ही शासन के अधीन मिल-जुल कर निवास करते हैं। उन्होंने विचार प्रकट किया कि यहाँ के मुसलमानों ने जातीय तत्व प्रणाली पर अलग मतदाता दल की माँग नहीं की है। जातीय प्रतिनिधि तत्व मूलतः गलत है। उन्होंने कहा कि भावी प्रान्तीय मण्डल विधिमंडल के प्रति जिम्मेदार हो, जातीय एवं पंथीय मतदाता दलों को हटाया जाय। डा0 अम्बेडकर क्रान्तिकारी विचारों के राष्ट्रवादी नेता के रुप में समूचे भारत में गौरवान्वित हुये।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता में अन्तर है। वे दो पृथक-पृथक मनोवैज्ञानिक बातें है। राष्ट्रीयता अपनत्व की चेतना, जातीय स्थिति की भावना है, पर इसका अर्थ यह नही है कि राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद बिल्कुल

ही दो भिन्न बातें हैं। उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। बिना राष्ट्रीयता की भावना के राष्ट्रवाद नही हो सकता, हालांकि यह जरुरी नहीं है कि राष्ट्रवाद के बिना राष्ट्रीयता की भावना न हो। डा0 अम्बेडकर के अनुसार राष्ट्रीयता निम्न दो बातों में राष्ट्रवाद को जन्म दे सकती है।

1– लोगों में एक राष्ट्र के रुप में रहने की इच्छा का जागरण होना चाहिये। राष्ट्रवाद उसी इच्छा का गत्यात्मक प्रदर्शन है।

2– राष्ट्र की उसी इच्छा के लिये एक भौगोलिक क्षेत्र भी होना चाहिये। यह ऐसा होना चाहिये जहां राष्ट्र का सांस्कृतिक घर भी बन सके।

भौगोलिक क्षेत्र के बिना राष्ट्रवाद उस आत्मा के समान है, जो किसी शरीर की तलाश में इधर–उधर भटकती है, ताकि उसका नया जीवन चल सके। अतः राष्ट्र के रुप में रहने की एक दृढ़ इच्छा, एक निश्चित स्थान को सांस्कृतिक घर या राज्य बनाने की दृढ़ प्रतिज्ञा ही राष्ट्रवाद का सार है। इतना होने पर ही एक नये राष्ट्र की उत्पत्ति हो सकती है।

डा0 अम्बेडकर भारतीय राष्ट्रवाद में प्रबल आस्था रखते थे। इसको दृढ़ बनाने के लिये उन्होंने सदैव सामाजिक एकता पर बल दिया उन्होंने कहा, कि लोग यह नहीं सोचें कि वे पहले भारतीय है, तब हिन्दू, मुसलमान, सिन्धी और कन्नड़ हैं, बल्कि यह सोचें के वे शुरु से अन्त तक भारतीय हैं।[1] राजनीतिक संगठनों के द्वारा वह एकता नहीं आ सकती जो एक राष्ट्र के स्थायित्व के लिये जरुरी है। इससे राष्ट्रवाद की भावना सुदृढ़ हो सकती हैं। उनके विचार से सामाजिक एकता के बिना राजनीतिक एकता प्राप्त करना कठिन है, एवं यदि प्राप्त भी कर ली जाय, तो उस मौसमी पौधे के समान होगा, जो हवा के मामूली झोंके से उड़ जायेगा। उनका विचार था, कि भारत एक राज्य हो सकता है, पर

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 103

राज्य होना राष्ट्र का होना नहीं समझा जाना चाहिये, एवं जो राष्ट्र नहीं है उसके जीवित रहने के बहुत कम अवसर होते है। यह बात उस राष्ट्रवाद के लिये सही है, जहां मिश्रित राज्य विघटनकारी तत्वों के रूप में कार्य करते है। मिश्रित राज्य में उतना भय बाह्य आक्रमण का नहीं है जितना आन्तरिक उपद्रवों का है। जहां पर विभिन्न राष्ट्रीयताओं को दबाकर अन्याय के साथ रखा जाता है, वहाँ उपद्रव होने की सम्भावनायें बनी रहती हैं। इसके उदाहरण के लिये पूर्व सोवियत रुस को देख सकते है। विभिन्न जातियाँ और समुदायों को एक सूत्र में बाँधने का एक ही उपाय है कि सामाजिक भाईचारे की भावना बढ़ायी जाये। अन्य एकताओं के लिये सामाजिक एकता जरुरी है। जिस राष्ट्र में एकता नही वह राष्ट्र निर्बल है।[1] इस प्रकार डा0 अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों में यह बात स्पष्ट है कि सच्चे राष्ट्र के लिये दो बातों का होना जरूरी है। प्रथम राष्ट्र के सन्दर्भ में राष्ट्रवाद का मौलिक आधार सामाजिक एकता की दृढ़ भावना होनी चाहिये। इसके बिना राष्ट्रवाद स्थाई रूप से टिक नहीं सकता। द्वितीय, अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्रवाद का आधार मानव प्रगति एवं भलाई होनी चाहिये, अन्यथा संकुचित राष्ट्रवाद संघर्ष एवं युद्धों को जन्म दे सकता है। राष्ट्रवाद को अन्याय एवं दमन का रूप धारण नहीं करना चाहिये।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय ही नहीं उसके बाद भी डा0 अम्बेडकर ने राष्ट्रीय भावनाओं का अच्छा परिचय दिया। उनमें राष्ट्रवाद की भावना का उदय उन लोगों में आस्था के साथ हुआ, जो निर्धन अछूत और शोषित थे। वे उन सभी के लिये समानता एवं नागरिक अधिकार चाहते थे, जिनको उनसे वंचित रखा गया था। उनकी राष्ट्रीय भावनायें दृढ़ एवं गम्भीर थी। वे पूर्णरूप से एक सच्चे राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रीय सम्मान और सामाजिक एकता उनकी राष्ट्रीय

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 - 104

भावना का मूल आधार है। वे व्यक्ति से बढ़ कर राष्ट्र को मानते थे।

2. समाज एवं राजनीतिक जनतन्त्र :—

डा0 अम्बेडकर राजनीतिक एवं सामाजिक जनतंत्र से कुछ कम नहीं चाहते थे। वे इनसे अधिक के अभिलाषी थे। उनके अनुसार जनतंत्र को यथार्थ पर आधारित होना चाहिये। बुद्धि एवं अनुभव पर आधारित प्रजातन्त्र को सामाजिक सहयोग, जनसेवा एवं समानता का स्वरूप धारण करना चाहिये। जनतन्त्र का प्रमुख आधार मानवीय प्रकृति की योग्यताओं में विश्वास है। मानवीय बुद्धि में एक ऐसी आस्था है जो कि सहयोगिक अनुभव की शक्ति से लाभ उठाये जाने पर बल देती है। यदि प्रजातन्त्र यथार्थपरक नहीं है, तो वह कुछ भी नहीं है। लोगों की वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है। जनतन्त्र में वैचारिक बातें बहुत कम होती है। डा0 अम्बेडकर का प्रजातन्त्र सामाजिक यथार्थवाद मानव बुद्धि एवं अनुभव जीवन के प्रति व्यवहारवादी एवं मानववादी रूख पर आधारित है।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार राजनीतिक जनतन्त्र चार आधार वाक्यों पर टिका है। —

1—व्यक्ति स्वयं में साध्य है।

2—व्यक्ति के कुछ अपृथक अधिकार होते है, जिनकी प्रत्याभूति संविधान द्वारा मिलती है।

3—किसी सुविधा को प्राप्त करने के लिये व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों का हनन नहीं करना चाहिये।

4—राज्य व्यक्तिगत लोगों को ऐसे अधिकार नही देगा, जिससे वे दूसरे लोगों पर शासन करे।[1]

---

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब पृ0 - 50

व्यक्ति का सम्मान, राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक प्रगति, मानव अधिकार, संवैधानिक नैतिकता आदि डा0 अम्बेडकर के राजनीतिक प्रजातन्त्र के आवश्यक अंग है। जिसे डा0 अम्बेडकर "आधार प्लान" कहते है। उनकी सम्मति में "आधार प्लान" का अर्थ किसी समुदाय के सामाजिक ढांचे से है, जिसमें राजनीतिक योजना को व्यवहार में लाया जाता है। सामाजिक जनतन्त्र के अभाव में राजनीतिक जनतन्त्र प्रगति नहीं कर सकता है। सामाजिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतंन्त्रता एवं समानता का कोई अर्थ नहीं है। राजनीतिक लोकतन्त्र भी अर्थहीन है। सामाजिक ढांचा बलपूर्वक प्रभाव डालकर राजनीतिक ढांचे की संरचना को प्रभावित कर सकता है। उसकी कार्यविधि को परिवर्तित कर सकता है। उसको उद्देश्य हीन बना सकता है। उसको गलत दिशा में भी मोड़ सकता है, इसलिये राजनीतिक, आर्थिक विषय सम्बन्धी निर्णय लेने से पूर्व सामाजिक व्यवस्था को घ्यान में रखा जाना चाहिये। लोकतन्त्र को सामाजिक आदर्श एवं राजनीतिक विधि दोनों के अनुकूल होना चाहिये।

बीसवीं शदी में डा0 अम्बेडकर ने भारत में प्रजाताँत्रिक परम्पराओं को बनाये रखने में भारी योगदान दिया। वे प्रजातंत्र विरोधी विचारों का खण्डन करते थे। उन्होने प्रजातंत्र के पक्ष में मौलिक विचार रखे। वे सदैव राजनीतिक एवं सामाजिक आदर्शों का समन्वय करते रहे। वे जानते थे कि ऐसे गुण किसी अन्य व्यवस्था में नहीं मिलते है। समाज बिना प्रजाताँत्रिक व्यवस्था के शिखर पर नहीं पहुँच सकता। लोकतंत्र स्वतंत्रता प्रदान करके मानव को नवीन विचार खोजने पर बाध्य करता है। मानव में जनतंत्र के द्वारा रचनात्मक विचारधारा का प्रादुर्भाव होता है। इससे जनकल्याण की भावनायें जाग्रत होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्तिगत प्रतिभाओं को उभरने का पर्याप्त अवसर मिलता है।

डा0 अम्बेडकर मानते हैं कि शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से लोगों में भिन्नता पाये जाने के बाद भी प्रजातंत्र का मार्ग बाधित नहीं होना चाहिये। सैद्धान्तिक रुप से समानता के सिद्धान्त को माना जाना चाहिये। समानता के अभाव में समाज में विशेषाधिकार प्राप्त एवं सम्पन्न वर्ग के लोग ही प्रगति कर सकेंगे। प्रजातंत्र सभी के प्रति समान व्यवहार एवं दृष्टिकोण अपनाता है। वे मानते थे कि समाज में अधिक विषमता लोकतंत्र के लिये दुखद है। समाज में शोषक एवं शोषित दोनों वर्ग हैं, इस स्थिति में लोकतंत्र का प्रभावी होना कठिन है। बाबा साहेब लोकताँत्रिक भारत के साथ लोकताँत्रिक समाज देखते थे, जिसमें स्वतंत्रता, समता व बन्धुता जीवन के अभिन्न अंग हों।[1] बेन्थम के मत की समानता के सिद्धान्त को यहाँ पर उल्लिखित करना प्रासंगिक रहेगा। डा0 अम्बेडकर ने बेन्थम से भी आगे जाकर लोकतंत्र की आत्मा पर बल दिया। इसके अनुसार जनतंत्र की आत्मा, "एक मानव, एक मूल्य" के सिद्धान्त में निहित है। इसका अर्थ है व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक पहलू राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक में उचित स्थान देना। व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक कल्याण की तरफ ध्यान देना, यही प्रजातंत्र का मूल्य है।

बेन्थम के सिद्धान्त का व्यवहारिक रूप केवल राजनीतिक क्षेत्र में "एक व्यक्ति, एक मत" के अधिकार को अपनाकर मिलता है। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि इस अधिकार का परिवर्तन "एक मानव, एक मूल्य" में होना जरुरी है।[2] लोकतंत्र में आर्थिक शक्तियाँ कुछ लोगों के हाथों में सीमित हो जाती है। जो उन्हें शोषण का अस्त्र बना लेते हैं। इसी कारण "एक मानव, एक मूल्य" के सिद्धान्त को व्यवहारिक रुप प्राप्त नहीं हो पाता। यही कारण है, कि सब लोग आर्थिक कल्याण को प्राप्त नहीं कर सके हैं। आर्थिक कल्याण बिना आर्थिक

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब पृ0 - 27
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिंतन पृ0 - 45

प्रजातंत्र के सम्भव नहीं है। आर्थिक प्रजातंत्र इस सिद्धान्त का मूल आधार है। आर्थिक समृद्धि के बिना प्रजातंत्र का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता।[1]

डा0 अम्बेडकर राजनीतिक प्रजातंत्र का आर्थिक प्रजातंत्र से संयोग करना चाहते थे। वे लोगों की जरूरतों को सरलता से संतुष्ट करना चाहते थे। ऐसी स्थिति में उनमें से उत्तम लोग उत्पन्न हो सकेंगे, एवं प्रतिभाओं को प्रकट कर सकेंगे। समान व्यक्ति समान मत के चरितार्थ होते कोई व्यक्ति भूख, घर एवं वस्त्र की कमी से नही मरना चाहिये। वे पूँजीवाद के अलावा अन्य व्यवस्थाओं में भी आर्थिक प्रजातंत्र को देखते थे। प्रजातंत्र का अर्थ इसी में निहित है कि समाज में रहने वाले सभी नागरिक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न रहें। वे राजनीतिक रुप से अपना जीवन यापन करते रहें।

वर्तमान भारत में एक व्यक्ति एक मत का सिद्धान्त तो सफलता पूर्वक सत्य प्रतीत होता है, परन्तु एक मानव, एक मत का सिद्धान्त अधूरा है। यह सिद्धान्त सर्वांगीण विकास को लेकर चलता है। जनता की चतुर्मुखी समृद्धि इसका आधार है। कुछ लोगों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित होने पर यह सिद्धान्त झूठ प्रतीत होता है। डा0 अम्बेडकर की कल्पना के भारत का अभी तक प्रकटीकरण नहीं हो पाया है।

डा0 अम्बेडकर के प्रजातंत्र का सार कोरी कल्पना नहीं है। उनकी कल्पना का सम्बन्ध जीवन की मूलभूत समस्याओं से है। इन समस्याओं के समाधान के बिना प्रजातंत्र का वास्तविक लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। वे भारत की समृद्धि में मात्र राजनीतिक व्यवस्था को पर्याप्त नहीं मानते थे। समाज का काफी बड़ा भाग आज भी शोषित है। शोषित लोगों पर कई प्रकार के अत्याचार

---

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब पृ0 - 27

किये जाते है। महज 5 साल में एक बार वोट डाल लेना प्रगति का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता।

प्रजातंत्र में दलगत प्रणाली में कोई भी दल राजनीतिक शक्ति का अधिकारी बन सकता है। लोकतंत्र में सबको स्वतंत्रता मिलती है। डा0 अम्बेडकर का विचार था, कि सभी समाजिक समुदायों को राजनीतिक शक्ति में हिस्सा लेना चाहिये, इसके बिना समाज का स्तर एवं सम्मान सुरक्षित नहीं रह सकता। किसी समूह के जीवन में राजनीतिक शक्ति का प्रमुख स्थान है, खासकर उस समय जब उस समूह को चुनौती दी जा रही हो। उस समुदाय को चुनौती का सामना करना चाहिये। राजनीतिक शक्ति ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा वह अपनी स्थिति को बनाये रखकर समाज में प्रधान की भूमिका निभा सकता है।

प्रजातंत्र में सभी को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिये। सत्ता प्रतिस्पर्धा की सभी को स्वतंत्रता होनी चाहिये। लोगों में चेतना का होना काफी जरुरी है। व्यक्ति में साहस, संयम, परिश्रम एवं आत्मविश्वास होना काफी जरुरी है। लोगों में संगठन की भावना का होना जरुरी है। कहा गया है कि "संगठन में ही शक्ति है"[1] केवल संगठित इकाई ही राजनीतिक शक्ति को जन्म देती है, ऐसा करने पर ही समाज एवं सरकार में भागीदारी हो सकती है। फर्जी और कागजी संगठन समाज का भला नहीं कर सकते।

डा0 अम्बेडकर ने जीवन भर जातिवाद एवं अन्याय के प्रति संघर्ष किया। भारतीय समाज में दो वर्ग थे, एक तरफ समृद्धिशाली लोग दूसरी तरफ वंचित वर्ग।[2] डा0 अम्बेडकर ने इस असमान व्यवस्था के प्रति संघर्ष किया। उन्होंने करोड़ों मानवों को मानवाधिकार सुलभ कराये, क्योंकि मानव अधिकार को

1. एक प्राचीन लोकोक्ति
2. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब पृ0 - 28

उन्होने जनतंत्र का आधार माना। उनका लक्ष्य तीन त्रयी की स्थापना करना था। समाजवाद की स्थापना करना, संसदीय प्रजातंत्र को कायम करना एवं तानाशाही को टालना था।

डा0 अम्बेडकर ने पूँजीवाद द्वारा शोषित वर्ग को बनाये रखने का पर्दाफाश किया। उनका अध्ययन था कि शीर्षक पर ध्यान दिये बिना एक बात स्पष्ट है कि कांग्रेस मध्यवर्गीय हिन्दुओं का संगठन है। यह उन हिन्दू पूँजीपतियों द्वारा समर्थित है, जिनका लक्ष्य भारत को आजाद कराना नहीं है, वरन् ब्रिटिश नियंत्रण से मुक्त होना है, ताकि वे उन साधनों को अपना सकें जो ब्रिटिशों के हाथ में है।[1] इस संदर्भ में उन्होंने 1930 की गोलमेज कान्फ्रेस में भाषण दिया था। जिसमें उनका कहना था कि यह वह सरकार है, जो यह जानती है कि पूँजीपतियों ने मजदूरों को अच्छी तनख्वाह एवं काम की अच्छी स्थितियों का निषेध कर रखा है। वह यह भी अनुभव करती है कि जमींदार जनता का खून चूस रहे हैं, तथापि उसने उन सामाजिक बुराइयों का निषेध नहीं किया, जिन्होंने दलितों के जीवन को वर्षो से धूमिल कर रखा है। सरकार के पास उन बुराइयों को समाप्त करने की कानूनी शक्तियाँ है, तथापि उसने समाजिक एवं आर्थिक जीवन की वर्तमान संहिता को नहीं बदला, क्योंकि उसे भय था कि वैसा करने से उसके प्रति विरोध पैदा होगा।[2] उनका संघर्ष आत्मसम्मान के लिये था। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आजादी का था। डा0 अम्बेडकर एक्जीक्यूटिव कांसल के सदस्य एवं प्रभावशाली वक्ता थे, पर दलित नेता के रुप में अपने पक्ष को सबल बनाने में पटु थे। वह पूर्णतः राष्ट्रवादी थे। वे पीड़ित वर्ग के सचेतक व नेता थे।

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, मि0 गांधी एण्ड द इमेंसीपेशन ऑफ अनटचेबिल्स पृ0 - 12
2. दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड -1 पृ0 - 22

3. राजनीतिक सत्ता एवं सामाजिक प्रगति :–

डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार राजनीतिक सत्ता सामाजिक प्रगति की कुंजी है। अनुसूचित जातियों को तभी मुक्ति मिल सकती थी, जब वे स्वयं को संगठित करके कांग्रेस एवं अन्य राजनीतिक पार्टियों से अलग स्वयं एक राजनीतिक संगठन बनायें।[1] ताकि दलित वर्ग की उन्नति के लिये अलग विभाग जो उनके हितों की रक्षा के लिये कार्य करे एवं स्थापित हो सकें। डा0 अम्बेडकर का मानना था कि काँग्रेस में शामिल होने से वंचित वर्ग का भला होने वाला नहीं है। उनका विचार था कि काँग्रेस एक बड़ा संगठन है, उसमें शामिल होना समुद्र में एक बूँद के समान होगा। वहाँ वे स्वविचारानुसार प्रगति में निष्प्रभावी रहेंगे। उन्होंने स्पष्ट करते हुये कहा था कि काँग्रेस क्रान्तिकारी पार्टी नहीं है, यदि यह क्रान्तिकारी दल होता तो मैं इसमें शामिल हो जाता। इसमें इतनी हिम्मत नहीं है कि यह आर्थिक समानता एवं सामाजिक समानता के आदर्श की घोषणा कर सके। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुकूल सुख–सुविधा प्राप्त कर सके, इस आदर्श को अपनाने की क्षमता कांग्रेस में नही, ऐसा होने का कारण चन्द पूँजीपतियों का नियन्त्रण होना है।[2]

डा0 अम्बेडकर तत्कालीन व्यवस्था में वंचित वर्ग को इस स्थिति में लाना चाहते थे, ताकि वह सत्ता प्राप्ति के समय पासंग की स्थिति में आ सकें, और सत्ता की तराजू को एक तरफ झुका सकें। इसलिऐ वे वंचितों को तीसरी पार्टी के रूप में संगठित करना चाहते थे, ताकि वंचित वर्ग अपनी शर्त पर समर्थन दे।

---

1. दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड –1 — पृ0 – 37
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 – 18

1936 में डा0 अम्बेडकर ने लेबर पार्टी की स्थापना की थी। दलित, मजदूर और किसानों की समस्याओं को लेकर इसने कार्य प्रारम्भ किया। उनकी पार्टी का उद्‌देश्य था पुराने उद्योगों की स्थापना करना, राजकीय प्रबन्ध के सिद्धान्त को स्वीकार करना। जरुरत में उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व, मजदूरों की भर्ती, पदोन्नति, एवं सेवा सम्बन्धी समस्यायें। वे संवैधानिक विरोध और शांतिपूर्ण ढ़ंग में आस्था रखते थे। उन्होंने कहा था कि यदि स्वतंत्रता का अधिकार दैवीय अधिकार है, तो सत्याग्रह करने का अधिकार भी दैवीय अधिकार है।[1] डा0 अम्बेडकर ने नई पार्टी बनाने का कारण बताते हुये कहा था,कि प्रान्तीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली में 175 सीट्स में से मात्र 15 सीट्स सुरक्षित हैं, जो विरोध करने के लिये अपर्याप्त हैं। 7 अगस्त 1937 को डा0 अम्बेडकर इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के अध्यक्ष चुने गये।

केबिनेट मिशन 1946 ने अपने निर्णय में अनुसूचित वर्ग को एक अलग इकाई मानने से इन्कार कर दिया था। बिना राजनीतिक सुरक्षा के अनुसूचित वर्ग के हितों की रक्षा का कोई मार्ग डा0 अम्बेडकर को नहीं दिखाई देता था। उनके सम्मुख पूर्ण अधिकार का प्रश्न था।

कांग्रेस में शामिल होने के प्रश्न पर उन्होंने कहा था "यदि मैं कांग्रेस में शामिल होता हूँ, तो इस विषय में अपना इरादा बताकर शामिल हो जाऊँगा। यदि यह अछूत वर्गो के हित में है, तो मै इस बात की सलाह दूंगा, पर जब तक मै स्पष्ट रुप से सलाह न दूँ, आप शामिल मत होइये। अनुसूचित वर्गो ने अपने अलगाव के कारण कष्ट पाया है। उच्च वर्गो से राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिये उन्हें एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करना होगा। वयस्क मत

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन एवं दर्शन पृ0 - 98

प्रणाली के कारण जनता के हाथ में राजनीतिक शक्ति आयी है। यदि उत्तर प्रदेश के डेढ़ करोड़ अनुसूचित जाति और एक करोड़ पिछड़े वर्ग के लोग एक जुट होकर समान लक्ष्य का विरोध करें, तो उनके सदस्य विधान सभा में राजनीतिक सत्ता हासिल कर सकते हैं। यदि पिछड़े वर्ग के लोग एक अलग मोर्चा बनाते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह एक सोचनीय बात है कि अनुसूयित जातियां एवं पिछड़ा वर्ग अपनी शक्ति के प्रति जागरुक नहीं है, और इसी कारण से प्रशासन में ऊँची जाति का प्रभुत्व व्याप्त है।

उनके कांग्रेस सरकार में शामिल होने से अनुसूचित वर्ग मे उलझन पैदा हो गई है। मैं उनके संदेहों को दूर करना चाहता हूँ। ब्रिटिश सरकार ने अनुसूचित वर्गों की घोषणा को कोई मान्यता नहीं दी है, एवं हिन्दू, मुसलमानों तथा सिक्खों को ही सत्ता हस्तान्तरण के योग्य समझा। मुझसे पूछा जाता है कि कांग्रेस से 15 वर्ष के संघर्ष के बाद इस निर्णायक परिस्थिति के समय में चुप क्यों हूँ? युद्ध करना सवोत्तम कौशल नहीं है। कई बार हमें लक्ष्य हासिल करने के लिये और तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ता है।"[1] डा0 अम्बेडकर जानते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में कांग्रेस से संघर्ष का लाभ नहीं था। उन्होंने समझौते का रास्ता अपनाया, इससे उन्हें सफलता भी मिली। दलितों ने संसद, विधानसभा एवं सरकारी नौकरी में आरक्षण प्राप्त किया। डा0 अम्बेडकर तत्कालीन परिस्थितियों में केवल दलितों का हित साधने के लिये केन्द्र में विधि ामन्त्री बने थे। वे जानते थे कि दलितों पर अत्याचार उनके वर्ग के लोगों के उच्च स्थान पर आसीन न होने के कारण हैं।

डा0 अम्बेडकर के 25 अप्रैल 1948 के भाषण की काफी विकृत

---

1. डा0 अम्बेडकर द्वारा 25 अप्रैल 1948 को लखनऊ में दिया गया भाषण

व्याख्या की गई थी। डा0 अम्बेडकर ने उसके स्पष्टीकरण को जरुरी समझकर उसका उत्तर देते हुये कहा था।

1. मंत्रीमण्डल द्वारा अपनी माँगों को अस्वीकृत करने के बाद मैं चुप क्यों हूँ?
2. मैं कांग्रेस सरकार में शामिल क्यों हुआ?
3. भविष्य में मेरा क्या करने का इरादा हैं?

पहले प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था कि अनुसूचित जाति संघ राजनीतिक सुरक्षा चाहते थे, सबसे बड़ा मुद्दा पृथक निर्वाचन क्षेत्र का था। प्राथमिक मतों का यदि विश्लेषण किया जाय तो इसमें जरा भी संदेह नहीं कि यह सम्पूर्ण अनुसूचित वर्ग की माँग थी। इसके बाद भी यह माँग मंत्रीमण्डल द्वारा अस्वीकृत हो गई। इसके दो कारण थे।

(अ) डा0 अम्बेडकर की पार्टी मुसलमान एवं सिखों की तुलना में कमजोर थी।
(ब) कुछ लोग परस्पर मतभेद से युक्त थे।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में उनका विचार था कि वे कांग्रेस के विरोधी एवं आलोचक रहे हैं। वे कांग्रेस के विस्तार के कारण सहयोग के पक्ष में थे। उसी सहयोग के कारण संविधान से सुरक्षा मिली थी। डा0 अम्बेडकर ने अपनी बात पुष्ट भी की थी। डा0 अम्बेडकर के मंत्रीमण्डल में शामिल होने के निर्णय के पीछे दो प्रमुख कारण थे–

1. यह प्रस्ताव बिना किसी शर्त के किया गया था।
2. वंचित वर्ग के हितों की रक्षा सरकार से बाहर रहने की बजाय सरकार में रहकर ज्यादा हो सकती है।

डा0 अम्बेडकर कानून के सही ढंग से लागू करने के पक्ष

में थे। दलित वर्ग के प्रतिनिधि प्रशासन में न होने पर, इस वर्ग के हितों की सुरक्षा का प्रश्न गहरा जाता है। प्रशासन को इस स्थिति में इनसे कोई सहानुभूति नहीं थी। डा0 अम्बेडकर इस मत के थे कि प्रशासन में विपक्ष का होना जरुरी है। वे कांग्रेस में शामिल न होकर सरकार में शामिल हुये थे।

डा0 अम्बेडकर एक तीसरा मोर्चा बनाने के पक्ष में थे, ताकि तत्कालीन समय में सत्ता में शक्ति संतुलन किया जा सके वे किसी पार्टी में शामिल होने के पक्ष में नहीं थे। वे किसी के पिछलग्गू बनने के पक्ष में नहीं थे। वे वंचित वर्ग को जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण के पक्ष में थे। वंचितों की शक्ति बढ़ाने के पक्ष में थे।

डा0 अम्बेडकर कहते थे कि गाँधी जी एवं कम्यूनिस्ट, मजदूरों का हित चिन्तन नहीं कर रहे हैं। इन लोगों को वे राजनीतिक महत्वाकांक्षा से युक्त मानते थे। उन्हें साम्यवादियों पर विश्वास नहीं था। वे साम्यवादियों को अवसरवादी कहते थे। उनका नारा था, "दुनिया के मजदूरो, शिक्षित बनो, संगठित बनो एवं संघर्ष करो।" वे जानते थे कि जब मतों का प्रयोग उचित प्रतिनिधि चुनने में होगा तभी सत्ता में आवाज उठाई जा सकेगी। तभी उत्थान की गति तीव्र हो सकेगी। उनका मानना था कि राजनीतिक शक्ति में वंचित वर्ग एवं पिछड़े वर्ग जब तक हिस्सा नहीं बटायेंगें, तब तक वे सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति नहीं कर सकते। उन्होंने इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, शेड्यूल कास्ट फेडरेशन, डिप्रेस्ड क्लासेज लीग आदि अनेक संगठन बनाए थे। वे एक मंच पर सीमित न होकर लोगों को सदैव मंच व स्वर प्रदान करते रहे। वे मानते थे कि प्रार्थना करने एवं भिक्षा माँगने से अधिकार नहीं मिलते हैं। वरन् यह तो अबाध गति से निरंतर

संघर्ष करने से मिलते हैं। इस प्रकार वे आत्म सम्मान के लिये बराबर प्रेरित करते रहे। हर नये संघर्ष व दल के पीछे उनकी मंशा हमेशा संघर्ष की गति तीव्र करने की रही। वास्तव में वे संघर्ष के नेता थे, जीवन के नायक थे। वे जन कल्याण एवं राष्ट्र कल्याण में स्वयं का होम कर देना चाहते थे।

4. राज्य एवं सरकार :—

हीगल, हॉब्स, ग्रीन एवं बोसाँके के जैसे विद्वानों के अनुसार राज्य एक साधन नहीं, वरन् एक साध्य है। जिसके स्वयं इतने शक्तिशाली अधिकार होते हैं, कि किसी भी व्यक्ति के संघर्ष के साथ अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है।[1] पर डा0 अम्बेडकर इस विचार से सहमत नहीं थे। व्यक्ति स्वयं अपने अधिकारों का स्त्रोत नहीं है। वह राज्य से अधिकार प्राप्त करता है। व्यक्ति के ऐसे अधिकार नहीं हो सकते जो राज्य के साथ संघर्ष करें। राज्य का निरपेक्ष सिद्धान्त कहता है कि राज्य सर्वोच्च सत्ता हुये बिना कार्य नहीं कर सकता है। राज्य एक प्राकृतिक एवं अंतिम मानव संस्था है, अपने विकास के अंतिम चरण में वह सर्वशक्तिमान एवं निरपेक्ष दोनों है।

डा0 अम्बेडकर राज्य को लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक आवश्यक संस्था मानते थे। अशान्ति एवं विद्रोह के समय इसका उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। उन्होंने समाज को अधिक महत्व दिया, फिर भी राज्य का महत्व कम नहीं होता। राज्य का प्रमुख कार्य समाज की आन्तरिक अव्यवस्था एवं बाहय आक्रमण से रक्षा करना है। राज्य का एक क्षेत्र है, जिसमें उसकी गतिविधियाँ मान्य होती हैं। उन्होंने कहा—"किसी भी राज्य ने एक ऐसे अकेले समाज का रुप धारण नहीं किया, जिसमें सब कुछ आ जाय या राज्य ही प्रत्येक विचार एवं क्रिया का स्त्रोत हो।[2]

1. सी0ई0एम0 जोड, इन्ट्रोडक्शन टू मॉडर्न पॉलिटिकल थिअरी पृ0 - 13
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, पाकिस्तान और दी पार्टीशन ऑफ इंडिया पृ0 - 330

वे राज्य व्यवस्था को मानव हित की सेवा के दृष्टिकोण से देखते थे। राज्य जन–साधारण की सेवा का माध्यम है। राज्य व्यवस्था की सुदृढ़ता के लिये जनता के द्वारा सम्मान एवं सद्‌भावना का होना जरुरी है। सरकार के प्रति आज्ञापालन का भाव शान्ति व्यवस्था के लिये आवश्यक है। इन बातों के बिना कोई सरकार तथा प्रजातंत्र या समाजवाद सफल नहीं हो सकता है। इसलिये डा0 अम्बेडकर ने कहा कि जनता की सत्ता के प्रति आज्ञापालन की भावना उतनी ही जरुरी है, जितनी कि राजनीतिक दलों की राज्य के मौलिक तत्वों पर एकता। किसी भी विवेकशील व्यक्ति के लिये यह असम्भव है कि वह राज्य व्यवस्था को कायम रखने के लिये आज्ञापालन के महत्व को स्वीकार न करे। राज्य के कानूनों में विश्वास न करना, अराजकता में विश्वास करने के समान है।[1]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संगठन, कम या अधिक, एक मिश्रित व्यवस्था होती है। प्रत्येक समाज में कई भिन्नतायें मिलती हैं, जिसका दर्शन हमें विभिन्न प्रकार के लोगों, भाषाओं, रीति–रिवाजों, धर्मों, नैतिक संहिताओं आदि में होता है। कुछ समाज में मजबूत सामाजिक इकाइयाँ होतीं हैं, तो कुछ समुदाय कमजोर होते हैं। इस दृष्टि से यहां राज्य व्यवस्था का महत्व बढ़ जाता है, क्योंकि इतनी विभिन्नताओं में झगड़े होना स्वाभाविक है। राज्य उनके साथ सही निर्णय देकर न्याय कर सकता है वे कानून के शासन के पक्ष में थे, जिसमें लोग समाज कल्याण के लिये बने कानूनों का पालन करें।

कोई भी राज्य संगठन या सरकार जनता की इच्छा पर निर्भर होती है। डा0 अम्बेडकर जेम्स ब्राइस की इस बात से सहमत थे कि शक्ति या दबाव के द्वारा राज्य अपने को सुदृढ़ बना सकता है। उन्होंने कहा कि राजनीतिक

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर दी पार्टीशन ऑफ इंडिया पृ0 – 294

समुदायों को उत्पन्न करने, उनको अच्छी शिक्षा में ढालने, उनको विस्तृत रूप देने तथा उनको एकत्रित करने में दबाब से अधिक महत्वपूर्ण आज्ञापालन की भावना है। आज्ञापालन की भावना जो सरकार के कानून एवं नियमों के प्रति प्रदर्शित की जाती है, व्यक्ति और सामाजिक समुदायों की कुछ मनोवैज्ञानिक धारणाओं पर निर्भर करती है। डा0 अम्बेडकर आलस्य, सम्मान, सदभावना, भय एवं बुद्धि के सम्मिश्रण से उत्पन्न गुणों को विभिन्न ढंग से महत्व प्रदान करते थे। यह सब गुण राज्य और वातावरण की परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। आज्ञापालन की भावना के बिना कोई सरकार अधिक दिन तक नहीं टिक सकती।

डा0 अम्बेडकर ने इस सिद्धान्त को अंगीकार किया, कि वह सरकार उत्तम है, जो कम से कम शासन करती है।[1] लेकिन वे अराजकतावादियों के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं थे कि वह सरकार उत्तम है जो बिल्कुल शासन नहीं करती। ऐसा होना तो मात्स्य न्याय की स्थिति पैदा करेगा और अराजकता को खुला आमंत्रण देगा। राज्य का संगठन सामाजिक गतिविधियों पर निर्भर है, जिसका मुख्य साध्य व्यक्ति और समाज की चरमोन्नति है। बाह्य आक्रमण से रक्षा करना राज्य का एक प्रमुख कार्य है। डा0 अम्बेडकर के अनुसार राज्य के निम्न कार्य होने चाहिये।

1. प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार देना, स्वतन्त्रता तथा आनन्द के अधिकारों को बनाये रखना।
2. विचार अभिव्यक्ति एवं धार्मिक स्वतंत्रता होनी चाहिये।
3. सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करना और शोषित वर्गों को सुविधाये देना है।
4. प्रत्येक नागरिक के लिये यह सम्भव करना कि वह भूख, प्यास एवं भय से मुक्त रहे।

---

1. फ्रीमेन (इसी वाक्य को महात्मा गांधी ने 11 जनवरी 1936 के 'हरिजन' के अपने लेख में उल्लिखित किया था) ।

डा0 अम्बेडकर राज्य को साधन मानते थे और जनकल्याण को साध्य मानते थे। वे मानते थे कि राज्य का कार्यक्षेत्र समाज विरोधी नहीं होना चाहिये। राज्य अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करके वंचित लोगों को अन्याय और शोषण से बचा सकता है। राज्य को मनुष्य–मनुष्य तथा मनुष्य–समुदाय के बीच अच्छे माध्यम की भागीदारी करनी चाहिये। डा0 अम्बेडकर मुसोलनी की इस बात से सहमत नहीं थे, "सब कुछ राज्य के लिये है, राज्य के बाहर कुछ नहीं है, राज्य के विरुद्ध कुछ नहीं है।"[1] डा0 अम्बेडकर ने राज्य की व्यवस्था और व्यक्तियों की प्रेरणा में संतुलन बनाने पर बल दिया। डा0 अम्बेडकर ने मानव सम्मान को काफी ऊँचा स्थान दिया। उनकी समझ में मनुष्य और राज्य सहपथगामी हैं। राज्य व्यवस्था में आत्म–कल्याण और आत्मसम्मान निहित है। राज्य और व्यक्ति में संघर्ष के चलते निष्पक्षता और प्रगति असम्भव है। ये सब बातें भारत के नागरिकों के लिये जरुरी है। और यह भी आवश्यक है कि भारत के नागरिक सामाजिक प्रगति और निष्पक्षता को बनाये रखें।

डा0 अम्बेडकर की प्रेरणा का स्त्रोत गरीब, निर्धन और शोषित जन थे। वे सदैव समाज सुधार में क्रियारत् रहे। वे राज्य–सरकार से आग्रह करते रहे, कि राज्य अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के अत्याचार से बचाऐ। उन्होंने सदैव राष्ट्रीय एकता के लिये काम किया। वे समाज विरोधी, राष्ट्र विरोधी तत्वों को नापसन्द करते थे। समस्त भारतवासियों को एकता की लड़ी में पिरोना उनका लक्ष्य था। ऐसा करने के लिये उनका सुझाव था कि समस्त देश का एक संघीय संविधान हो, जो जनता की सहमति से बनाया जाये और ऐसी केन्द्रीय सरकार चाहते थे, जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संकटो का भली प्रकार सामना कर सके।

---

1. मुसोलिनी (विद्याधर महाजन, आधुनिक राजनीतिक विचारधारायें, पृ0 – 108)

ब्रिटिश प्रकार की संसदीय प्रणाली भारतीय परिस्थितियों में उपयुक्त समझते थे। डा0 अम्बेडकर ने संसदात्मक सरकार के स्वरूप को अधिक पंसद किया, जो भारत के लिये कोई नवीन बात नहीं थी। भारत में कई बार जनतन्त्र प्रणाली प्रचलित रही। डा0 अम्बेडकर ने लिखा था "आज संसदीय सरकार की बात हमारे लिये विदेशी प्रतीत होती है। यदि हम गाँवों में जायें तो मालूम होगा, कि लोग यह नहीं जानते कि वोट क्या है? पार्टी क्या है? जनतंत्र प्रणाली उन्हें विचित्र प्रतीत होती है। इसलिये हमारे सामने समस्या है कि इस प्रणाली को कैसे बचायें? जनता को हमें शिक्षित बनाना है, और उसे संसदीय जनतंत्र तथा संसदात्मक सरकार के लाभ बताने हैं।"[1]

संसदीय सरकार के वास्तव में कई निहितार्थ हैं –

1. एक ऐसी सरकार है, जो जनता द्वारा चुनी जाती है।
2. एक ऐसी प्रणाली है, जो भारत में प्रचलित थी।
3. जनतान्त्रिक है, जिसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता है।

डा0 अम्बेडकर ऐसी ही गणतंत्रात्मक प्रणाली, जिसमें वंशानुगत शासन न हो, को पसन्द करते थे। वे जनता जनार्दन के द्वारा चुनी सरकार चाहते थे, जो परिवर्तन को स्वीकार कर सके।

संसदीय सरकार की सफलता वास्तव में इस पर निर्भर है, कि कानूनों के प्रति जनता की सहमति हो।[2] डा0 अम्बेडकर राजतन्त्रात्मक सरकार की अपेक्षा लोकतंत्रात्मक सरकार को सदैव प्रशंसित करते रहे। जनतंत्र में शासक एक मूर्तिकार के समान होता है, जो मूर्ति तो बना सकता है, परन्तु लोगों में विश्वास उनकी भावना के बिना पैदा नहीं कर सकता और व्यावहारिक रुप में जनता

---

1. भगवानदास (संकलित एवं सम्पादित) दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड–1 पृ0 –51–52
2. वुडरो विल्सन, पूर्व अमरीकन राष्ट्रपति

ही शासन करती है।

किसी भी सच्ची सरकार का कार्य यह है कि जनता का विश्वास अर्जित करे और उनके हितों की रक्षा करे। इस प्रकार की सरकार सदैव चाहने योग्य है। डा0 अम्बेडकर के अनुसार अच्छी सरकार तब तक नहीं हो सकती, जब तक वह स्वदेशी न हो। उन्होंने सरकार को स्वशासन से जोड़ा। यह सरकार प्रतिनिध्यात्मक होती है। यह जनता की इच्छा से राजनीतिक दल बनाते हैं। कानून की आज्ञापालन करना शासकों का भी कार्य है। डा0 अम्बेडकर ने भारत में इस प्रक्रिया को विधि द्वारा स्थापित बताया था। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर संसदात्मक सरकार को उत्तम सरकार मानते हैं। इसका साध्य मानव कल्याण है।

5. समाजवाद की ओर :–

कर्म करना मानव प्रगति के लिये परमावश्यक है। केवल दैनन्दिन कर्मों को करना मानव को महान् और सांस्कृतिक नहीं बना सकता। मनुष्य को बुद्धि और ज्ञान के आलोक से अपने जीवन को आलोकित करने के लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति अवकाश के द्वारा ही हो सकती है। श्रम की सीमा निर्धारित होनी चाहिये। ऐसा तभी हो सकता है, जब राज्य कुछ कार्यों को अपने लिये आवंटित करें। जनता की भलाई के लिये राज्य को प्रमुख एवं आधारभूत उद्योगों को अपने क्षेत्र में संचालित करना चाहिये। ऐसा करने से लोगों को अवकाश मिलेगा और शोषण भी कम हो सकेगा। समाजवादी समाज की ओर जाने के लिये उन्होने सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं।[1]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार निर्धनता और समाजवाद परस्पर

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, स्टेट्स एण्ड माइनोरटीज पृ0 – 14-15

विरोधी है, दोनों में से एक को समाप्त होना पड़ेगा। भारत में गरीबी व्यापक स्तर पर है, फिर भी उन्होंने धन को बराबर वितरित करने पर बल नहीं दिया, क्योंकि यह बात व्यावहारिक नहीं है। असमानता तो प्रकृति में ही विद्यमान है। वे योग्य लोगों को कार्य के अवसर देने के पक्ष में थे। वे उन भेदभावों को मानते थे, जो व्यक्तिगत योग्यता और बुद्वि पर आधारित हैं। वे इस स्थिति को समाप्त करना चाहते थे, कि कुछ लोग हाड़–तोड़ मेहनत करें, और कुछ लोग श्रमिकों के बल पर बिना उँगली हिलाये भौतिक सुखों का उपभोग करते रहें। इस प्रकार उनका समाजवाद न्याय और संतुलन पर आधारित है। वे उन सब विचारों और व्यवहारों को, जो जनता की पीड़ा के कारण है, को समाप्त करना चाहते थे। निर्धनता जनसेवा के लिये एक प्रमुख प्रेरक तत्व है।

आज के पूँजीवादी समाज में शोषण एक प्रमुख तत्व के रुप में उभर रहा है। लोग कारखाने में काम करें, या खेतों में श्रम करें, यह समाजवाद की भावना के विरूद्ध है। राज्य का यह कर्तव्य है, कि वह जनता को आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय से बचायें। डा0 अम्बेडकर के अनुसार लोगों को मन, बुद्धि और आत्मा से समाजवाद के लिये कार्य करना चाहिये, तभी समाजवाद सम्भव हो सकता है। गैर–राजनीतिक लोगों के हाथ में राजनीतिक सत्ता नहीं जानी चाहिये।

प्रजातंत्र में जनमत ही सत्ता का निर्णय करता है। जनता को समाजवाद समर्थक लोगों को चुनना चाहिये। सामाजिक न्याय का प्रसार करना चाहिये एवं आर्थिक शोषण का अन्त करना चाहिये। इस सब के प्रचार प्रसार के लिये शिक्षा का होना जरुरी है। जनता के शिक्षित हुये बिना लोकतान्त्रिक एवं

समाजवादी विचार मूर्त रूप धारण नहीं कर पायेगें।[1] जनता ही लोकतंत्र में सबसे बड़ी निर्धारक शक्ति है। निर्णय लेने की पूर्ण क्षमता जनता में निहित है।

राज्य हस्तक्षेप और समान वितरण के पक्ष में होते हुये भी डा0 अम्बेडकर साम्यवाद की तरफ नहीं गये। इस अर्थ में वे कीन्स के करीब आ जाते है। कीन्स भी राज्य हस्तक्षेप के पक्षपाती थे। साम्यवाद में उनकी कोई रुचि नहीं थी। डा0 अम्बेडकर मार्क्स के उस सुझाव से सहमत नहीं थे, कि जनकल्याण के लिये निजी सम्पत्ति के अधिकार को बिल्कुल त्याग दिया जाये, वे सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहते थे। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त नहीं करना चाहते थे। वास्तव में वे राज्य में शान्तिपूर्ण ढ़ंग से कानून के सहारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन लाना चाहते थे इसी तरह से शोषित वर्ग को आगे बढ़ने के लिये समान अवसर मिल सकता था।

राजनीतिक और आर्थिक शक्ति से डा0 अम्बेडकर का अर्थ उस राज्य–शक्ति से हैं, जिसके मिलने से प्रतिनिधियों को नीति–निर्धारण सम्बन्धी अधिकार मिल जाते हैं। राजनीतिक शक्ति प्राप्त लोग कानूनों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन ला सकते है। समाज की प्रगति में राज्य व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। डा0 अम्बेडकर के राज्य प्रबन्धन को महत्व देने के पीछे यही उद्देश्य था, कि राज्य समाज की आर्थिक व्यवस्था करे, जिससे अधिक से अधिक उत्पादन बढ़े। पूजीपतियों के हाथों में धन का केन्द्रीयकरण न होकर समान वितरण हो। उन्होंने राज्य–प्रबन्ध में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के निरर्थक कार्यों पर नियन्त्रण करने के लिये ही उपयुक्त नहीं बताया, वरन् यह भी चाहा कि पूँजीवाद समाजवादी मार्ग की और बढ़े[2], अन्यथा पूँजीवाद भारत की समाजवादी विचारधारा और कार्यप्रणाली में उलझने उत्पन्न करेगा।

---

1. गाँधीजी, हरिजन सेवक – 18/05/1940
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिंतन पृ0 – 42

वर्तमान में यह सत्य ही प्रतीत होता है, क्योंकि पूँजीपति वर्ग समाजवाद के पक्ष में नहीं है।

डा० अम्बेडकर ने आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था की कड़ी आलोचना की थी। इसने गरीबी का अन्त नहीं किया, वरन् गरीबों का ही अन्त किया है। उनका विश्वास था, कि शुद्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जनता की आर्थिक कठिनाईयों को दूर नहीं कर पायेगी, क्योंकि उसमें बेरोजगारी कड़ा परिश्रम, कार्य की प्रतिकूल परिस्थितियाँ सदैव बनी रहती है।[1]

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में डा० अम्बेडकर व्यक्तिवादी थे और आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी। एक ओर विचार स्वतन्त्र चाहते थे, दूसरी ओर आर्थिक समानता के कट्टर समर्थक थे। यही मिश्रित विचारधारा उनको जे० एस० मिल जैसे विचारकों के समक्ष खड़ी कर देती है। मिल व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उत्पादन के साधनों में सामान्य स्वामित्व के साथ जोड़ना चाहते थे। मिल के बारे में कहा जाता है, कि वे व्यक्तिवाद और समाजवाद के बीच की कड़ी थे।

डा० अम्बेडकर का विचार था कि जाति की परम्परा पूँजी एवं श्रम की गतिशीलता को प्रोत्साहन नहीं देती। इस प्रकार से आर्थिक निष्क्रियता को बढ़ावा मिलता है। इससे बड़े पैमाने पर उत्पादन की आशा नहीं की जा सकती। जाति प्रकार के कारण व्यापारिक प्रतिस्पर्धा की भावना भी नहीं रहती, इससे कार्य क्षमता प्रभावित होती है। सामाजिक क्षेत्र में जाति प्रथा एक जीवित शक्ति है। इस परम्परा ने सांमतवाद को जन्म दिया है। इसने समाज का काफी नुकसान भी किया है। इसी के दूषित परिणामों के कारण लोग अन्य सामाजिक हितों को गौण मानने लगते हैं। समाजवादी विचारधारा का अभाव प्रगति को अवरुद्ध कर

---

1. डा० डी० आर० जाटव, डा० अम्बेडकर का मानववादी चिंतन पृ० – 43

देता है। जाति प्रथा समानता की विरोधी है। इससे ही विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का जन्म होता है।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि समाजवादी समाज में सामाजिक चेतना एवं शिक्षा जरुरी है। इसके अभाव में समाज की प्रारम्भिक प्रगति नहीं हो सकती। डा0 अम्बेडकर के विचारों में समाजवादी समाज का स्वप्न था। वे वर्गहीन समाज चाहते थे। वर्गहीन समाज में ही जातिविहीन संरचना सम्भव है। वे आदमी को मात्र आदमी के रुप में देखना चाहते थे, किसी अन्य नाम से नहीं। उनका विचार था कि इस जाति रुपी समाज में हर व्यक्ति के अन्दर एक रुढ़िग्रस्त शैतान बैठा है। एक सामंत बैठा है। इस सामंत को कोई भी संज्ञा दी जा सकती है। डा0 अम्बेडकर इसी सामंत को समाप्त करना चाहते थे। वे जातिविहीन समाज का स्वप्न देखते थे। उनका विचार था कि आजकल आर्थिक दबावों एवं अन्य सामाजिक विसंगतियों के कारण मानवीय गुणों का अवमूल्यन हो रहा है।

डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को समाज के माथे पर कलंक का टीका कहा था। वे इसे कलुषता का दर्शन कहते थे।[1] उनका मानना था कि इससे जीवन के सभी रास्ते बन्द हो जाते हैं। इससे पेशा पूर्व निर्धारित हो जाता है। जाति में विश्वास एक मानसिक रोग है।[2] यह व्यक्ति को घृणा सिखाता है।

डा0 अम्बेडकर समाजसुधार को आवश्यक मानते थे, विशेष तौर पर भारतीय समाज के लिये जो विकृतियों से ग्रस्त है। समाजवाद की स्थापना के लिये इन विकृतियों का दूर होना आवश्यक है। उनके समाजवाद में सामाजिक समता एवं ममता दोनों विद्यमान थीं।

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 - 05
2. वही, पृ0 - 08

6. शक्तिशाली केन्द्र :–

डा0 अम्बेडकर हमेशा प्रशासन में मजबूत केन्द्र का पक्ष लेते थे। वे केन्द्रीय कार्यपालिका को इतना सामर्थ्यशाली बनाना चाहते थे कि वह सामाजिक न्याय के पक्ष में प्रशासनिक इच्छा को अमल में ला सके। वे संसद को इस स्थिति में पहुँचाना चाहते थे कि वह दलितों के हितों की रक्षा के लिये कानून बना सकें। उनकी दृष्टि में सामाजिक न्याय के लिये यह एक प्रभावशाली व्यवस्था सिद्ध हो सकती है। इन प्रावधानों के लिये डा0 अम्बेडकर ने प्रारुप समिति में इस बात को रखा एवं संविधान सभा में प्रबलता से समर्थन किया।

विकेन्द्रीकरण के प्रश्न पर डा0 अम्बेडकर गाँधी जी से सहमत नहीं थे। वे राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण के पीछे के निहितार्थ को समझते थे। उनकी वरीयतायें भिन्न थीं। वे सामाजिक असमानता मिटाने को प्रमुखता से लेते थे। वे समरसता लाना चाहते थे। वे सामाजिक न्याय के आदर्श एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के आदर्श के बीच दीर्घकाल में तो नहीं पर अल्पकाल में विरोध देखते थे।

डा0 अम्बेडकर को वायसराय के द्वारा गोलमेज सम्मेलन का निमन्त्रण 6 सित0 1930 को मिला था। गोलमेज सम्मेलन लन्दन में इस उद्देश्य से आयोजित किया गया था कि भारतीय नेता भारत के भावी संविधान के निर्माण के लिये एक समझौते पर सहमत हो सके। इस सम्मेलन में कुल 89 सदस्य थे। इनमें से 16 ब्रिटिश प्रतिनिधि थे। 20 प्रतिनिधि भारत के शाही और नबावी राज्यों के तथा अंग्रेज अधीन भारत प्रान्तों के 53 प्रतिनिधि थे। आरम्भ में काग्रेंस पार्टी

ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया, किन्तु बाद में महात्मा गाँधी ने सम्मेलन में भाग लिया। भारत के दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व डा0 अम्बेडकर और राय बहादुर श्रीनिवासन कर रहे थे।

भारत के इतिहास में पहली बार दलितों का अलग अस्तित्व माना गया। विश्व के इतिहास में पहली बार एक दलित अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिये खड़ा हुआ। यह दलित सर्वोच्च शैक्षणिक योग्यता से युक्त, बुद्धिमान और चरित्रवान था। यह डा0 अम्बेडकर थे।

डा0 अम्बेडकर दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रुप में गोलमेज सम्मेलन में शामिल हुये। उन्होने वहाँ दलितों के पक्ष को काफी दृढ़ता के साथ रखा। डा0 अम्बेडकर इस समय वकील से ज्यादा आस्थावान् एवं भावनापूर्ण थे। गोलमेज सम्मेलन में गांधी जी कोई स्पष्ट दृष्टिकोण जो सर्वमान्य हो, प्रस्तुत न कर सके। भारतीय नेताओं और सम्मेलन के अन्य सदस्यों के मध्य कोई समझौता न हो सका। गाँधी जी का व्यवहार देखकर डा0 अम्बेडकर उनसे सहमत नहीं हुये। इस सम्मेलन में अंग्रेजो को दलित वर्ग का अलग अस्तित्व मानना पड़ा। डा0 अम्बेकर का ध्येय दलित वर्ग की स्थिति को सुधारना था। उन्होंने भारतीय समाज का गहरा अध्ययन किया था, वे इस बात से परिचित थे कि भारतीय समाज प्रणाली कैसे काम करती है। उन्हें कुरीतियों एवं रूढ़ियों से ग्रस्त यह व्यवस्था दंश रही थी। वे जानते थे कि स्थानीय स्तर पर न्याय मिलना सम्भव नहीं हो सकता। वे अंग्रजो के पिट्ठू नहीं थे, जैसा कि तत्कालीन समय के समाचार पत्रों ने प्रकाशित किया था। वास्तव में वे देशभक्त थे। वे इस बात से भयभीत थे कि स्वशासन के परिणामस्वरुप कहीं सवर्ण अत्याचार प्रारम्भ न हो जाये। वे व्यस्क मताधिकार

के लिये लड़े। सत्ता में भागीदारी चाहते थे। वे दलितों की रक्षा के लिये मजबूत केन्द्र चाहते थे। केन्द्रीय विधानमंडल के पास व्यापक अधिकार चाहते थे।

अस्पृश्यता संबंधी अपराध के विधेयक पर बोलते हुये डा० अम्बेडकर ने प्रश्न उठाया कि इस कानून को लागू कौन करेगा? उन्होंने सुझाव दिया कि विधेयक में विशेष धारा रखी जाए, कि यह कानून केन्द्रीय सरकार द्वारा लागू किया जायेगा। उन्हें डर था कि इसके समवर्ती सूची में जाने पर राज्य इसके क्रियान्वयन में लापरवाही बरत सकते थे। इसका कारण राज्य सरकारों एवं स्थानीय शासन में सवर्णों का प्रभावशाली होना था। इसके बाद उन्होंने अनुच्छेद 35 एवं अनुच्छेद 73 में किये गए परिवर्तन के महत्व पर प्रकाश डाला।

भारत सरकार अधिनियम 1935 में स्पष्ट प्रावधान था कि समवर्ती सूची में कानून बनाने का केन्द्र का अधिकार केवल कानून बनाने तक है। केन्द्र उसे लागू करने का अधिकार नहीं ले सकता। 1935 के अधिनियम में यह प्रावधान जिन कारणों से किया गया था, वे कारण अब मौजूद नहीं हैं। जब हमने अपना संविधान बनाया तो इस प्रकार प्रावधान हमने नहीं किया। हमने केन्द्र को कई व्यापक अधिकार दिये। इस आशय का प्रावधान अनुच्छेद 73 में किया गया है।

प्रारम्भ से ही डा अम्बेडकर मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिये उचित साधनों एवं प्रक्रिया के लिये प्रयत्नशील रहे। उनका मानना था कि केवल उन्हें सूची बद्ध कर देना काफी नहीं होगा। यह अधिकार हमारे मन का एक हिस्सा बनना चाहिये। डा० अम्बेडकर ने इसे "भारतीय संविधान की आत्मा एवं हृदय कहा था।"[1] यह अधिकार इंग्लैण्ड में 1688 की रक्तहीन क्रान्ति के समय

1. डी० डी० बसु, भारत का संविधान एक परिचय पृ० - 124

अस्तित्व में आये थे। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय उन्हें फिर से पुष्ट किया गया। यह अमरीकन संविधान के भी अंग बने परन्तु डा0 साहब ने 9 दिसम्बर 1946 को इनके लागू होने पर काफी चिन्ता व्यक्त की।

विकेन्द्रीकरण की नीति के लिये एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था एवं औचित्य तथा सहानुभूति पर आधारित मानव संबंधो का व्यापक तंत्र अपेक्षित होता है। न्याय भावना के अभाव में नैतिकता जातीय एवं वर्गीय हो जाती है। उसे मानवीय मूल्यों का व्यापक आधार प्राप्त नहीं होता मानवीय मूल्यों एवं सच्चाई के अभाव में स्थानीय इकाइयों में सत्ता का अंतरण कमजोर और अधिकार वंचित वर्गों पर अत्याचार का कारण बन सकता है।

हमारे यहाँ गाँधी जी एवं कुछ लोग इस प्रणाली के समर्थक थे कि संवैधानिक ढाँचा पुरानी ग्राम पंचायत के आधार पर तैयार किया जाए।[1] वे वेस्टमिन्सटर प्रकार का लोकतंत्र पंसद नहीं करते थें, वे इसे भारत के लिये अनुकूल नहीं मानते थे।

राममनोहर लोहिया जी जैसे विकेन्द्रीकरणवादी भी संसदीय लोकतंत्र के समर्थक थे। वे संवैधानिक ढ़ाँचे को चार स्तरों पर खड़ा करना चाहते थे। सामाजिक अत्याचार के दृष्टिगत वे दबे–कुचले वर्ग को ज्यादा प्रतिनिधित्व देना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर स्थानीय स्तर पर विश्वास न करके इसे केन्द्र के पास रखना चाहते थे।

भारत सरकार अधिनियम 1935 की राष्ट्रवादियों ने आलोचना की थी। इसने संविधान के लिये ढ़ाँचा तैयार किया। प्रारुप समिति के अध्यक्ष डा0

---

1. गाँधीजी, हरिजन सेवक – 28/07/1946

अम्बेडकर ने इसे उठाया एवं संविधान सभा द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों के प्रस्ताव के संदर्भ में इसमें आवश्यक संशोधन किया। डा0 अम्बेडकर पूरी तरह पश्चिमी लोकतांत्रिक प्रणाली को पंसद करते थे। उन्हें ग्राम पंचायत की संस्था से कोई लगाव नहीं था। उन्होंने ग्राम पंचायत की आलोचना की। वे गाँव को शोषण की इकाई मानते थे। वे प्राचीन व्यवस्था ध्वस्त कर जाति, धर्म, लिंग के भेदभाव को मिटाकर सभी मानवों को समान महत्व के स्थान पर खड़ा करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में शक्तिशाली केन्द्र ही सार्वजनिक हित के निकट था।

चतुर्थ अध्याय

राज्य में न्याय एवं शान्ति

(१) सामाजिक समन्वय
(२) रूढ़िवाद बनाम सुधारवाद
(३) सामाजिक न्याय एवं नैतिकता
(४) मानवतावादी राजनीतिक दर्शन

डा0 अम्बेडकर साम्यवादी विचारधारा के खिलाफ थे। वे सर्वहारा की तानाशाही पर विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार किसी समाज में न्याय की सम्भावनायें उसी समय बढ़ सकतीं है, जब उनमें आदर्श एवं यथार्थ में संतुलन हो, यदि ऐसा नहीं है तो यह न्याय के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा। वास्तविक तथ्यों का आदर्शीकरण करना सामाजिक नैतिकता के प्रतिकूल है, जबकि सामाजिक नैतिकता ही न्याय की आत्मा होती है। ऐसी समाज व्यवस्था जो तथ्यों के आदर्शीकरण पर र्निभर होती है, मूल्यों के मूल्याँकन को रोकती है। डा0 अम्बेडकर ने लिखा है–"कोई भी समाज जिसमें सामाजिक चेतना है यह बात स्वीकार नहीं करता । इसके विपरीत, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में जो कुछ प्रगति हुई है, वह इस सिद्धान्त को मानकर हुई है, जो कुछ भी दोषपूर्ण ढंग से निश्चित हुआ है, उसे निश्चित न समझा जाए, और वह फिर से निश्चित होना चाहिये।"[1]

डा0 अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त में निहित मन्तव्य यह था कि समाज के विभिन्न नियमों एवं मूल्यों में आवश्यकतानुसार, परिवर्तन, समायोजन, समन्वय एवं मेल–मिलाप होते रहना चाहिये, ताकि अच्छी समाज व्यवस्था बन सके एवं सामाजिक न्याय का सिद्धान्त सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनीतिक विभिन्नताओं एवं समानताओं में उचित समन्वय स्थापित करने में समर्थ हो। वे मानते थे कि न्याय वह है जो अन्यायपूर्ण वातावरण का अन्त करें।

1. सामाजिक समन्वय :–

वे सदियों से सामाजिक रूढ़ियों के शिकार एवं वंचित वर्ग

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, शूद्र कौन पृ0 – 15

के प्रति सेवा एवं प्रेमभाव से भरे रहे। डा0 अम्बेडकर ने इस लोक से परे परलोक की कल्पना को नकार दिया। वे इस प्रलोभन के विरोधी थे कि स्वर्ग में सुख मिलेगा। वे यथार्थवादी दृष्टि अपनाते थे एवं स्वर्ग नर्क को इसी धरती पर स्थित मानते थे। वे मानते थे कि यहाँ सदाचार के राज की स्थापना मनुष्य सद्आचरण से कर सकता था। सद्आचरण सद्व्यवहार से सम्भव है। अपनी मानववादी विचार परिधि में उन्होंने व्यक्ति एवं समाज, आदर्श एवं न्याय में समन्वय करने का प्रयास किया। डा0 अम्बेडकर का विचार एवं संघर्ष जीवन भर रूका नहीं। वे रूढ़िवादी हिन्दुओं को यह अनुभूति करवाना चाहते थे कि भारत के लोग रोगग्रस्त हैं एवं उनका रोग अन्य भारतीयों के स्वास्थ्य एवं खुशी के लिये खतरा पैदा कर रहा है, तो वह स्वयं को संन्तुष्ट मानेंगे। अनुदार एवं रुढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा अपने रोग की अनुभूति निश्चित रुप से भारतीय समाज व्यवस्था को जनतांत्रिक एवं न्यायी बनाने में सशक्त सहयोग प्रदान करेगी। किसी भी न्यायी व्यवस्था का आधार कर्म होना चाहिये, न कि जन्म।[1]

एक राज्य की न्यायिक व्यवस्था की अनिवार्यता के लिये न्यायपालिका या न्यायाधिकरण की व्यवस्था होनी चाहिये। इसके बिना किसी सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

न्याय के सिद्धान्त की विवेचना करते हुयं प्रोफे0 बार्कर ने कहा कि संस्थागत अच्छे मानवीय संबंधों के लिये विभिन्न प्रकार के मूल्यों की जरुरत होती है। स्वतंत्रता, समानता, एवं भ्रातृत्व या सहयोग के विभिन्न मूल्य होते हैं। यह सब मूल्य किसी भी कानून व्यवस्था में पाये जाते हैं, पर समय के अनुसार उनकी मान्यता एवं परिभाषा में अंतर आ जाता है। साथ–साथ इसमें परिवर्तन भी

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 77

होते रहते हैं। स्वतंत्रता के मूल्य एवं अधिकार समानता के साथ समायोजित होने चाहिये, स्वतंत्रता तथा समानता का संतुलन एवं समायोजन सहयोग तथा भ्रातृत्व के साथ होना चाहिये। इस दृष्टि से न्याय का मुख्य कार्य विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों में संतुलन, समायोजन, सामंजस्यता आदि स्थापित करना है।[1]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार लोगों को समाज के आदर्शों या नियमों का अनुसरण आवश्यक रुप से करना चाहिये। वे नियमों एवं आदर्शों को अच्छा समझते थे। वे इन्हे कर्म एवं कर्त्ता के स्त्रोत के रूप में देखते थे। वे यह भी चाहते थे कि व्यक्ति या समाज नियमों का अन्ध भक्त न बने। इन नियमों में सामाजिक सामंजस्यता एवं एकता परिवर्तित परिस्थितियों में लाई जा सकती है। समय के अनुसार इन नियमों में परिवर्तन की जरुरत है। समाज के नियमों को जब पवित्र एवं निर्विवाद मान लिया जाता है तो समाज प्रगतिहीन बन जाता है। ऐसे समाज का कालान्तर में अस्तित्व समाप्त हो जाता है। पवित्रता एवं सामाजिक मूल्याँकन को साथ–साथ नहीं रखा जा सकता है। पवित्रता एक ऐसी मान्यता होती है जिसे निरपेक्ष एवं निर्विवाद मान लिया जाय तो समाज प्रगतिहीन बन जाता है। समाज एक पद्धति है। एक जीवन जीने का ढ़ंग है। रहन–सहन की एक व्यवस्था है। उसमें निरंतर मूल्याँकन की सम्भावना रहती है। डा0 अम्बेडकर सामाजिक नियमों को प्रमुख मानते हैं, उससे ही समाज की गतिविधियाँ चलती हैं। वे समाज की आवश्यकता के अनुसार नवीन मूल्यों एवं नियमों को स्थान देने के पक्षधर थे। वास्तविक तथ्यों का आदर्शीकरण करना सामाजिकता नैतिकता के प्रतिकूल है। सामाजिक नैतिकता ही न्याय की आत्मा होती है।

---

1. ई0 बार्कर – प्रिन्सपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थिअरी पृ0 – 102

व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये दो प्रकार के प्रतिरोधी दृष्टिकोण मिलते हैं। यहाँ पर दोनों मतों की व्याख्या करना उचित समझता हूँ। फिक्टे एवं हीगल जैसे विचारकों का मत है कि, "समाज एक ऐसी इकाई है, जो व्यक्तियों से बिल्कुल स्वतंत्र एवं पृथक है, एवं वास्तविक रुप से उनसे उच्च है। समाज के अधिकार एवं शक्तियाँ व्यक्ति से अधिक हैं। व्यक्तिगत हितों का संचालन समाज करता है। इसलिये व्यक्ति का समाज से भिन्न होना स्वाभाविक है। समाज एक ऐसी समष्टि है, जिसमें व्यक्ति का बहुत कम महत्व होता है। समाज ऐसी संस्था या संगठन है, जिसकी आज्ञायें एवं नियम सब व्यक्तियों, स्त्रियों एवं पुरुषों पर लागू ही नहीं वरन् उन पर बाध्य होते हैं।"[1]

इसके विपरीत जॉन लॉक जैसे विचारकों ने कहा "समाज व्यक्तियों के समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। व्यक्ति ही महत्वपूर्ण होते हैं, समाज में उन्हीं के हित सर्वोपरि होते हैं।"[2]

डा0 अम्बेडकर का मत इन दोनों से कुछ भिन्न था। वे किसी भी मत से सहमत नहीं थे। वे मानते थे कि समाज व्यक्ति से उच्च नहीं हो सकता। समाज व्यक्तियों से भिन्न नहीं है। साथ ही साथ व्यक्ति भी सर्वोच्च नहीं है। डा0 अम्बेडकर इन दोनों मतों के मध्य के अनुयायी थे। वे समष्टि एवं व्यष्टि में समन्वय के पक्षपाती थे। समाज का अस्तित्व व्यक्तिगत सामाजिक प्राणियों में है। वे इस कथन को मानते थे कि 'व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है।[3] वे एक मानववादी होने के नाते, न तो समाज को सर्वोपरि मानते थे, न व्यक्ति को ही। समाज व्यक्ति में निहित है, व्यक्ति समाज से पृथक नहीं रह सकता है। उन्होंने समाज एवं मानव के समग्र रुप में विश्वास किया। मनुष्य एवं समाज परस्पर एक

---

1. जी0 डब्ल्यू0 कनिंघम – प्राब्लम्स ऑव फिलासफी पृ0 – 305
2. वही, पृ0 – 305-306
3. अरस्तु – पॉलिटिक्स

दूसरे के पूरक हैं। इसमें पूजीवाद एवं साम्यवाद के बीच का मध्यमार्ग देखने को मिलता है।

डा0 अम्बेडकर मानव को समाज का मौलिक तत्व मानते हैं, न कि बिल्कुल स्वतंत्र इकाई। मानव एक बुद्धिशील प्राणी है। समाज के बाहर मानव का कोई अर्थ एवं मूल्य नहीं है।

2. रुढ़िवाद बनाम सुधारवाद :–

रूढ़िवादी लोग परम्परा एवं विश्वास के महत्व को सिद्ध करने के लिये कुछ युक्तियाँ देते है।

(अ) किसी समुदाय के जीवन में परम्पराओं पर आधारित विश्वास महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। उनकी सुरक्षा के लिये हर सम्भव प्रयास करना चाहिये। इसके अलावा परम्परावादी साँस्कृतिक विरासत का अन्त हो सकता है।

(ब) इन परम्परावादी विश्वासों को समाप्त करने में काफी व्यवहारिक खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें प्रमुख सामाजिक विघटन एवं अराजकता है।

(स) वे विश्वास जो आज तक जीवित हैं, एवं संकटों के झंझावातों के मध्य समय की कसौटी पर खरे उतरे उनमें सत्य का अंश है।

सामाजिक न्याय एवं मानव प्रगति दोनों का मानव के विचार एवं स्वतंत्रता से गहरा सम्बन्ध है। परम्परावादी एवं सुधारवादी दोनों अपने दृष्टिकोण को सही सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। संघर्ष के कारण दोनों के पीछे कुछ मौलिक तत्वों में निहित हैं। रूढ़िवादी लोग परम्पराओं के महत्व पर बल देते हैं। इनका उनके जीवन में प्रमुख स्थान होता है। सुधारवादी लोग

व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल देते हैं। वे पारम्परिक विश्वासों पर बल नहीं देते हैं। परम्परावादी लोग परम्पराओं की व्यवहारिक उपयोगिता पर अधिक जोर देते हैं।

इस सम्बन्ध में सुधारवादी लोग कुछ दूसरे प्रकार के तर्क प्रस्तुत करते हैं। यह निम्न प्रकार हैं।

(अ) वर्तमान युग में नया ज्ञान हमारे सामने आ रहा है। पुराने पारम्परिक सिद्धान्त वर्तमान समय में अप्रासंगिक हो चुके हैं। इनमें सुधार आवश्यक है।

(ब) केवल प्राचीनता को ही किसी सिद्धान्त के सत्य की कसौटी नहीं माना जा सकता। जैसे सती प्रथा, नगर वधु प्रथा को प्राचीनता की वजह से किसी प्रकार उचित नहीं ठहरा सकते।

(स) व्यक्ति का ज्ञान सामाजिक प्रगति की तरफ अग्रसर रहता है। इससे समाजोपयोगी नूतन अनुसंधानों के अवसर बने रहते हैं। व्यक्ति की प्रतिभा को परम्परावादी विश्वासों से दबाना नहीं चाहिये।

वर्तमान दलित आन्दोलन के प्रेरणापुरुष एवं सामाजिक उन्नयन के जनक, डा0 अम्बेडकर जाति प्रथा को न केवल अनैतिक वरन् सामाजिक विघटन का भी प्रमुख कारण मानते है। उनके अनुसार इसी कारण से हिन्दू समाज पतनोन्मुख हुआ है।[1] प्रगतिशील समाज वास्तविकता या सत्य धर्म पर आधारित होता है। व्यक्ति विरोधी समाज प्रगति का साथी नहीं बन सकता । हर समाज में आत्म मंथन होना चाहिये। समाज में नये मूल्यों एवं मान्यताओं के प्रति उत्साह में कमी नहीं होनी चाहिये। सामाजिक संरचना के मूल में मानव की अंधमनोवृत्ति काम कर रही है।

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, रानाडे, गांधी और जिन्ना पृ0 – 20

वर्तमान समय में विज्ञान ने परम्परागत एवं अनुचित मान्यताओं के सामने प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। कई बार सुधारवादी आन्दोलन कालान्तर में रुढ़ियों में बदल जाते हैं। उनके उद्देश्यों के विपरीत उसी के अनुयायी काम करने लगते हैं। कई बार किसी बुराई का सामना करने के लिये जो चीज सामने आती हैं, कालान्तर में उसी के खिलाफ कार्य होने लगते हैं। इस प्रकार निश्चित रुप से शोषणोन्मुखी सिद्धान्तों को तिलाँजलि दे दी जानी चाहिये। प्रत्येक मानव के हित में समाज को काम करना चाहिये।

उनके मत से रूढ़िवाद एवं अधुनातन सुधार के बीच संघर्ष का समाधान इन दोनों के बीच मध्यम मार्ग अपनाकर हो सकता है। यह मध्यम मार्ग जीवन के प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोंण अपनाकर हो सकता है। दोनों में सत्य के अंश हैं। वास्तव में परम्परावादी विचार सामाजिक जीवन में स्थिरता देते हैं। ऐसा तभी सम्भव है, जब समाज भेदभाव रहित एवं समान अवसर प्रदान करे। अतः परम्परा एवं सुधार को समान रुप से लेना ही सही मार्ग होगा।

डा0 अम्बेडकर को परम्परावादी निरपेक्षवाद स्वीकार नहीं था, क्योंकि यह व्यक्तिगत उत्पादकता एवं प्रतिभा के लिये ही हानिकारक नहीं है, वरन् राजनीतिक निष्पक्षता एवं सामाजिक स्वतंत्रता के मार्ग में बाधक है। डा0 अम्बेडकर निरपेक्ष एवं सामाजिक स्वतंत्रता के पक्ष में भी नहीं थे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण है। निरपेक्ष स्वतंत्रता से समानता की भावना को हानि होती है। वे मानते थे कि सामाजिक प्रगति, नवीन मार्गों एवं मूल्यों के लिये व्यक्तिगत ज्ञान हितकर होता है।

डा0 अम्बेडकर मानते थे कि उन परम्पराओं, रीति–रिवाजों,

विश्वासों एवं मूल्यों की पूजा करना निरर्थक है, जो आज निरर्थक हो चुके हैं। वे वर्ण व्यवस्था में मौलिक सुधार नहीं, इसे समूल नष्ट करना चाहते थे। वर्ण व्यवस्था से मानवों के मध्य विभाजन की ऊँची दीवारें खड़ी हो चुकी है। लोग परस्पर घृणा में आकंठ डूब गये हैं। इस परम्परा ने करोड़ों दलितों को जन्म दिया है। इस दृष्टि से वे केवल हितकारी विचारों को सुरक्षित रखने के पक्षधर थे। अहितकारी विश्वासों को लोगों की असंतुष्टता को देखते हुये त्याग देना चाहिये। डा0 अम्बेडकर समय के अनुसार परिस्थितियों को देखते हुये जीवन में सुरक्षा एवं सुधार के समर्थक थे। वे उन्हीं विचारों के संरक्षण के हिमायती थे। जो प्रासंगिक, उपयोगी एवं कारगर हैं।

प्रत्येक समाज में कुछ नैतिक स्तर होते हैं। इनका प्रयोग सामान्य सामाजिक एवं नैतिक चेतना पर निर्भर होता है। यही नैतिकता न्याय के सिद्धान्त का स्त्रोत होती है। स्वतंत्रता एवं समानता के मार्ग में जो बाधायें आतीं हैं, उनका अंत करना ही श्रेयस्कर होता है। जब इन बाधाओं का अंत नहीं होता तो समाज विरोधी तत्व बढ़ जाते हैं।

डा0 अम्बेडकर दलितों के निर्णायक लड़ाई लड़ने के हिमायती थे। वे मंदिर आन्दोलन में प्रवेश के समर्थक थे। उन्होंने रूढिवाद के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ किया। डा0 अम्बेडकर मंदिर में प्रवेश इसलिए नहीं चाहते थे कि इससे ईश्वर प्रसन्न हो जायेंगे । वास्तव में यह आन्दोलन वंचितों को ऊर्जा देने एवं उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कराने का माध्यम था।[1] इसका प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस पर पड़ा। डा0 अम्बेडकर ने एक प्रकार से काँग्रेस के वर्चस्व को चुनौती दी थी।

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 51

दलितों के लिये 1923 के वर्ष में कई प्रकार की आवाजें उठाई गई। परन्तु उनमें से कई आवाजें सही तल तक नहीं पहुँच रहीं थीं। इसीलिये डा0 अम्बेडकर ने वंचितों के उद्धार के लिये नये रास्तों की तलाश की। तत्कालीन समय की कई अन्य समस्यायें थी, यथा विधवा विवाह, स्त्रियों का जायदाद पर हक, नारी शिक्षा, बाल विवाह आदि। डा0 अम्बेडकर सबसे पहले वंचितों की समस्या को हल करना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर वंचितों पर अलग से ध्यान देना चाहते थे। वे जानते थे कि अछूत समाज तो सवर्ण हिन्दू समाज से बहुत पीछे है। इन दोनों का इलाज अलग है, एवं समस्याओं में बहुत अन्तर है।

डा0 अम्बेडकर को वंचितों की पीड़ा, अन्याय एवं शोषण का व्यक्तिगत अनुभव था। वे वंचितों को दूसरों की दया पर जीवित नहीं देखना चाहते थे। वे समझ नहीं पाते थे कि किस प्रकार उनकी सहायता व उत्थान में मदद करें। वे जो अन्याय से ग्रसित हैं, उनको स्वयं न्याय पाने योग्य बनना होगा। वे जानते थे कि मात्र भाषणों एवं नारों के सहारे वंचित वर्ग ऊपर नहीं उठ सकेगा। उनका विश्वास था कि हिन्दू समाज में व्याप्त अंधविश्वास के विरुद्ध कमर कसे बिना कुछ भी व्यवहारिक एवं यथार्थोन्मुखी होने वाला नहीं है।

पूर्वकाल में आर्य समाज आन्दोलन वंचितों के उद्धार में मील का पत्थर साबित हुआ है। इसका प्रसार पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया के रुप में हुआ। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। स्वामी जी ने "वेदों की ओर लौटो" का नारा दिया। उन्होंने "भारत भारतीयों के लिये" का भी नारा दिया।[1] सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने छुआ–छूत, जन्मजात जाति, बाल विवाह आदि बुराईयों पर कुठाराघात किया। भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक

---

1. Farquhar, Modarn Religious Movement in India P. 112

थे, जिन्होंने शूद्र एवं स्त्री को वेद पढ़ने, ऊँची शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने एवं सभी वर्गों को समान लाने के लिये आन्दोलन किया। उन्होंने स्त्री कल्याण के लिये भी काम किया। वे वर्ण व्यवस्था को जन्म से न मानकर कर्म से मानते थे। चारों वर्ण समान हैं। इस प्रकार स्वामी जी ने हिन्दू समाज में समानता की उस भावना को जाग्रत किया, जो वर्तमान में हमें भारतीय संविधान में देखने को मिलती है।[1] आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। आर्य समाज ने आधुनिक ज्ञान एवं तर्क को अपनाया। वास्तव में स्वामी जी ने भारत के शक्ति शून्य शरीर में अपनी दुर्धष शक्ति, अविचलता एवं सिंह पराक्रम फूँक दिया था।[2] स्वामी जी ने कुरीतियाँ दूर करने के लिये शुद्धि आन्दोलन चलाया। इस प्रकार स्वामी जी ने दलितोद्धार के लिये काम किया। उन्होंने शिक्षण संस्थाओं में सभी जाति के बच्चों के साथ समान व्यवहार करने के लिये कहा।[3]

स्वयं डा0 अम्बेडकर के अनुसार एवं जीव विज्ञान के अनुसार सभी मानव शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से समान नहीं है।[4] कुछ निर्बल एवं कुछ दुर्बल बुद्धि के होते हैं। सभी लोग किसी भी प्रकार से समान नहीं होते है। भिन्नतायें स्वाभाविक होती हैं। इस प्रकार समानता पूर्णतः व्यवहारिक नहीं है। परन्तु सैद्वान्तिक दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का सिद्धान्त समानता ही है। यही प्रजातंत्र की आधार शिला है। इस प्रकार प्रेम एवं न्याय में विश्वास करने वाले प्रत्येक मानव को समानता के सिद्धान्त का समर्थन करना चाहिये।

भारत के इतिहास में रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले पुरोधा एवं समाज तथा धर्म सुधारक सदैव से होते आये हैं। इसमें विद्रोही, सन्त,समाज सुधारक एवं भक्त सभी हुये हैं।

---

1. बी0 एल0 ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास-एक नवीन मूल्यांकन पृ0 - 275
2. डा0 ए0 के0 मित्तल, आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पृ0 - 295
3. वही, पृ0 - 297
4. डार्विन का सिंद्धान्त

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "यह जो किसान, मजदूर, मोची, मेहतर आदि हैं, इनकी कर्म शीलता एवं आत्म निष्ठा तुममें से कईयों से अधिक है। ये लोग चिरकाल से चुपचाप काम करते आ रहे हैं। वास्तव में ये लोग राष्ट्र की रीढ़ हैं। इन लोगों ने सहस्त्रों वर्षों के अत्याचार के बाद नीरव सहिष्णुता पाई है प्राचीन भारत ने जिन दो सर्वश्रेष्ठ पुरुषों को जन्म दिया, वे दोनों ही क्षत्रिय थे वे कृष्ण एवं बुद्ध हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दोनों देव मानवों ने लिंग एवं जातिभेद को न मानकर सबके लिये ज्ञान का द्वार उन्मुक्त कर दिया।[1]

महात्मा फुले, महात्मा गाँधी, प्रेमचंद्र, पं0 जवाहर लाल नेहरु, आचार्य नरेन्द्र देव, डा0 हेडगेवार, माधव राव सदाशिव राव गोलवलकर एवं राहुल साँकृत्यायन आदि के प्रयासों को भी दलित उद्धार में गिना जाता है।

इस प्रकार के उदाहरण कई शताब्दियों के उपलब्ध हो सकते हैं। डा0 अम्बेडकर ने इसी कड़ी में अपने सिद्धान्त दिये। उनका सिद्धान्त व्यक्तिगत योग्यता एवं प्रतिभा को न्यायोचित स्थान प्रदान कारता है। कोई भी व्यक्ति जन्म से हीन नहीं है, न कुल से बड़ा है। वे स्वार्जित बुद्धि एवं पद पर विश्वास करते थे। वे दोषपूर्ण समाज संबंधों को सुधारना चाहते थे, ताकि सामाजिक न्याय एवं प्रगति बढ़े।

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति योग्यता एवं सद्गुण प्राप्त करता है शिक्षा तत्कालीन समय में सर्वसुलभ नहीं थी। डा0 अम्बेडकर ने शिक्षा के द्वार सबके लिये खुलवाये ताकि शिक्षा सर्वसुलभ हो सके। उन्होंने लोगों से आग्रह किया कि वे विचार शक्ति को तीव्र करें, ताकि समाज की स्थितियों का सुधार हो।

1. दलित जन उभार पृ0 - 23,24,25

डा0 अम्बेडकर ने जिस समाज की आधार शिला डाली वह न्याय पर आधारित है, जिसमें सबके लिये प्रेम है एवं किसी के प्रति घृणा नहीं हैं।

3. सामाजिक न्याय एवं नैतिकता :–

समाज में कानूनहीनता की स्थिति अराजकता की ओर ले जाती है। समाज में मात्स्य न्याय की स्थिति पैदा हो जाती है। समाज में चारों ओर हिंसा, विद्रोह एवं संघर्ष फैल जाता है। ऐसी स्थितियो में जब राज्य प्रभावशाली नहीं होता, तब शान्ति व्यवस्था के लिये खतरा पैदा हो जाता है। इस परिस्थिति में न्याय का सिद्धान्त खतरें में पड़ जाता है।

डा0 अम्बेडकर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पददलित लोगों के नेता थे। आजादी के पूर्व एवं पश्चात समाज के लिये उनका निश्चित दृष्टिकोंण था। डा0 अम्बेडकर के द्वारा डाली गई आधारशिला न्याय पर आधारित है। संविधान एवं विधिक क्रान्ति को समझने वाले लोग उन्हें सामाजिक न्याय का मसीहा एवं सामाजिक दासता के कट्टर शत्रु के रुप में स्मरण करते हैं। डा0 अम्बेडकर ने न्याय की धारणाओं को नया रुप दिया।[1] डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय का अनुभव किया, उसकी पीड़ा को भोगा एवं उसके क्रूर प्रहारों को सहन ही नहीं किया, वरन् साहसपूर्वक डटकर सामना भी किया।

अतः न्याय की परिभाषा करते हुये उन्होंने कहा था, "न्याय समान्यतः स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृभाव का दूसरा नाम है।"[2] न्याय मानव गरिमा में अन्तर्निहित विचार है। सामाजिक न्याय का आदर्श भाईचारा एवं मैत्री पर आधारित है। यह पारस्परिक महत्व एवं सम्मान को भी प्रतिपादित करता है। डा0

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिंतन पृ0 – 66
2. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड–3 पृ0 – 25

अम्बेडकर के यह विचार सम्पूर्ण मानवता का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामाजिक न्याय का सिद्धान्त उन सभी सिद्धान्तों को अपने में समाहित किये है, जो नैतिक व्यवस्था की आधार शिला बन चुके हैं।[1]

सामाजिक जनतंत्र को राजनीतिक जनतंत्र की पृष्ठभूमि समझना चाहिये। राजनीतिक जनतंत्र की आत्मा सामाजिक जनतंत्र है। सामाजिक जनतंत्र का अर्थ एक जीवन पद्धति से है जो स्वयं में स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृभाव को संजोए रखती है। स्वतंत्रता, समानता एवं भातृभाव को एक दूसरे से पृथक करने का अर्थ जनतंत्र के मूल उद्देश्यों को परास्त करना होगा।[2] डा0 अम्बेडकर के अनुसार स्वतंत्रता विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और आस्था में निहित होनी चाहिये। समानता व्यक्ति, समूह एवं समुदाय के बीच में सूत्र का कार्य करती है। समानता सामाजिक सद्भाव स्थापित करती है। भ्रातृत्व वह भावना है जो स्वतंत्रता एवं समानता के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ पैदा करती है। यह भाई चारे की भावना है। सभी भारतीय एक राष्ट्र हैं। भ्रातृत्व सामाजिक जीवन को मजबूत करता है।[3] इस प्रकार स्वतंत्रता समानता एवं भ्रातृत्व परस्पर अपृथक है। यह परस्पर एक– दूसरे के पूरक हैं एवं सामाजिक न्याय की धारणा को व्यवहारिक बनाने में सक्षम है।

सामाजिक न्याय का मानदण्ड मात्र भौतिक प्रगति नहीं है। शारीरिक भूख–प्यास मिटा देने से या सरकारी नौकरी से इसके सम्पूर्ण अर्थ के बारे में पता नहीं लगाया जा सकता। यह सभी नागरिकों, वर्गों एवं धर्मों के लोगों के बीच मानव मूल्यों एवं अधिकारों की समानता है। एक ऐसी जीवन प्रणाली है जो योग्यतानुसार व्यक्ति को स्थान देती है। डा0 अम्बेडकर ने इस विचारधारा में प्लेटो, अरस्तु, नीत्शे, मार्क्सवाद एवं गाँधीवाद तक को नकार दिया। उन्होंने

---

1. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड–3 पृ0 – 25
2. ऑन द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, डा0 अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा में 25/11/1949 को दिया गया भाषण
3. वही,

सामाजिक न्याय के वर्णाश्रमवादी दृष्टिकोंण को बिल्कुल स्वीकार नहीं किया। डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार इनमें से किसी ने भी सामाजिक न्याय को सामान्य व्यक्तियों से नही जोड़ा न ही सम्पूर्ण समाज को न्याय का लक्ष्य बनाया। डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि वर्णाश्रम धर्म सामाजिक न्याय के सार तत्व का विरोधी है।[1] प्लेटो का वर्गीकरण नितान्त कृत्रिम था, एवं वह मानव स्वभाव के रहस्यों को समझ पाने में असमर्थ रहा था।[2] डा0 अम्बेडकर जीवन भर सामाजिक असमानता, अप्राकृतिक श्रेष्ठता एवं थोपी गई दासता के विरुद्ध संघर्ष करते रहे।

प्रोफेसर राधाकृष्णन ने ईश्वरीय विधि को समझाते हुये कहा था कि यह ईश्वर की इच्छा है। ईश्वर कर्मानुसार न्याय करता है। न्याय "ईश्वर के मन एवं संकल्प का ही रुप है। ईश्वर उसका प्रबन्धक, कर्माध्यक्ष, है। न्याय ईश्वर का विशेष गुण है। वह प्रत्येक कार्य, प्रत्येक विचार को एक अदृश्य रुप में, किन्तु न्याय की सार्वभौम तराजू में तौलता है।"[3] डा0 अम्बेडकर ने इस प्रकार की धारणा को नकार दिया। वे ईश्वर को न्याय करने वाला नहीं मानते थे। इसका कारण था कि वे ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करते थे। वे ईश्वर के समक्ष समानता को भी कोरी कल्पना मानते थे। वे आदमी की भलाई से सम्बन्धित लौकिक एवं नैतिक तत्वों के महत्व पर बल देते थे। भारत की वर्तमान स्थिति में राज्य का कानून ही प्रभावी हो सकता है, न कि दैविक कानून।

डा0 अम्बेडकर सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में धर्म की भूमिका को स्वीकार करते थे। न्याय के संदर्भ में धर्म का सामाजिक मूल्य है। वे जानते थे कि भारत में धर्म के बिना कुछ भी करना असम्भव है। भारत में सामाजिक न्याय धर्म के बिना सम्भव नहीं होगा। डा0 अम्बेडकर ने संविधानिक शासन, कानून,

---

1. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज पृ0 - 25-92
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, एनहिलेशन ऑफ कास्ट पृ0 - 43-44
3. एस0 राधाकृष्णन्, द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ पृ0 - 73

धर्म एवं नैतिकता को सामाजिक न्याय का आधार स्वीकार किया।

डा० अम्बेडकर मानते थे कि नैतिकता को पवित्र या सामान्य बनाने के लिये निम्न बातें जरुरी हैं। इनमें पहली है, उत्तम लोगों की सुरक्षा की आवश्यकता दूसरा सिद्धान्त सामान्य हित का है। नैतिकता को सार्वभौम बनाने में इस सिद्धान्तका प्रमुख स्थान है। नैतिकता के नियम ऐसे हों, जो सबके लिये पवित्र हों। व्यक्तिगत विकास की सुरक्षा तीसरा सिद्धान्त है। वास्तव में भ्रातृत्व की भावना भी नैतिकता ही है।

डा० अम्बेडकर के अनुसार नैतिक बुराइयों के अन्त के लिये मानव को अपनी इच्छा पर नियंत्रण करना चाहिये। इच्छाओं को गलत ढ़ंग से संतुष्ट करने पर ही बुराइयाँ पैदा होती हैं। नैतिक बुराई समाज के अच्छे सम्बन्ध बिगड़ जाने पर पैदा होती है। जातिवाद एवं छुआ–छूत इसके अर्न्तगत आते हैं। यह कुत्सित भावनायें न्याय एवं नैतिकता के प्रतिकूल होती हैं। डा० अम्बेडकर बुराई को समाज एवं मानव से पूर्व का नहीं मानते हैं। वह सामाजिक बुराईयों को समाज की देन मानते है।

4. मानवतावादी राजनीतिक दर्शन :–

मानववाद का केन्द्र बिन्दु मानव एवं उससे सम्बन्धित समस्यायें होती हैं। मानववाद मानव संबंधो की व्यवस्था का एक चिन्तन एवं व्यवहार है। डा० अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन मानवतावादी मूल्यों को समाज में संस्थापित करने की दिशा में कदम था।[1] मानववाद व्यर्थ की उलझनों में नहीं डालता। यह चिन्तन मानव के तत्सामयिक कल्याण की ओर ध्यान देता है। मानव की स्थिति,

1. डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा० अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ० – 148

समस्या एवं समाधान मानववाद का प्रमुख विषय है। डा0 अम्बेडकर के चिन्तन का प्रमुख बिन्दु मानव है। डा0 अम्बेडकर के चिन्तन का प्रमुख केन्द्रबिन्दु पददलित आदमी का अध्ययन था। उसकी मुक्ति के लिये उन्होंने स्वयं सहायता का मार्ग दिखाया। व्यक्ति की स्थिति को समझना ज्ञान है, समस्या की पहचान बुद्धिमत्ता है। समाधान के लिये संघर्ष करना साहस एवं न्याय है। डा0 अम्बेडकर के मानववाद में देशकाल की परिस्थितियों की झलक मिलती है। उनका चिन्तन निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है।

सामाजिक दासता भारतीय स्थिति की नियति थी। डा0 अम्बेडकर स्वयं इस नियति के शिकार हुये थे। इसलिये उन्होंने दलितों की स्वतंत्रता का बीड़ा उठाया। उन्होंने कहा था कि इन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक सम्पन्नता की बजाय सामाजिक सम्मान एवं समता की अधिक जरुरत है। वे दलितों पर लादी गई निर्योग्यताओं के विरुद्ध थे। डा0 अम्बेडकर का मानववाद बनावटी अनावश्यक सामाजिक बन्धनों एवं कठोर नियमों से मानव को मुक्त करने के लिये कृत संकल्पित है। डा0 अम्बेडकर ने हर व्यक्ति के सम्मानपूर्वक जीने की इच्छा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। वे हर प्रकार के भेदभाव के खिलाफ थे। उन्होंने मानव व्यक्ति की गरिमा के द्योतक मूल अधिकारों एवं नीति–निर्देशक तत्वों को इसलिये संविधान में प्रमुख स्थान दिया। बुद्ध के धम्म को स्वीकार करने के पीछे भी इसी प्रकार के मानवतावादी कारण थे। डा0 अम्बेडकर के सामाजिक मानववाद के मौलिक तत्व इस प्रकार है।

तात्विक दृष्टि से मानववाद ईश्वरीय एवं पराप्राकृतिक शक्ति का विरोधी है। वह मानव निर्मित समता समाज व्यवस्था का समर्थक है। मानववाद आदमी के अस्तित्व एवं स्थिति में अटूट आस्था रखता है। वह उन समस्त

बनावटी एवं अनावश्यक सामाजिक बंधनों एवं नियमों का प्रतिरोधी है, जो आदमी की स्वतंत्रता, समता और अधिकारों को अवरुद्ध करते हैं।

मानववाद सभी धर्मों के सह अस्तित्व का समर्थक है। वह धार्मिक स्वतंत्रता का पक्षधर है, परन्तु वह मानता है कि सभी धर्मों के अच्छे न होने की वजह से व्यक्ति को धर्म परिवर्तन की स्वतंत्रता होनी चाहिये। सभी शास्त्र मानव निर्मित हैं, इसलिये उनकी समीक्षा जरुरी है। धर्म के नाम पर व्यक्ति का उत्पीड़न अनुचित एवं अधार्मिक है। मानव जगत का संचालन कोई पराप्राकृतिक शक्ति नहीं करती। वह स्वायत्त नैतिक व्यवस्था है, जो आदमी के कर्मों से निर्मित होती है। समाज व्यवस्था भी कर्मों का प्रतिफल है। व्यक्ति स्वयं ही व्यवस्था एवं संस्थाओं का निर्माता है।

मानववाद सभी को आर्थिक उन्नति के साधन सुलभ कराने पर बल देता है। बीमारी या भुखमरी कुव्यवस्था का परिणाम है। सामाजिक मानववाद भोग –विलासिता पूर्ण जीवन का विरोधी है। यह आर्थिक मूल्यों की अपेक्षा मानव मूल्यों पर बल देता है। धन सम्पत्ति सम्यक आजीविका द्वारा कमानी चाहिये। यह संतोषं परम् धनम् में विश्वास रखता है। यह जनताँत्रिक व्यवस्था एवं समान नागरिक अधिकारों का समर्थक है। एक व्यक्ति एक मूल्य इसका आदर्श है यह कानून के समक्ष सभी नागरिकों की समानता का समर्थक है।

सामाजिक न्याय के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका भी जरूरी है। यह विज्ञान एवं धम्म में अन्तर नहीं पाता, एवं उसके माध्यम से अंधविश्वास दूर करना चाहता है। यह भेदभाव रहित सर्वव्यापी, सर्वस्पर्शी शिक्षा का भी समर्थक है। शिक्षा को मानव मूल्यों में वृद्धि करना चाहिये। साँस्कृतिक मूल्यों को व्यक्ति

केन्द्रित करता है, साथ ही साँस्कृतिक मूल्य व्यक्तिनिष्ठ होने चाहिये। मूल्य वर्तमान में उपयोगी एवं न्यायसंगत होने चाहिये।

राष्ट्रीय दृष्टि से मानववाद व्यक्ति से प्रारम्भ होकर परिवार, समुदाय, समाज से आगे बढ़ता हुआ राष्ट्रीय एकता एवं बंधुत्व की ऊर्जा से सभी राष्ट्रों को इस प्रकार अनुप्राणित करने का हिमायती है, कि प्रत्येक राष्ट्र रचनात्मक भूमिका द्वारा संसार में शान्ति, सद्भाव एवं सह अस्तित्व स्थापित करने में मदद करे। मानववाद निम्न नव रत्नों में विश्वास रखता है। यह हैं–स्वतंत्रता, समता भाईचारा, शिक्षा, संगठन, संघर्ष, बुद्ध, धम्म एवं संघ। यह विचार डा0 अम्बेडकर के त्रयी सिद्धान्तों में निहित हैं।[1]

सामाजिक दृष्टि से मानववाद उदार मानव आन्दोलन है। जिसे मानव को अपनी स्वतंत्रता के लिये स्वयं संचालित करना है। वह समाजिक दासता एवं अन्याय का विरोधी है। यह सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत है। मुक्ति के मार्ग पर चलने के लिये त्याग, शिक्षा, संगठन, संघर्ष, दायित्व, कर्तव्य, निष्ठा, संयम एवं साहस आदि की जरुरत है। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर का मानववाद भारतीय परिस्थितियों से उपजा एक सक्रिय दर्शन है जो सामाजिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। डा0 अम्बेडकर ने भारत के दलितों को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। मान–सम्मान का अहसास कराया, एवं प्रेरित किया कि वे शिक्षा, संगठन एवं आन्दोलन के माध्यम से क्रान्ति लायें।[2] इस प्रकार डा0 अम्बेडकर के मानवतावादी दर्शन की ज्ञानरुपी किरणें, राष्ट्रीयता की सीमाओं से परे, भारत के दलितों से आगे, महावीर एवं बुद्ध के दर्शनों की तरह, समस्त प्राणियों का स्पर्श करती है। और उन्हें कुशल कार्यों के लिये प्रेरित करती हैं। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर का मानवतावाद सतत् आन्दोलन की दिशा को निर्धारित करता है।

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर के त्रयी सिद्धान्त — पृ0 – 31–44
2. वही, — पृ0 – 17–30

पंचम अध्याय

भारतीय संविधान पर विचार

(१) संघात्मकता में एकात्मकता, गणतंत्र, संसदीय प्रजातंत्र, संशोधन प्रणाली
(२) संविधान के आरक्षण सम्बन्धी उपबन्ध
(३) मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रावधान

डा0 अम्बेडकर ने हरिजन और दलित वर्ग को नई चेतना एवं प्रेरणा प्रदान की। उनका स्वयं का समस्त जीवन दलितों के बौद्धिक और सामाजिक स्तर को उठाने में समर्पित था। संविधान के द्वारा उन्होंने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समता के उच्चतम सिद्धान्तों पर आधारित ऐसे ढ़ाँचे की नींव रखी, जहां ऊँच–नीच, गरीब एवं अमीर सबसे लिये बराबर का स्तर हो। सच्चे क्रांतिकारी की तरह वे लक्ष्य के लिये हर चीज कुर्बान करना चाहते थे। वे सच्चे देश भक्त और लोकतंत्र के पक्के समर्थक थे। उस समय देश में दो आन्दोलन चल रहे थे एक तरफ राजनीतिक स्वतंत्रता का आन्दोलन दूसरी तरफ सदियों से दबे कुचले बहिष्कृतों की सदियों से चली आ रही सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक दासता से मुक्ति दिलाने का आंदोलन।

संविधान एक ऐसा विधान था, जिसमें दबे कुचलों, शोषितों के भविष्य का भाग्य लिखा जाना था। इस व्याकुलता को लेकर एक महत्वपूर्ण ज्ञापन 15 मार्च 1947 को शेड्यूल कास्ट्स फेडरेशन की ओर से संविधान निर्मात्री सभा को सौंपा गया था। तब तक डा0 अम्बेडकर को संविधान निर्मात्री सभा में शामिल नहीं किया गया था। जुलाई 1947 में डा0 अम्बेडकर के संविधान सभा में शामिल होने से पूरी जिम्मेदारी उन पर आ गयी। इसके बाद डा0 अम्बेडकर चाह कर भी इसके कुछ महत्वपूर्ण अंशो को संविधान में शामिल नहीं करा पाये थे।[1]

उस समय संविधान निर्माताओं के सामने कई समस्यायें थी। उनको एक विस्तृत भूखंड और विशाल जनसंख्या के लिये एक नई राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करना था। देश में विभिन्न जातियों और धर्म के लोग रहते थे। अनेक

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित (प्रकाशकीय) पृ0 – 04

भाषायें बोली जातीं थी। संविधान का कार्य इन सबको एक सूत्र में बांधना था। एक अन्य समस्या राज–भाषा की समस्या थी, जिसे सुलझाने में संविधान सभा को काफी समय लगा। एक अन्य कठिन समस्या 600 देशी रियासतों की थी।

डा0 अम्बेडकर को संविधान के निर्माण का गुरूतर दायित्व सौंपा गया। सात सदस्यीय प्रारुप समिति के अध्यक्ष डा0 अम्बेडकर थे। एन0 गोपाल स्वामी अय्यर, सैय्यद मोहम्मद सादुल्ला, अल्लादि कृष्ण स्वामी अय्यर, के0 एम0 मुन्शी, बी0 एल0 मित्तर, डी0 पी0 खेतान इसके सदस्य थे। पं0 नेहरु ने संविधान निर्माण के लिये आईवर जैनिंग्स का नाम सुझाया था। महात्मा गांधी ने नेहरु के सुझाव को अनसुना करते हुये डा0 अम्बेडकर का नाम सुझाया। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि प्रत्यक्ष रुप से संविधान का उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार–अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता को सुरक्षित करना है।[1] डा0 अम्बेडकर कानून के प्रकाण्ड पंडित थे[2]

1948 में डी0 पी0 खेतान की मृत्यु के पश्चात टी0टी0 कृष्णाचारी को सदस्य बनाया गया। एन0 माधव राव को बी0 एल0 मित्तर के स्थान पर चुना गया।[3] जो कुछ दिनों के लिये समिति के सदस्य थे। प्रारुप समिति की पहली बैठक 30 अगस्त 1947 को हुई। इसके बाद 27 अक्टूबर 1947 से इसकी बैठकें रोज हुई, जिसमें संविधान की धाराओं पर विचार विमर्श किया गया। 13 फरवरी 1948 तक कुल 44 दिन बैठके चलीं इसमें सर्वाधिक कार्य डा0 अम्बेडकर ने किया।

डा0 अम्बेडकर ने भारतीय संविधान को प्रस्तुत करते हुये कहा

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर और अम्बेडकर — पृ0 – 139
2. डा0 पुखराज जैन एवं डा0 बी0 एल0 फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति — पृ0 – 13
3. डा0 प्यारे लाल आदर्श, भारतीय संविधान — पृ0 – 09

था, "मै विधान परिषद में क्यों आया? मात्र अछूत वर्ग के हित में मैनें वह कार्य सम्भाला। इसके अतिरिक्त मेरी कोई अभिलाषा नहीं थी। मुझे इसकी कल्पना भी नही थी, कि मुझ पर इतनी बड़ी जिम्मेदारी डाली जायगी। अचरज तो उस वक्त हुआ जब संविधान निर्मात्री समिति ने मुझे संविधान मसविदा समिति का सदस्य चुना था, परन्तु जब समिति ने मुझे उसका अध्यक्ष चुना तो मुझे बड़ी हैरानी हुई। विधान परिषद और मसविदा समिति ने मुझे विश्वास में लेकर इतना बड़ा काय पूर्ण करा लिया। समिति के सदस्यों ने मुझे राष्ट्र की सेवा करने का मौका प्रदान किया, अतः मै उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

विधान कितना ही अच्छा क्यों न हो यदि उसको व्यवहार में लाने वाले सदस्य अच्छे न हो, तो विधान निःसंदेह बुरा प्रमाणित होगा। यदि हम लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते है, तो हमें अपने सामाजिक एवं आर्थिक आदर्शों को अहिंसात्मक वैध उपायों से प्रति स्थापित करना होगा। स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व भावना के आधार पर स्थापित शासन ही तो लोक तंत्र कहलाता है। भारत में समता का पूर्ण अभाव है। राजनीति में हमे समानता मिली है, परन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमता का प्रभाव है।"[1] हमें विषमता को मिटा देना होगा अन्यथा बडे परिश्रम और त्याग से निर्मित लोकतंत्र का यह मंदिर मिट्टी में मिल जायेगा।[2]

विभिन्नताओं के इस देश का संविधान बनाना एक कठिन कार्य था। डा0 अम्बेडकर ने इसका पूर्ण उत्तर दायित्व के साथ वहन किया था। डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने इस मौके पर उनकी प्रशंसा भी की थी। वे डा0 अम्बेडकर के इस कार्य को प्रशंसा की दृष्टि से देखते थे।

संविधान के पूर्ण होने पर इसकी एक प्रति उनको ससम्मान भेंट

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 - 109
2. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब — पृ0 - 33

की गई। इस कार्य की सभी प्रशंसा करते है। डा0 अम्बेडकर का स्वास्थ्य भी इस कार्य से प्रभावित हो गया था। देश प्रेम और मानवता की भावना उनमें कूट–कूट कर भरी थी। जीवन में उनकी प्रबल निष्ठा थी। वे भारतीय जीवन में विरोधाभास एवं भेद–भाव समाप्त कर एक रुपता एवं गतिशीलता लाना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि संविधान में निहित तत्व आज की पीढ़ियों के मत है। उनका विचार था, कि यह संविधान शांन्ति और युद्ध के समय राष्ट्रीय एकता बनाये रखने में अत्यंत प्रबल एवं सक्षम है।

संघात्मक में एकात्मकता :–

हमारे संविधान में एकता को सुदृढ़ करने के लिये बहुत से कारगर उपाय अपनाये गये। उदाहरण स्वरुप शक्तियों का बंटवारा केन्द्र के पक्ष में किया गया। इस सम्बंध में उत्तर देते हुये डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि शिकायत की जाती है कि अधिक केन्द्रीयकरण कर दिया गया है। राज्यों को नगर पालिका के दर्जे तक नीचा कर दिया गया है। यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि यह विचार अतिशयोक्ति हैं, एवं भ्रान्त धारणा पर आधारित है। राज्य और केन्द्र इन मामलों में बराबर हैं।[1]

एकात्मकता का दूसरा लक्षण लिखित एवं कठोर संविधान है। तीसरा सर्वोच्च न्याय पालिका केन्द्र राज्यों के बीच झगड़ों का निपटारा करती है। चौथे देश में इकहरी नागरिकता है। पाँचवे संकट कालीन धोषणा में। व्यवस्था का स्वरुप एकात्मक हो जाता है। इस सम्बन्ध में डा0 अम्बेडकर ने स्पष्ट रुप से संविधान सभा में स्वीकार किया कि ''संविधान को संधवाद के तंग ढ़ाँचे में पूरी तरह नहीं ढाला गया है।''[2] इसको इस तरह बनाया गया है कि शान्ति काल में संघीय आधार पर कार्य करे एवं संकटकाल में एकात्मक आधार पर कार्य करे। राज्यों को अलग होने या संविधान

1. आर0 सी0 अग्रवाल, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पृ0 – 13–14
2. Dr. Ambedkar Frankly admitted in the Constitution Assembly that, "The Constitution has not been set in a light mould of federalism."

बनाने का अधिकार नहीं है।

राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयकों को रोकने एवं राष्ट्रपति की अनुमति के लिये आरक्षित करने का अधिकार, संसद के किसी समझौता या रुढ़ि को लागू करने का अधिकार दो या अधिक राज्यों की सहमति से संसद को उनके लिये कानून बनाने का अधिकार प्राप्त करना तथा किसी अन्य राज्य द्वारा इस प्रकार के कानून को ग्रहण करना।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त है। इन विधियों के द्वारा केन्द्र राज्यों के ऊपर नियंत्रण रखता है।

1. राज्यों का कर्तव्य है कि इस प्रकार के कानून बनाये कि संसद के कानूनों का पालन होता रहे, संसद के कानूनों के अमल होने में राज्यों को केन्द्रीय प्रशासन में बाधा उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये।[1]

2. केन्द्र के पास अधिकार है कि वह राज्यों को निर्देश दे सकता है, कि वह अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।[2]

3. राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेण्ट के रुप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है।

4. सरकारी कृत्यों, अभिलेखों एवं न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जायेगी। केन्द्र एवं राज्य दोनों का कर्तव्य है कि वे सरकारी कृत्यों एवं न्यायालय के आदेशों का पालन करे।

5. संसद अन्तर्राज्यीय नदी–जल के बँटवारे के लिये उचित कानून बनाती है। वह

---

1. अनुच्छेद 257
2. अनुच्छेद 256

विवाद की स्थिति में मध्यस्थता कर सकती है।

6. संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है, कि वह एक अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना करे।[1] इसके अर्न्तगत राज्यों के मध्य विवादों की जाँच करना, राज्यों की समान दिलचस्पी वाले मामले पर छानबीन करना, उपरोक्त विषयों विशेषकर इनसे संबधित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना राष्ट्रपति इस परिषद के संगठन एवं प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

7. एक अन्य महत्वपूर्ण तरीका अखिल भारतीय सेवायें हैं।

8. राज्यपाल एक प्रकार से केन्द्र के एजेण्ट के रुप में कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्र सरकार राज्यों पर नियंत्रण रखती है।

इसके अलावा ऐसे कई विषय हैं जिनका सम्बन्ध केन्द्र एवं राज्य दोनों से है, पर उनका निर्धारण केन्द्रीय सरकार करती है। जैसे– निर्वाचन, लेखा परीक्षण आदि।

संविधान के अनुच्छेद के अनुसार राज्य केन्द्र के निर्देश न माने तो राष्ट्रपति घोषणा कर सकता है कि संवैधानिक तंत्र विफल हो गया। ऐसा होने पर राज्य में आपात स्थिति लागू हो जाऐगी।[2]

अम्बेडकर ने विभिन्नताओं को लेकर कहा था "किसी सीमा तक यदि देश में विभिन्नता भी रहे, तो भी कोई बात नही है, यदि स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कानून एवं शासन के नियमों में कुछ विभिन्नता रहे, तो भी उसे सहन् किया जा सकता है, किन्तु जब विभिन्नता हद से गुजर जाती है तो इससे संघात्मक राज्यों में पूर्ण अव्यवस्था छा जाती है।"[3] इस प्रकार भारत में संघवाद के दोषों को दूर करने के लिये एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। डा0 अम्बेडकर सत्ता के

1. अनुच्छेद 263
2. अनुच्छेद - 356
3. कॉन्सटीट्यूऐन्ट असेम्बली डिबेट्स, वाल्यूम VII पृ0 - 36

विकेन्द्रीकरण के खिलाफ थे। उनका मानना था के भौगोलिक रुप से विशाल एवं विविधता वाले देश में प्रभावी शासन की स्थापना के लिये राज्यों के पास सत्ता का हस्ताँतरण जरुरी है, पर मजबूत एवं संगठित केन्द्र को अधिक अधिकार प्रदान किया जाना चाहिये।[1]

संघीय विचार को 1935 के अधिनियम में व्यवहारिक रुप प्रदान किया गया। अंग्रेज शासक केन्द्र में देशी रियासतों एवं प्रान्तों का संघ इसलिये स्थापित करना चाहते थे ताकि भारत में बढ़ते राष्ट्रवाद को रोका जा सके। देशी रियासतों को लोकतंत्र की प्रगति के मार्ग में एक प्रतिक्रियावादी शक्ति के रुप में कार्य करना था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस के विरोध के कारण ब्रिटिश सरकार ने केन्द्र में संघ को स्थापित करने का विचार छोड़ दिया था। केन्द्र में 1919 के अधिनियम के अनुसार ही शासन चलता रहा, परन्तु प्रान्तों को स्वायत्तता दे दी गई। जब भारत स्वतंत्र हो गया तो यह दूरदर्शिता समझी गई कि भारत में एकात्मक सरकार लागू न की जाय, वरन संघीय सरकार लागू की जाय, जिसका सभी ने स्वागत किया था।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को राज्यों का एक संयोग (यूनियन ऑफ स्टेट्स) कहा गया है न कि एक संघ, हालांकि भारत में संघात्मक सरकार स्थापित की गई है। संविधान का प्रारुप प्रस्तुत करते समय डा0 अम्बेडकर ने लिखा है "यह देखने योग्य बात है कि प्रारुप समिति ने संघ की बजाय संयोग शब्द का प्रयोग किया है। वैसे नाम में कुछ अधिक नही पड़ा है। परन्तु संविधान प्रारुप समिति ने इस बारे में ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम 1867 का अनुसरण करना अधिक उपयुक्त समझा, और उसने यह समझा कि चाहे भारत में संघात्मक

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 138

सरकार हो परन्तु उसको राज्यों का एक संयोग कहना उचित होगा।[1]

संविधान सभा के विचार के लिये 4 नवम्बर 1948 को संविधान का प्रारुप प्रस्तुत करते समय डा0 अम्बेडकर ने संघ की बजाय संयोग शब्द के प्रयोग पर प्रकाश डाला। डा0 अम्बेडकर ने कहा कि यह सत्य है कि दक्षिण अफ्रीका को एक संयोग (यूनियन) कहा गया है, हांलाकि वहां पर एकात्मक सरकार है। परन्तु कनाडा को भी एक यूनियन कहने की बजाय एक संयोग (यूनियन) कहने से किसी परमपरागत चलन या प्रयोग का कोई उल्लंघन नहीं होता, परन्तु महत्वपूर्ण बात है कि संयोग शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया गया। मैं नहीं जानता कि कनाडा के संविधान में संयोग शब्द का प्रयोग क्यों किया गया, परन्तु मैं यह बता सकता हूँ, कि प्रारुप समिति ने इसका प्रयोग क्यों किया है। प्रारुप समिति यह बात स्पष्ट कर देना चाहती थी कि यद्यपि भारत को संघ बनाना था, परन्तु यह संघ राज्यों के द्वारा संघ में शामिल होने के लिये किसी समझौते का परिणाम नहीं था, और किसी भी राज्य को इस समझौते से अलग होने का अधिकार नहीं है। संघ एक यूनियन हैं, क्योंकि यह अविनाशी है, यद्यपि देश एवं जनता को प्रशासन की सुविधा के लिये विभिन्न राज्यों में बांट दिया गया है, परन्तु देश एक अखण्ड एवं पूर्ण इकाई है।

इसके लोग एक ही स्त्रोत से निकली हुई परम सत्ता या प्रभुत्व के अधीन रह रहे हैं। प्रारुप समिति ने सोचा कि इस बात को शुरु में ही स्पष्ट कर देना उचित था, बजाय इसके कि इस बात को दूर की कल्पना या अटकलबाजी अथवा विवाद के लिये छोड़ा जाय।"[2] डा0 अम्बेडकर का यह भी कहना था कि "यह एक संघीय संविधान है, क्यों कि यह एक दुहरे शासन तंत्र की स्थापना करता है, जिसमें

---

1. प्रारुप संविधान — पृ0 - 4
2. कॉन्स्टीट्यूऐन्ट असेम्बली डिबेट्स, वॉल्यूम VII, — पृ0 - 43

केन्द्र में संघीय सरकार तथा उसके चारों ओर परिधि में राज्य सरकारें है, जो संविधान द्वारा निर्धारित निश्चित क्षेत्रों में सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करती है।"[1]

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि यह एक संघीय संविधान है। केन्द्र एवं राज्य दोनों का गठन संविधान द्वारा हुआ है, और दोनों की शक्ति एवं प्राधिकार का स्त्रोत संविधान है। अपने क्षेत्राधिकार में कोई किसी के अधीन नहीं हैं। एक का प्राधिकार दूसरे का पूरक है।[2] संघवाद का मुख्य गुण केन्द्र एवं राज्यों के बीच व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका की शक्तियों के वितरण में निहित होता है। हमारे संविधान में इसी गुण का निरुपण किया गया है। अतः यह कहना असत्य है कि राज्यों को केन्द्र के अधीन रखा गया है।[3]

इस प्रकार भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ–साथ संघवाद के स्वरुप में परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था में राजनीतिक तत्वों के बदलते परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन होता रहा है। यह क्रमशः केन्द्रीकृत संघवाद से सहयोगी संघवाद, एकात्मक संघवाद एवं वर्तमान में सौदेबाजी संघवाद में प्रवेश कर गया है। ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संघवाद को सहकारी संघवाद की संज्ञा दी है।[4] इसके विभिन्न कालों में विभिन्न रुप देखने को मिलते है। भारत में एक प्रकार का संघवाद नहीं है, अनेक प्रकार के संघवाद हैं। एक ही समय में अलग–अलग राज्यों से केन्द्र के अलग–अलग प्रकार के सम्बंध रहे। इन संबंधों की व्याख्या अलग–अलग नामों के आधार पर की जा सकती है, पर हर नाम एक साथ विद्यमान रहता है। कभी–कभी ऐतिहासिक या बाहरी घटनाओं के कारण इनमें से किसी एक की प्रमुखता इसे अन्य दो से अलग श्रेणी की बना देती है।

---

1. ग्रेनविल ऑस्टिन द्वारा उदृत, दी इडिण्यन कॉन्स्टीट्यूशन, पृ0 – 1881
2. डा0 पुखराज जैन एवं डा0 बी0एल0 फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति पृ0 – 91
3. वही, पृ0 – 91
4. ग्रेनविल आस्टिन, दि इण्डियन कांस्टीट्यूशन पृ0 – 1851

गणतंत्र :–

संविधान की प्रस्तावना संविधान के उद्देश्य का स्पष्ट शब्दों में घोषणा करती है, कि संविधान के अधीन सभी प्राधिकारों का स्त्रोत भारत के लोग हैं। किसी बाहरी प्राधिकारी के प्रति कोई आधीनता नहीं है। पाकिस्तान 1956 तक ब्रिटिश डोमिनियम बना रहा, किन्तु भारत डोमिनियम नहीं बना, उसने 1949 में संविधान की रचना के बाद स्वयं को गणराज्य घोषित किया। इसका अर्थ है जनता की, जनता के द्वारा जनता के लिये चुनी गई सरकार। हमारे राष्ट्र का प्रमुख निर्वाचित राष्ट्रपति और राष्ट्रपति सहित सभी पदों पर किसी भी नागरिक की नियुक्ति हो सकती है। ब्रिटेन जैसे कुछ लोकतांत्रिक राज्यों का प्रधान वंशानुगत राजा होता है, परन्तु भारत लोकतंत्रात्मक राज्य होने के साथ–साथ गणराज्य है। भारतीय राज्य का गणतंत्रात्मक स्वरुप इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत राज्य का सर्वोच्च प्राधिकारी वंशक्रमानुगत राजा न होकर भारतीय जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति है। जहां तक राष्ट्रमंडल का प्रश्न है, भारत की स्थिति वैधानिक रूप से अन्य उपनिवेशों की अपेक्षा अलग है। भारत का गणतंत्रात्मक स्वरूप राष्ट्रमंडल की सदस्यता से अप्रभावित है। श्री एम0 रामास्वामी कहते है "सम्राट राष्ट्रमंडल का प्रधान अवश्य है, किन्तु यह प्रधान पद केवल औपचारिक है। और इसका संवैधानिक महत्व प्रायः बिल्कुल नहीं है।"[1] डा0 अम्बेडकर इसे अधिक स्पष्ट करते हुये कहते है, प्रस्तावना यह स्पष्ट कर देती है, कि संविधान का आधार जनता है। और इनमे निहित प्राधिकार और प्रभुसत्ता सब जनता से प्राप्त हुई है।[2] इस प्रकार "हम लोग" शब्द का अभिप्राय यही है कि संविधान सभा ने भारत की जनता की ओर से ही संविधान बनाया एवं स्वीकृत किया।

---

1. डा0पुखराज जैन व डा0 बी0 एल0 फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीति पृ0 – 32
2. वही, पृ0 – 45

इस प्रकार हम देखते हैं कि संकीर्ण अर्थ में गणराज्य शब्द का प्रयोग राजतंत्र के विपरीत में किया गया है। उल्लेखनीय है कि कूले ने गणराज्य शासन प्रणाली को प्रतिनिधिक शासन प्रणाली से भिन्न माना है, गणराज्य शासन प्रणाली का अभिप्राय है, जनता द्वारा चुने प्रतिनिधियों का शासन। एक ओर तो उसका लोकतंत्र से भेद है– लोकतंत्र में जनता या समुदाय संगठित इकाई के रूप में शासन की प्रभुत्व शक्तियों का प्रयोग करते हैं– और दूसरी ओर व्यक्ति के शासन से, जैसे राजा, सम्राट, जार या सुल्तान के शासन से या व्यक्तियों के एक वर्ग के शासन से जैसे कि अभिजाततंत्र से।

व्यापक अर्थ में गणराज्य का अभिप्राय वह शासन है, जिसमें कोई भी व्यक्ति राजकीय शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं करता, मानो वह उसकी निजी सम्पति हो, वरन् राजकीय शक्ति का प्रयोग लोक मंगल के लक्ष्य को सामने रखकर किया जाता है।

इस प्रकार भारतीय संविधान की प्रस्तावना में गणराज्य का संकीर्ण एवं व्यापक दोनों अर्थो में प्रयोग किया गया है। देश में वंशानुगत राजा या कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग नहीं है। राष्ट्र के सभी पद छोटे से लेकर राष्ट्रपति तक सभी नागरिकों के लिये खुले है। भारतीय गणराज्य में उच्चतम शक्ति सार्वभौम वयस्क मताधिकार से सम्पन्न जन समुदाय में निहित है।

संसदीय प्रजातन्त्र :–

भारत की संविधान सभा में इस प्रश्न पर विस्तृत विचार विनिमय हुआ था, कि भारतीय लोकतन्त्र में किस प्रकार की शासन प्रणाली अपनायी जाये,

अध्यक्षीय शासन प्रणाली या संसदीय शासन प्रणाली। भारत के लोगों को 1919 एवं 1935 के भारतीय शासन अधिनियमों के अन्तर्गत संसदीय शासन का अनुभव था, और फिर अध्यक्षीय शासन प्रणाली में इस बात का डर था कि कहीं कार्यपालिका अपनी निश्चित पदावधि के कारण निरंकुश न हो जाय, इसलिये संविधान सभा ने काफी विचार विमर्श के बाद निर्णय किया कि भारत के लिये अमेरिका के समान अध्यक्षीय शासन प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश मंडल की संसदीय प्रणाली अधिक उपयुक्त रहेगी। संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी रहती है, एवं उसका विश्वास खो देने पर कायम नहीं रह सकती। भारतीय संविधान संसदात्मक शासन प्रणाली की स्थापना करता है।[1] संसदीय शासन प्रणाली आनुवांशिक शासनाधिकार नियम का निषेध करती है। इसमें कोई व्यक्ति आनुवंशिकता के आधार पर शासक बनने का दावा नहीं कर सकता। शासक को जनता के द्वारा अवश्य चुना गया होना चाहिये।[2]

डा0 अम्बेडकर प्रजातन्त्र के बारे में विचार व्यक्त करते हुये कहते है कि प्रजातान्त्रिक समाज वर्ण (जाति) के अनुसार स्तरों में विभाजन नहीं करता। सरकार समाज से पृथक नहीं होती वह मात्र उन बहुत सी संस्थाओं में से होती है, जिन्हें समाज अस्तित्व में लाता है, और जिस पर ऐसे कर्तव्यों को करने की जिम्मेदारी डालता है, जिनका किया जाना सामूहिक जीवन के लिये जरूरी होता है।[3] सर्वजन हित के लिये प्रजातंत्र राजनीतिक औषधि है। प्रजातंत्र में प्रजा का शासन होता है।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार प्रजातंत्र सरकार की एक प्रकिया है, जिसके द्वारा लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में बिना रक्तपात के क्रान्तिकारी

---

1. डा0 पुखराज जैन व बी0 एल0 फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृ0 - 34
2. एच0 एल0 पाण्डे0, गाँधी, नेहरु, टैगोर एवं अम्बेडकर, पृ0 - 155
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, हिन्दू धर्म की रिडल पृ0 - 95

परिवर्तन लाया जा सके। वॉयस ऑफ अमेरिका से प्रजातंत्र के बारे में विचार प्रसारित करते हुये डा0 अम्बेडकर ने कहा था, ''प्रजातंत्र सम्मिलित जीवन की एक प्रणाली है। प्रजातंत्र की जड़ उन लोगों के सामाजिक जीवन के मिश्रित संबंध में खोजनी होगी, जिन लोगों ने मिलकर प्रजातंत्र की स्थापना की है।[1] प्रजातांत्रिक समाज में ही प्रजातांत्रिक सरकार जन्म लेती है। सामाजिक वातावरण भी प्रजातांत्रिक होना चाहिये। लोगों की मानसिकता भी प्रजातांत्रिक होनी चाहिये। शोषणान्मुखी मानसिकता के साथ प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता।[2]

डा0 अम्बेडकर आर्थिक समानता को प्रजातंत्र का प्राण मानते थे एवं मात्र राजनीतिक प्रजांतंत्र को अपर्याप्त मानते थे। आम जनता की सुखसुविधा तो आर्थिक समानता से ही सम्भव है। डा0 अम्बेडकर समता, स्वतंत्रता एवं भाई–चारे को प्रजातंत्र के प्राण मानते थे, यह तीनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं, एक के अभाव में शेष दोनों का अन्त होना निश्चित है। उन्होंने लोगों के आर्थिक कल्याण को संसदीय प्रजातंत्र सहित राज्य समाजवाद के ढाँचे में परिलक्षित किया। व्यक्ति की स्वतंत्रता मात्र संसदीय प्रजातंत्र में ही सम्भव है।[3]

डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार संसदात्मक राज्य व्यवस्था से श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती हैं, क्योंकि इसमें योग्यता एवं सहयोग, आत्म सम्मान एवं आत्म सहायता, संयम एवं कर्तव्य के प्रति निष्ठा जैसे महान गुणों पर करोड़ों लोगों के कल्याण के लिये जोर दिया जाता है। इसकी व्यवस्था ठीक होने पर सभी के लिये समान अवसर प्राप्त होते हैं। संसदात्मक प्रजातंत्र में परिवर्तन एवं उत्तमता, निरंतरता एवं योग्यता को प्रमुख स्थान दिया जाता है। जनता की शुभ भावनायें एवं कर्तव्य परायणता ही प्रजातंत्र को सफल बनाने में भारी योगदान कर सकती है। व्यक्ति ने

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 111
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, हिन्दू धर्म की रिडल पृ0 – 95
3. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन पृ0 – 43

राज्य की रचना की है, अतः राज्य का कर्तव्य है कि वह व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा करे, एवं उसके सम्मान और गरिमा को बनाये रखें। उनके अनुसार लोकतंत्र की सफलता के लिये जरुरी है कि लोग सार्वजनिक महत्व के विषयों पर तर्क एवं निर्णय से काम लें।

प्रारम्भ में डा0 अम्बेडकर तानाशाही के पक्ष में थे, वे मानते थे कि सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में लोकताँत्रिक तरीके से परिवर्तन लाना कठिन है, इसके लिये कमाल पाशा या मुसोलिनी जैसे तानाशाह की भारत को जरुरत होगी। कालान्तर में डा0 अम्बेडकर के विचार परिवर्तित हो गये एवं उन्होंने लोकतंत्र का समर्थन किया। प्रजातंत्र विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करता है। वे यह भी मानते थे कि उत्पीड़न एवं विषमता की स्थिति में समाज में लोकतंत्र का प्रभावी होना कठिन है। वे लोकताँत्रिक भारत के साथ लोकताँत्रिक समाज चाहते थे, जिसमें स्वतंत्रता, समता एवं बन्धुता जीवन के आवश्यक अंग हों। लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता का अंत होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रजातंत्र समाजवाद एवं संसदीय प्रजातंत्र व्यवस्था मानव जीवन को सुविधाजनक बनाने के साधन हैं।

डा0 अम्बेडकर के विचार से लोकतंत्र वह है, जो आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था को शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक तरीके से बदलता है। 25 जुलाई 1927 को "बहिष्कृत भारत" के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा था कि जहाँ हर व्यक्ति पारस्परिक आचरण में अपने ही बराबर दूसरे को समझ कर दूसरे के साथ अपना सम्बन्ध रखता है, उसी को पूर्ण जनतंत्र कहा जाता है। संसदीय लोकतंत्र की सफलता

के लिये डा0 अम्बेडकर ने 22 दिसम्बर 1952 को निम्नलिखित शर्तें गिनाई थी।[1]

1. समाज में शोषित वर्ग एवं असमानता का अभाव होना चाहिये।
2. सरकारी भूलों को दिखाने वाले विरोधी पक्ष का अस्तित्व हो ।
3. न्याय एवं शासनतंत्र के सामने सभी व्यक्तियों की समानता हो।
4. संविधान की नीति एवं नियमों का पालन हो।
5. समाज में नैतिक व्यवस्था का पालन करना जरुरी हो।
6. सर्व जनता में नीर–क्षीर विवेक बुद्धि होना चाहिये।

वर्तमान में मूल्याँकन करने पर स्पष्ट होता है कि सांसदों एवं विधायकों के आचरण स्वार्थ केन्द्रित एवं निर्लज्ज हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नवीं लोकसभा की अंतिम बैठक में देखने को मिला, जब सांसदों ने सर्व सम्मति से पेंशन की दर में वृद्धि कर ली, एवं जिन परिस्थितियों में पेंशन नही मिलती थी, उनमें पेंशन का उपबन्ध कर लिया। यह सब तब किया जब उसका कुछ देर बाद विघटन होने जा रहा था। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान देना उचित नहीं समझा कि वित्तीय दायित्व डालने वाले विधेयक या संकल्प पुरः स्थापित करने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी है, बिना सिफारिश के ऐसा विधेयक पुरः स्थापित नहीं हो सकता।[2] संसदीय लोकतंत्र की एक अन्य असफलता बैलेट पर बुलेट का बढ़ता प्रभाव भी है।[3]

संशोधन प्रणाली –:

संविधान एक जीवंत एवं परिवर्तनशील आलेख है। देश और काल की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार संविधानों में परिवर्तन जरुरी हो जाता है। यद्यपि संविधान स्थिर नहीं होते है और यदि स्थिर हो जायें, तो उनमें और धर्म शास्त्रों में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। सुभाष काश्यप की धारणा महत्वपूर्ण है–

1. डा0 प्यारे लाल आदर्श, भारतीय संविधान पृ0 – 33
2. अनुच्छेद – 117 (1)
3. डा0 दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय पृ0 – 415

"संविधान ही राज्य के विभिन्न अंगों का गठन कर उसे शक्ति देता है, शरीर देता है, इस शरीर गठन और अंग व्यवस्था के पीछे राष्ट्र की राजनीतिक सामाजिक आस्थाओं, आकाँक्षाओं की प्रेरणा होती है। प्रत्येक नई पीढ़ी और नये युग के साथ कुछ नई चेतनाओं एवं प्रेरणाओं का जन्म होता है। किसी भी संविधान की महानता इसी में है, कि वह नष्ट हुये बिना बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं के अनुरुप ढाला जा सके। इसके लिये आवश्यक है कि संविधान में आन्तरिक दृढ़ता के साथ एक लोच या लचीलापन हो, एक सभ्यता और परिवर्तनशीलता हो।"[1]

हमारे संविधान निर्माताओं ने संशोधन प्रकिया की जो परिकल्पना की थी वह पंडित नेहरु के इस संप्रेक्षण के प्रति निर्देश से स्पष्ट की जा सकती है, कि संविधान इतना कठोर नहीं होना चाहिये, कि वह राष्ट्रीय विकास एवं सामर्थ्य की बदलती परिस्थितियों में समायोजित न की जा सके। संशोधन के लिये सरल प्रक्रिया अपनाने का राजनीतिक महत्व था। वह यह था कि यदि राजनीतिक प्रणाली को बदलने की मांग जनता करती है, और वह माँग विशाल रुप धारण कर लेती है, तो परिवर्तन करना सम्भव होना चाहिये। डा0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में संशोधन के प्रस्ताव को पेश करते हुये कहा था,"जो संविधान से असंतुष्ट हैं, उन्हें बस दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना होगा। यदि वे वयस्क मत के आधार पर नव–निर्वाचित ससंद में दो तिहाई बहुमत भी नहीं पा सकते है। तो यह समझा जाना चाहिये कि संविधान के प्रति असंतोष में जनता उनके साथ नहीं है।[2]

आज संविधान में संशोधन कई कारणों से आवश्यक हो जाते है–

1. संविधान लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है, स्वयं साध्य नहीं। वह समय और राज्य

---

1. डा0 सुभाष काश्यप, संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष पृ0 – 350
2. दुर्गादास बसु, भारत का संविधान एक परिचय पृ0 – 151

की आवश्यकताओं के अनुरुप होता है। वर्तमान समय जबकि विज्ञान ओर तकनीकी प्रगति ने मानव की आवश्यकताओं तथा उनकी सम्पूर्ति में एक क्रान्ति ला दी है, कोई संविधान कठोरता और स्थायित्व का दावा नहीं कर सकता कि वह परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल होने की क्षमता भी रखता है। पायली के शब्दों में "बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरुप होने के लिये संशोधन की अत्यधिक आवश्यकता है, नहीं तो क्रान्तिकारी सामाजिक उथल पुथल के परिणाम स्वरुप संविधान के अचानक ही समाप्त हो जाने की संभावना हो सकती है।"[1]

2. शान्तिपूर्ण और संवैधानिक उपायों से सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिये नये संवैधानिक संशोधनों द्वारा परम्परावादी मान्यतायें बदली जानी होगी।

3. संविधान के आदर्शो एवं ध्येयों को पूरा करने के लिये संविधान के उन उपबन्धों को संशोधित करना आवश्यक है, जो उनसे मेल नहीं खाते।

4. संविधान में यथोचित संशोधनों द्वारा कोई नई बात उनमें जोड़ी जा सकती है।

5. संविधान को जनता की इच्छाओं–आकाक्षांओं का प्रतिनिधित्व करना चाहिये, संविधान को वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तत्पर होना चाहिये।[2]

भारतीय संविधान अपने संशोधन प्रक्रिया के परिणाम स्वरुप कठोरता और लचीलेपन का सामंजस्य प्रस्तुत करता है, डा0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में आशा व्यक्त की थी, कि इस संविधान में नम्यता और अनम्यता की बुराइयाँ नहीं रहेंगी और लचीलापन भारत के संविधान की एक विशेषता मानी जायेगी। पं0 नेहरु ने भी कहा था कि, वह चाहते हैं कि संविधान को यथाशक्ति ठोस और स्थाई बनाये, किन्तु संविधान शाश्वत नहीं होता। उसमें कुछ नम्यता होती चाहिये। यदि

---

1. एम0 वी0 पायली, भारतीय संविधान विधान, पृ0 – 366

2. दिनमान – 1976 पृ0 – 01

संविधान को अनम्य और अपरिवर्तनीय बना दिया जाय, तो देश की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, और एक सजीव, क्रियाशील एवं सावयव राष्ट्र के हित में बाधा पड़ती है। जो भी हो, हमें कुछ बडे राष्ट्रों जैसा संविधान नहीं बनाना चाहिये, जो इतना अनम्य हो कि उसे आसानी से बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुरुप न ढाला जा सके।

संविधान निर्माता कठोर संविधान की कमियों को जानते थे। वे जानते थे, कि संविधान के स्थायित्व, स्थिरता तथा दृढ़ता का आधार उसकी स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने की क्षमता तथा आवश्यकतानुसार बदल सकने की योग्यता है। भारतीय संविधान में यह नम्यता है कि वह समाज के परिवर्तन के साथ चल सकता है, परन्तु यह नम्यता इतनी अधिक नही है कि संविधान के मूल आदर्श ही खत्म हो जायें। संविधान का मूल आधार है, जिसे नष्ट या परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

भारत का संविधान न तो इग्लैंड की तरह लचीला है, और न ही संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह कठोर है। भारतीय संविधान के निर्माता चाहते थे, कि संविधान इतना कठोर न हो, कि उसमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन न किया जा सके, और न ही इतना लचीला हो जाये, कि सत्तारूढ़ दल अपनी सुविधा के लिये इसमें बार–बार परिवर्तन कर सकें, अतः उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया।

संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन संविधान के भाग 20 अनुच्छेद 368 में किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार संविधान में संशोधन तीन प्रकार से हो सकता है – प्रथम, हमारे संविधान में कतिपय अशं ऐसे है, जिनको संसद केवल साधारण बहुमत से परिवर्तित कर सकती है। ऐसे उपबन्ध निम्नांकित है।

1. संसद को संविधान द्वारा यह अधिकार दिया गया हैं कि वह नये राज्यों को संघ में प्रविष्ट कर सके, सीमा परिवर्तन द्वारा नये राज्यों का निर्माण कर सके और तदनुसार प्रथम व चतुर्थ सूची में परिवर्तन कर सके।[1]

2. संसद में किसी अन्य व्यवस्था के होने तक राज्य के लिये कुछ सुनिश्चित शक्तियां निहित की गयी है।[2]

3. संसद की नई व्यवस्था के होने तक संसदीय गणपूर्ति का प्रावधान किया गया है।[3]

4. कुछ अनुच्छेद द्वितीय अनुसूची में परिवर्तन की अनुमति देते हैं।[4]

5. संसद द्वारा परिभाषित किये जाने पर संसदीय विशेषाधिकारों की व्यवस्था की गई है।[5]

6. संसद द्वारा पारित किये जाने पर संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों की व्यवस्था करता है।[6]

7. ऐसे अनुच्छेद को संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत किये जाने पर प्रक्रिया से सम्बन्धित विधि की व्यवस्था करता है।[7]

8. कुछ अनुच्छेद जो संसद द्वारा किसी नई व्यवस्था के न किये जाने पर 15 वर्षों के उपरान्त अग्रेंजी को संसदीय भाषा के रुप में छोड़ने की व्यवस्था करता है।[8]

9. यह व्यवस्था है कि संसद द्वारा किसी व्यवस्था के न होने तक सर्वोच्च न्यायालय में 7 न्यायाधीश होंगे।[9]

10. ऐसी व्यवस्था है कि संसद द्वारा नई व्यवस्था न किये जाने तक उच्च न्यायालय के

---

1. अनुच्छेद - 2, 3, 4
2. अनुच्छेद - 73 (2)
3. अनुच्छेद - 100 (3)
4. अनुच्छेद - 75, 97, 125, 148, 165(5) एवं 221(2)
5. अनुच्छेद - 105, (3)
6. अनुच्छेद - 106
7. अनुच्छेद - 118 (2)
8. अनुच्छेद - 120 (3)
9. अनुच्छेद - 124 (1)

एक न्यायाधीश के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को भेजी गयी अपील को रोकता है।[1]

11. संसद द्वारा किसी अन्य व्यवस्था के न किये जाने तक सर्वोच्च न्यायालय के लिये एक सुनिश्चित अधिकार क्षेत्र नियत किया गया है।[2]

12. कुछ शर्तो के साथ विधान परिषदों को भंग करने की व्यवस्था की गई है।[3]

दूसरी श्रेणी में संविधान के वे प्रावधान है, जो संघ और राज्य दोनों के विषय से सम्बन्धित है। इसमें संशोधन विधेयक को दो चरणों को पार करना होता है। पहले संशोधन विधेयक को किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। विधेयक को प्रत्येक सदन में, सदन की कुल संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मतदान में हिस्सा लेने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित किया जाना जरुरी है। दूसरे संसद द्वारा उपर्युक्त प्रक्रियानुसार जब विधेयक पारित हो जाता है, तो वह दूसरे चरण में प्रवेश करता है, जिसमें उक्त संशोधन विधेयक को संघ के राज्यों में से कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा स्वीकृति मिलनी चाहिये। उसके बाद राष्ट्रपति की सहमति से संसद में आवश्यक संशोधन लागू होगा। संविधान संशोधन की यह प्रक्रिया इन विभिन्न साधनों के लिये आवश्यक है।

जो निम्न विषयों से सम्बन्धित है –

1. राष्ट्रपति का निर्वाचन[4]
2. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रणाली[5]
3. संघ की कार्यपालिका शक्ति की सीमा[6]
4. संघ के राज्यों की कार्यपालिका शक्ति की सीमा[7]

---

1. अनुच्छेद – 133 (3)
2. अनुच्छेद – 135
3. अनुच्छेद – 169 (1)
4. अनुच्छेद – 54
5. अनुच्छेद – 55
6. अनुच्छेद – 72
7. अनुच्छेद – 162

5. केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के लिये उच्च न्यायालय[1]

6. संघ की न्यायपालिका[2]

7. राज्यों के उच्च न्यायालय[3]

8. संघ और राज्यों के विधायी सम्बन्ध[4]

9. संविधान में संशोधन प्रक्रिया[5]

तृतीय श्रेणी में संविधान के अन्य समस्त उपबन्ध रखे जा सकते है, जो उपर्युक्त दो श्रेणियों में नहीं हैं। इनको संशोधित करने के लिये संसद के किसी सदन में विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है। संसद के प्रत्येक विधेयक को सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में हिस्सा लेने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित किया जाना आवश्यक है। उसके बाद राष्ट्रपति की सहमति मिलने पर विधेयक पारित माना जायेगा और संविधान में आवश्यक संशोधन लागू होगा।

संशोधन प्रक्रिया की एक अस्पष्टता का निराकरण :–

24 वें संवैधानिक संशोधन (1971) द्वारा संशोधन प्रक्रिया की एक अस्पष्टता को दूर कर दिया गया है। इस संवैधानिक संशोधन में विधेयक संसद के दोनों सदनों से पारित होकर राष्ट्रपति के समक्ष उनकी अनुमति के लिये रखा जाए, तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी अनुमति दे देनी होगी।

संविधान संशोधन की शक्ति प्रदान करने वाले अनुच्छेद 368 से यह स्पष्ट होता है कि संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार संसद में निहित है और

---

1. अनुच्छेद – 241
2. भाग 5 का अध्याय 4
3. भाग 6 का अध्याय 5
4. भाग 11 का अध्याय 1
5. अनुच्छेद – 368

संशोधन के लिये अलग संस्था के गठन की आवश्यकता नहीं है। राज्यों के विधान मण्डल संशोधन सम्बन्धी विधेयक का प्रस्तुतीकरण नहीं कर सकते। संशोधन का प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में रखा जा सकता है। संशोधन सम्बन्धी विधेयक उसी प्रकार पारित होने चाहिये, जिस प्रकार अन्य विधेयक। संविधान संशोधन सम्बन्धी विधेयकों का जनता के द्वारा पुष्टिकरण नहीं होता। संसद में संशोधन सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत करने के लिये राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य नहीं है। संविधान के प्रत्येक अंश में संशोधन किया जा सकता है।

भारत में संविधान की संशोधन प्रक्रिया सन्तुलित है। यह न तो अधिक जटिल है और न एकदम लचीली इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर संविधान में संशोधन होते रहेंगे क्योंकि हमारा संविधान कोई निर्जीव प्रलेख मात्र नहीं है। किसी भी जीवित संविधान के लिये यह जरुरी है कि वह समय के साथ कदम मिलाकर चल सके। डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार संविधान में संशोधन की इससे ज्यादा सरल प्रणाली के बारे में सोचना बहुत दुष्कर होगा। डा0 अम्बेडकर ने कहा था, "मैं अनुभव करता हूँ, कि यह संविधान व्यवहारिक है, लचीला है, इसमें शांतिकाल एवं युद्धकाल में देश की एकता बनाए रखने की सामर्थ्य है।"[1]

2. संविधान के आरक्षण सम्बन्धी उपबन्ध :—

आरक्षण के प्रश्न पर प्रारुप समिति में पर्याप्त विवाद हुआ था। अम्बेडकर ने स्वीकार किया था कि आरक्षण गलत चीज है, किन्तु भारत की परिस्थितियों में सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिये

1. संविधान निर्मात्री सभा वाद विवाद, खण्ड - XI पृ0 - 972-81

आवश्यक है। वे मानते थे कि हिन्दुस्तान की गरीबी जातिगत है, इसलिये अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को आरक्षण की सुविधा देना आवश्यक है। कुछ लोगों का विचार था कि आरक्षण से लोकतंत्र अमर्यादित होगा, एवं समानता के सिद्धान्त का मखौल उड़ेगा, इसलिये संविधान में विकल्प स्वरुप कुछ ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिये, कि कमजोर वर्ग के लोगों को प्रगति के लिये सुअवसर उपलब्ध हो सके।[1]

डा0 अम्बेडकर ने केन्द्रीय सरकार में एक्जीक्यूटिव काउंसलर बनते ही 1943 में अनुसूचित जातियों के लिये, सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की थी। 1946 में त्यागपत्र देने के पूर्व उन्होंने इसे, साढ़े आठ प्रतिशत से बढ़ाकर साढ़े बारह प्रतिशत (केन्द्रीय सेवाओं में) करा दिया था।

आरक्षण के दो रुप हैं। (क). राजनीतिक आरक्षण (ख) सरकारी सेवाओं में आरक्षण। देखा जाय तो कम्यूनल अवार्ड भी एक प्रकार से आरक्षण का मुद्दा था। आरक्षण की अवधारणा के पीछे स्पष्ट उद्देश्य था कि आरक्षित वर्ग के सभी समुदाय इसकी छत्रछाया में समान रुप से फलें–फूलें एवं विकसित हों।[2] वर्तमान में दलित वर्ग में भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग पैदा हो गया है, जो समस्त सुविधाओं को सोख रहा है।

आजादी के तुरन्त बाद 1953 में काका कालेलकर आयोग गठित किया गया, इसने तीन वर्ष तक देश में विसंगतियों का अध्ययन किया एवं पाया कि विभिन्न जातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में काफी फर्क है। इस फर्क की दृष्टि से दलितों एवं पिछड़ों को आरक्षण की सुविधा मिलनी चाहिये।

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरु, टैगोर और अम्बेडकर पृ0 – 140
2. सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0 प्र0, सामाजिक न्याय की नई पहल पृ0 – 03

आरक्षित वर्ग के लिये आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान संविधान में ही कर दिया गया था, ताकि इस सम्बन्ध में केन्द्र एवं राज्य सरकारों में स्पष्टता बनी रहे, तथा इन वर्गों को यथा शीघ्र समुचित लाभ दिलाया जा सके। लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने एवं इसके सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता एवं व्यक्ति की गरिमा बढ़ाने के लिये विशेष रुप से प्रावधान किये गये, ताकि उन वर्गों के हितों को ठेस न पहुँचे, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षिक रुप से पिछड़े होने के कारण अथवा संख्यात्मक रूप से सीमित होने के कारण अपना पक्ष सबल रुप से प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

संविधान में सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिये, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये विशेष अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई, ताकि वह धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान की भिन्नता के बावजूद भी समानता का लाभ प्राप्त कर सके।[1] यह व्यवस्था भी की गई कि पिछड़े हुये नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में, राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, की नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिये विशेष उपबन्ध किये जा सकतें है, ताकि लोक नियोजन के विषय में उन्हें अवसर की समानता प्राप्त हो सके।[2]

अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के विशिष्टतया अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की शिक्षा एवं अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिव्यक्ति करेगा, और सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।

---

1. अनुच्छेद - 15 (4)
2. अनुच्छेद - 16 (4)

लोक सभा में अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों के लिये स्थान आरक्षित किया गया है।[1] राज्यों की विधान सभा में अनुसूचित जाति–जनजातियों के आरक्षण की व्यवस्था की गई है।[2] 50 वर्ष बाद आरक्षण विशेष प्रतिनिधित्व न रहने की व्यवस्था।[3] सेवाओं एवं पदों के लिये अनुसूचित जाति–जनजाति के दावों का प्रावधान भी किया गया।[4] अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन एवं अनुसूचित जातियों के कल्याण के बारे में संघ का नियंत्रण है।[5] पिछड़े वर्गों की दशा के अन्वेषण के लिये आयोग की नियुक्ति के सम्बन्ध में अनुच्छेद है।[6] अनुसूचित जातियों की दशाओं के अन्वेषण हेतु आयोग का प्रावधान किया गया है।[7] अनुसूचित जन जातियों के सम्बन्ध में भी प्रावधान किया गया है।[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शोषित वर्गों की समता के लिये किये गये सभी कदमों की क्षमता मामले के अनुसार देश या प्रदेश में प्रचलित राज्यादेश पर आधारित है। कानून और व्यवस्था में कमी का सबसे अधिक प्रभाव कमजोर वर्ग पर ही पड़ता है। ऐसे समुचित कदम उठाये जाने चाहिये, जिससे आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान उचित ढंग से लागू हो सकें सरकार को भी उन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की मदद करनी चाहिये, जो सामाजिक विषमता के विरुद्ध संघर्ष कर रहे है, और दलित वर्ग एवं गणतंत्र के नागरिकों में अधिकार के प्रति चेतना का प्रसार कर रहे हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में डा0 अम्बेडकर की कल्पना यह थी कि इसकी पूरी जिम्मेदारी लोकतांत्रिक जनमत के नेताओं और नागरिकों पर है। वे नागरिक अधिकार

---

1. अनुच्छेद – 330
2. अनुच्छेद – 332
3. अनुच्छेद – 334
4. अनुच्छेद – 335
5. अनुच्छेद – 339
6. अनुच्छेद – 340
7. अनुच्छेद – 341
8. अनुच्छेद – 342

जनआंदोलन को राज्य का पूरक बनाना चाहते थे। वे भारतीय संविधान के माध्यम से विषमता समाप्त करना चाहते थे। उनका विचार था कि कोई वर्ग किसी का अधिकार न छीने।[1]

3. मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रावधान :–

किसी राज्य के स्वरुप का अनुमान उन अधिकारों द्वारा होता है, जो राज्य किसी विशेष काल में अपने नागरिकों को प्रदान करता है।[2] मूल अधिकार ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण और राजनीतिक अधिकार होते हैं, जिन को राज्य अपने संविधान में उल्लेख करते हैं अधिकारों को मूल अधिकार से अलग इसलिये कहा जाता है, कि विधान मंडल साधारण अधिकारों की तरह साधारण विधि प्रक्रिया द्वारा मूल अधिकारों को सरलता पूर्वक नही बदल सकता। मूल अधिकारों का आश्वासन देश की मूल विधि देती है। इसलिये विधायिका कार्यपालिका या न्यायपालिका इनकी आसानी से अवहेलना नहीं कर सकती, ऐसा प्रत्येक कार्य अमान्य ठहराया जायेगा।

मानव के मूल अधिकारों का विचार विभिन्न कालों में व्यक्त हुआ है। व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या के सन्दर्भ में गानव के मूल अधिकारों की धारणा इतिहास के ताने–बाने में बनी हुई दिखाई पड़ती है। मूल अधिकारों की धारणा का आधार बिन्दु है। व्यक्ति के ऊपर राज्य की सत्ता की कुछ सीमायें। यह विचार बीज रुप में रोम और यूनान के राजनीतिक दर्शन में प्राप्त होता है। इसके सूत्र प्राचीन भारत के राजनीतिक सिद्धान्त और व्यवहार में मिलते है। भारत में ईसा की दूसरी शताब्दी से भी काफी समय पहले सार्वभौम प्राकृतिक विधि की धारणा विकसित हो गयी थी। ऐसे कई उदाहरण हैं कि नरेशों द्वारा इसका पालन न

---

1. डा0 प्यारेलाल आदर्श, भारतीय संविधान पृ0 – 32
2. एच0 जे0 जास्की

करने पर उन्हें राजपद से हटाया जा सकता था। जैसे राजा वेण को हटाया गया था।[1] प्राचीन भारत में राजा के निर्वाचन के उदाहरण भी मिलते हैं। निर्वाचित राजा नीतिशास्त्र के अनुसार आचरण करने की शपथ लेता था। राज्याभिषेक के समय भी राजदण्ड पर लोकदण्ड (धर्मदण्ड) की प्रधानता पारम्परिक रुप से दिखलाई पड़ती है। यद्यपि आधुनिक संविधानों द्वारा प्रदत्त कुछ अधिकार किसी न किसी रुप में प्राचीन भारतीय राज्य में पाये जाते थे, पर परम्परा से भारत में अधिकारों की तुलना में कर्तव्यों पर अधिक बल दिया जाता है। इसलिये प्राचीन भारत में कर्तव्यों से अलग अधिकारों की कोई स्वतंत्र संकल्पना विकसित न हो सकी।

इंग्लैण्ड में मूल अधिकारों के विचार की जड़े मैग्नाकार्टा के समय तक गहरी हैं। 1215 में इग्लैण्ड के कुलीनों ने राजा जॉन से करारोपण आदि के सम्बन्ध में जो रियायतें प्राप्त की थी वही मैग्नाकार्टा की संज्ञा से प्रसिद्ध है, और उन्हें इग्लैंड में मूल अधिकारों का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है, इग्लैण्ड में संसद की विधायी प्रभुसत्ता की धारणा तथा सामान्य विधि की प्रविधि मूल अधिकारों की किसी स्थायी और औपचारिक घोषणा के प्रतिकूल पड़ती है, अतः ब्रिटिश नागरिकों की स्वतंत्रता का आश्वासन लोगों की सद्भावना में तथा वहां की प्रतिनिधिक और उत्तरदायी शासन की व्यवस्था में है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के पहले दस संशोधनों ने नागरिकों के मूल अधिकारों की घोषणा की है। 1789 में फ्रांस की राष्ट्रीय सभा ने मानव अधिकारों की घोषणा की और 1791 के फ्रांसीसी संविधान में इन अधिकारों को स्थान दिया गया। आधुनिक राज्यों की एवं भारत की संविधानिक विधि में मानव के

---

1. अनंत सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति पृ0 - 67

आधारभूत अधिकारों की शुरूआत यहीं से मानी जा सकती है। इसके बाद से मूल अधिकारों का स्थान लगभग तय हो गया। 19वीं शताब्दी में मूल अधिकार अनेक राज्यों की विधि के भाग बने। 20वीं शताब्दी में खासतौर पर अधिकारों की घोषणा संविधान निर्माण का एक सामान्य अंग बन गयी और द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् संसार के अनेक संविधानों में मूल अधिकारों का समावेश महत्वपूर्ण माना गया।

भारत के संविधान में मूल अधिकारों सम्बन्धी अध्याय का समावेश समसामायिक लोकतन्त्रात्मक चिन्तन के सर्वथा अनुकूल था, साथ ही यह भारत में चल रहे दलितों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाने के लिये भी जरूरी था। डा0 अम्बेडकर ने सामान्य नागरिकों एवं दलितों को मान–सम्मान का अहसास कराया और उन्हें सम्प्रेरित किया कि वे शिक्षा संगठन और जन आन्दोलन के माध्यम से क्रांति लायें।[1] मौलिक अधिकार संबंधी इस विचार की जड़ें 20 शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में जन्मे और पनपे भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में व्याप्त थी। भारत में अंग्रेजी शासन की निरंकुशता की प्रतिक्रिया स्वरुप स्वातन्त्र्य आन्दोलन के नेताओं ने प्रारम्भ से ही मूल अधिकारों पर बल दिया था। दैहिक स्वतंत्रता, जीवन रक्षा, नेकनामी बनाये रखने के अधिकार कुछ ऐसे अधिकार थे, जिन्हें ब्रिटिश संसद ने भारतीय संविधान एवं शासन के सन्दर्भ में मान्यता दे दी थी। 1833 के चार्टर की धारा 87 में कहा गया था कि "ब्रिटिश भारत के किसी भी मूल निवासी को केवल धर्म, जन्मस्थान, वशं, रंग या इनमें से किसी के आधार पर कम्पनी के अधीन कोई स्थान पद या नौकरी ग्रहण करने से नहीं रोका जा सकता है। पर स्वतंत्रता से पूर्व ऐसे अधिकार मात्र कागज पर थे,। मूल अधिकारों का कोई घोषणा पत्र नहीं था, जो न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित हो सकें।

---

1. डा0 प्यारेलाल आदर्श, भारतीय संविधान पृ0 – 30

ब्रिटिश संसद या भारतीय विधानमंडलों द्वारा निर्मित विभिन्न संविधियों में जो मूल अधिकार थे, उन्हें संविधि का निर्माण करने वाली सत्ता वापस ले सकती थी। इसके अतिरिक्त भारत में कुछ ऐसी विधियां भी विद्यमान थीं जो विशेष न्यायालयों की स्थापना करके या प्रजाजनों की स्वतंत्रता या अधिकारों में कमी करके मूल अधिकारों का उल्लंघन कर सकतीं थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने इस बात पर अधिकाधिक जोर दिया कि भारतीयों के मूल अधिकारों की संविधानिक गारन्टी होना चाहिये।

1895 में श्री मती बेसेन्ट द्वारा प्रवर्तित भारतीय संविधान विधेयक या होमरुल बिल विधेयक में भारत के लिये एक ऐसे संविधान की कल्पना की गई थीं जिसमें भारत के प्रत्येक नागरिक को व्यक्ति, स्वातंन्त्र्य, घर की अलंध्यता, सम्पत्ति अधिकार विधि के समक्ष समता तथा सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समता के दावों, याचिकाओं एवं शिकायतों को प्रस्तुत करने का अधिकार एवं शरीर की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हो। 1918 में माण्टफोर्ड प्रतिवेदन के प्रकाशन के उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अगस्त 1918 में बम्बई में एक विशेष अधिवेशन हुआ। जिसमें उसने माँग की कि नए भारतीय संविधान में ब्रिटिश नागरिकों के रुप में भारतीयों के अधिकारों की घोषणा होना चाहिये। प्रस्तावित घोषणा में अन्य बातों के साथ–साथ विधि के समक्ष समानता जीवन एवं सम्पति की रक्षा विधि के समक्ष समानता, जीवन एवं सम्पति की रक्षा, भाषण एवं समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा संघ बनाने का अधिकार सम्मिलित होना था। 1927 में नेहरु समिति ने भारतीय नागरिकों के लिये वैयक्तिक स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, विधि के समक्ष

समता आदि मूल अधिकारों की माँग की थी। साइमन कमीशन ने संविधान अधिनियम में मूल अधिकारों का अश्वासन देना व्यर्थ समझा।

यद्यपि काँग्रेस एवं भारतीय नेता इस बात पर बराबर जोर देते रहे कि भारत की भावी संविधानिक संरचना में मूल अधिकारों का आश्वासन आवश्यक होगा। भारतीय शासन अधिनियम 1935 ने भारत की ब्रिटिश प्रजा को कुछ अधिकार प्रदान किये और यह भी निर्धारित किया कि उसे निम्न रुपों में संरक्षण प्राप्त हो सकता है।

1. कोई भी व्यक्ति भारत में राजमुकुट के अधीन किसी भी असैनिक पद पर नियुक्त किया जा सकता है। इसका अपवाद केवल वह नौकरी या पद होगा, जिसे गवर्नर जनरल, गवर्नर का भारत मंत्री ने आदेश द्वारा विशेष रुप से निर्धारित कर दिया हो (धारा–275)।

2. भारत में अधिवासित कोई भी ब्रिटिश प्रजाजन भारत में राजमुकुट के अधीन किसी पद के लिये अपात्र न होगा। उसे धर्म, जन्म, वंश आदि के आधार पर कोई कारोबार, वाणिज्य व्यापार या वृत्ति करने से वंचित नहीं किया जायेगा (धारा–298)।

3. "ब्रिटिश भारत में कोई भी व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। (धारा–298)।

1946 में ब्रिटिश मंत्री मिशन ने इस बात को स्वीकार किया कि भारत के संविधान में मूल अधिकारों का आश्वासन जरुरी है।

अधिकार एवं कर्तव्य के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। अधिकार से समाज के अन्तर्गत व्यक्ति मजबूत होता है, और कर्तव्य से मर्यादित। अधिकार का भी

महत्व तभी है, जब समाज में विवेक हो। व्यवस्था शून्य, पक्षपात पूर्ण समाज में अधिकार का कोई महत्व नहीं रह जाता है। अधिकार के सम्बन्ध में डा0 अम्बेडकर ने विवेक सम्मत समाज पर भी बल दिया है। डा0 अम्बेडकर कहते है, ''अधिकारों की रक्षा कानून से नहीं वरन् समाज के सामाजिक एवं नैतिक विवेक से होती है। यदि सामाजिक विवेक इस प्रकार का हो, जो कानून द्वारा बनाये गये अधिकारों को मान्यता देने को तैयार हो, तब अधिकार सुरक्षित एवं दृढ़ रहता है। जब समुदाय द्वारा अधिकारों का विरोध किया जाता है, तब कोई कानून कोई संसद कोई न्यायपालिका अधिकारों का सही मायने में रक्षा नहीं कर सकती। अमेरिका में नीग्रो को, अधिकारों का क्या प्रयोजन है।''[1] वे इसे स्पष्ट करते हुये कहते हैं, कि कानून सम्पूर्ण जन समूह को जो कानून का उल्लधंन करने पर आमादा हो, दण्डित नहीं कर सकता।

डा0 अम्बेडकर ने मूल अधिकारों सम्बन्धी भाग को सर्वाधिक आलोचित भाग कहा था।[2] संविधान ने मूल अधिकारों की सात श्रेणियाँ स्वीकार की थी। भारतीय संविधान में उल्लिखित मूल अधिकारों की सूची संसार के अन्य किसी संविधान की सूची से अधिक लम्बी एवं विस्तृत है। संविधान ने मूल अधिकारों की मर्यादाओं एवं प्रतिबन्धों का भी उल्लेख किया है। कुछ अधिकारों के द्वारा राज्य की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाये जाते है। जैसे राज्य को कहा गया है कि वह नागरिकों को सेना या विद्या सम्बन्धी उपाधि के अलावा अन्य कोई उपाधि नही देगा।[3] इस प्रकार उपरोक्त अनुच्छेद से नागरिक को कोई मूल अधिकार नहीं मिलता अम्बेडकर के सपनों के अनुरूप अस्पृश्यता का अन्त किया गया।[4] यह राज्य के लिये कोई निषेधाज्ञा नहीं हैं, इसमें सामाजिक कुरीति को दूर किया गया है। इसे भी एक नकारात्मक अधिकार

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 - 01
2. डा0 पुखराज जैन व डा0 बी0 एल0 फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति पृ0 - 163
3. अनुच्छेद - 18
4. अनुच्छेद - 17

मानना चाहिये। नागरिक इन मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये न्यायालय की शरण ले सकते हैं। यद्यपि अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हैं, पर इस सम्बन्ध में मुख्य तथ्य यह है कि अधिकार ही मुख्य है।अधिकारों के प्रतिबन्ध नहीं, जिससे मूल अधिकारों पर चोट पहुँचती हो।

डा0 अम्बेडकर अन्याय, उत्पीड़न एवं अत्याचार से घृणा करते थे एवं उन लोगों को नापसंद करते थे जो इसको प्रयोग में लाते थे।[1] डा0 अम्बेडकर मूल अधिकारों को बढ़ावा देने के लिये स्वतंत्र न्यायपालिका के न केवल पक्षधर थे, वरन् न्यायपालिका को व्यापक अधिकार देना चाहते थे।

संविधान में मूल अधिकारों की चर्चा करते समय डा0 अम्बेडकर द्वारा रचित "राज्य एवं अल्प संख्यक दलित" पुस्तक की चर्चा करना समीचीन रहेगा इसमें उन्होंने नागरिकों के संरक्षण के लिये निम्न प्रकार से व्यवस्था की थी।[2]

"अनुच्छेद II अनुभाग I – नागरिकों के मौलिक अधिकार"

1– सभी व्यक्ति जो, संयुक्त राज्य भारत या उस राज्य जिसमें वे निवास करते हैं, में जन्में अथवा इन राज्यों में नैसर्गीकृत हैं, वे इसके नागरिक हैं। उनके स्तर, जन्म, व्यक्ति, परिवार, धर्म या धार्मिक प्रथा और रुढ़िजन्य सभी विशेष अधिकारों या अयोग्यताओं को समाप्त किया जाता है।

2– कोई भी राज्य ऐसे कानून या रुढ़ि को न तो बनायेगा न उसे लागू करेगा, जो नागरिकों के विशेषाधिकारों या उन्मुक्तियों को परिसीमित करता हो, और न कोई राज्य व्यक्ति को उसके जीवन स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति से कानून की सम्यक प्रक्रिया

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 01

2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 – 20

अपनाये बिना, वंचित ही करेगा। न कोई राज्य अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत किसी को कानून के समान संरक्षण से वंचित करेगा।

3– कानून के सामने सभी नागरिक समान हैं और सभी के समान नागरिक अधिकार हैं। कोई अस्तित्वमान अधिनियम, विनियम, आदेश, रूढ़ि अथवा कानून की व्याख्या जिस के द्वारा कोई जुर्माना, अहित या अयोग्यता अथवा कोई भेदभाव थोपा जाता है, जिस दिन से यह संविधान लागू होगा उसी दिन से, उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा।

4– सामाजिक स्थिति के विभेद का ख्याल किये बिना और सभी वर्गों के व्यक्तियों पर लागू होने वाले कानून के कारणों के अलावा, यदि कोई किसी व्यक्ति को आवासों, हितों, सुविधाओं तथा अधिकारों के लिहाज से सरायों, धर्मशालाओं, शैक्षिक संस्थानों, पथों, रास्तों, कुओं, तालाबों और अन्य जलधारक स्थानों, सार्वजनिक सड़क परिवहनों, हवाई परिवहनों अथवा जल परिवहनों, रंगशालाओं या मनोरंजन स्थलों के उपभोग से वंचित करता है तो वह अपराध का दोषी होगा, फिर भले ही ऐसे स्थान जनसामान्य को समर्पित, उनके द्वारा पोषित या उनके लिये अधिकार पत्रित हों।

5– आम जनता द्वारा पोषित अथवा आम जनता के लिये निर्दिष्ट सभी संस्थानों, सहूलियतों और सुख साधनों पर सभी नागरिकों का समान अधिकार होगा।

6– किसी नागरिक को सार्वजनिक पद धारण करने या व्यापार करने अथवा जीविका चलाने में उसके धर्म, जाति, पंथ, लिंग या सामाजिक स्तर के कारण अयोग्य नहीं बनाया जायेगा।

7– (I) प्रत्येक नागरिक के भारत के किसी भी भाग में निवास करने का अधिकार है। सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता के कारणों को छोड़कर अन्य किसी प्रकार का ऐसा

कोई कानून नहीं बनाया जायेगा जो किसी नागरिक के निवास के अधिकारों में कटौती करता हो।

(II) प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भाग में बसने का अधिकार है, बशर्ते कि वह अपने मूल राज्य की नागरिकता का प्रमाण पत्र प्रस्तुत कर दें। उपखण्ड (IV) में वर्णित आधारों को छोड़कर किसी के बसने की आज्ञा न तो वापिस ली जायेगी और न आज्ञा देने से इन्कार ही किया जायेगा।

(III) कोई राज्य ऐसे नागरिक पर जो उसमें बसने का इच्छुक है, ऐसा कोई विशेष अधिभार नहीं थोपेगा जो स्वयं उस राज्य के अपने निवासियों पर लागू अधिभार के अतिरिक्त हो निवास की व्यवस्था के निमित्त परिमट के अधिकतम शुल्क का निर्धारण संघीय विधायिका द्वारा निर्मित कानून द्वारा किया जायेगा।

(IV) राज्य द्वारा निम्न व्यक्तियों से आज्ञा वापस ली जा सकती है, अथवा नामंजूर की जा सकती है –

(क) जो अभ्यस्त अपराधी रहे हों,

(ख) जिनके बसने का इरादा उस राज्य के साम्प्रदायिक सन्तुलन को बदलने का हो,

(ग) जो उस राज्य को सन्तोषजनक रूप से यह प्रमाणित नहीं कर पाते है जिस राज्य में वे बसना चाहते है उसमें सुनिश्चित जीवन निर्वाह के संसाधन उनके पास है और जिनके सार्वजनिक दान खैरात पर एक स्थाई बोझ बनने की संभावना है या बोझ बन चुके हैं।

(घ) जिन व्यक्तियों का मूल राज्य याचना करने पर उनके लिये पर्याप्त सहायता देने से इन्कार कर देता है।

(V) बसने की आज्ञा ऐसे प्रार्थी के लिये सशर्त बनायी जा सकती है जो काम करने के लिये सक्षम है और जो अपने मूल स्थान पर सार्वजनिक दान खैरात पर स्थाई बोझ नही बना और जो बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा में सक्षम है।

(VI) प्रत्येक निष्कासन संघीय सरकार द्वारा अवश्य पुष्ट होना चाहिये।

(VII) संघीय विधायिका बसने तथा निवास के बीच अन्तर को परिभाषित करेगी, साथ ही साथ व्यक्तियों के निवास के दौरान नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों को शासित करने वाले विनियमों को निर्धारित करेगी।

8– संघीय सरकार किसी समुदाय को अत्याचार और भारत के किसी भी भाग में आन्तरिक अव्यवस्था या हिंसा के विरुद्ध सुरक्षा की गारंटी प्रदान करेगी।

9– किसी व्यक्ति को बलात् मजदूरी या अनैच्छिक दासता के लिये बाध्य करना एक अपराध होगा।

10– व्यक्तिगत जीवन की सुरक्षा के अधिकार तथा मकानों, कागजातों तथा मालमता की अकारण तलाशियों एवं जब्तियों से सुरक्षित रहने के व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लघंन नहीं किया जायेगा और शपथ या आत्म स्वीकृति द्वारा पुष्ट किसी संभव कारण को छोड़कर कोई वारंट विशेषकर किसी स्थान की तलाशी और किन्हीं वस्तुओं और व्यक्तियों का अधिग्रहण निर्दिष्ट करने वाला कोई वारंट जारी नहीं किया जायेगा।

11– नाबालिग होने, कारावास होने तथा विक्षिप्त अवस्था के कारणों को छोड़कर किसी नागरिक को न तो मताधिकार से वंचित किया जायेगा और न उसमें कटौती ही की जायेगी।

12– व्यवस्था तथा नैतिकता के कारणों के अलावा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की

स्वतंत्रता, सम्मेलन और संगठन की स्वतंत्रता के अधिकार को सीमित करने वाले किसी कानून को नही बनाया जायेगा।

13— नागरिक अधिकारों को संकुचित करने वाला अथवा भूतकाल के कार्य के प्रभाव वाला कोई कानून पारित नहीं किया जायेगा।

14— लोक व्यवस्था और नैतिकता की सीमाओं के अन्दर प्रत्येक भारतीय नागरिक को अन्तः करण की स्वतंत्रता और प्रचार करने, धर्म परिवर्तन करने के अधिकार सहित अपने धर्म को अबाध रुप से मानने की स्वतंत्रता की राज्य गारंटी देगा।

15— किसी भी व्यक्ति को किसी भी धार्मिक संगठन बनने किसी धार्मिक संगठन का सदस्य बनने, किसी धार्मिक निर्देश के समक्ष समर्पण करने अथवा कोई धार्मिक कृत्य करने के लिये बाध्य नही किया जायेगा। पूर्व प्रावधान की शर्त पर माता—पिता और अभिभावक सोलह वर्ष की आयु तक के बच्चों की धार्मिक शिक्षा निर्धारित करने के लिये अधिकृत होंगे।

16— किसी भी व्यक्ति को अपनी जाति, पंथ या धर्म के कारण किसी भी प्रकार का कोई अर्थदण्ड नही भरना होगा और न किसी व्यक्ति की जाति, पंथ या धर्म के आधार पर नागरिकता के किसी दायित्व को पूरा करने से इंकार करने की अनुमति ही दी जायेगी।

17— राज्य किसी भी धर्म को राजकीय धर्म की मान्यता नहीं देगा।

18— किसी धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों को संगठन बनाने की स्वतंत्रता की गारंटी दी जायेगी और यदि वे ऐसी इच्छा व्यक्त करें, उनके द्वारा स्वीकृत शर्तों के अर्न्तगत उन्हें एक संयुक्त निकाय बनाने वाले कानून पारित करने के लिये राज्य से

माँग करने का अधिकार होगा।

19– सभी लोगों पर लागू होने वाले कानूनों की सीमा के अन्दर प्रत्येक धार्मिक संगठन अपने कार्यकलापों को चलाने और विनियमित करने के लिये स्वंतत्र होगा।

20– धार्मिक समूहों या संगठनों को अपने सदस्यों पर अंशदान प्राप्त करने का अधिकार होगा, बशर्ते कि वे सदस्य अपना अंशदान देने के इच्छुक हों तथा उनके लेन–देन के नियम कानून ऐसा करने की इजाजत देते हो। किसी भी व्यक्ति को ऐसे करें की अदायगी के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है, जिसका विशिष्ट लाभ किसी धार्मिक समुदाय विशेष के उपयोग के लिये अभीष्ट हो और वह व्यक्ति उस समुदाय विशेष का सदस्य न हो।

21– इस अनुभाग के अर्न्तगत सभी अपराध संज्ञेय अपराध माने जायेगें। जिन कृत्यों को अपराध धोषित किया गया है उन कृत्यों के लिये दण्ड निर्धारित करने हेतु तथा जिन प्रावधानों के लिये कानून बनाना आवश्यक होगा उन प्रावधानों को प्रभावी बनाने के लिये संघीय विधायिका कानून बनायेगी।

अनुच्छेद II – अनुभाग II

मौलिक अधिकारों पर हमले के विरुद्ध उपचार संयुक्त राज्य भारत यह प्रावधान करेगा कि :

खण्ड – 1

1. भारत की न्यायिक शक्ति सर्वोच्च न्यायालय में निहित होगी।

2. सर्वोच्च न्यायालय को अन्य सभी न्यायालयों पर अथवा न्यायालयों की शक्तियों का

क्रियान्वयन करने वाले अधिकारों पर नियन्त्रण, पर्यवेक्षण करने की शक्ति होगी, चाहे ऐसे न्यायालय या अधिकारी इस के अपीलीय व पुनरीक्षण के अधिकार क्षेत्र के अधीन हों या न हो।

3. किसी पीड़ित पक्ष की प्रार्थना पर, जिन्हें विशेषाधिकार याचिकायें कहा जाता है जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण एवं परमादेश इत्यादि को जारी करने की शक्ति सर्चोच्च न्यायालय की होगी। इन याचिकाओं के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय सम्पूर्ण भारत का आम अधिकार क्षेत्र वाला न्यायालय होगा।

4. विद्रोह अथवा लोक सुरक्षा पर आक्रमण के समय आवश्यक होने की स्थिति को छोड़कर ऐसी याचिका को प्रस्तुत करने के अधिकार को न तो निलम्बित किया जायेगा न उसमें कटौती ही की जायेगी।

खण्ड – 2

इसमें असमानतापूर्ण व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण के उपाय बताये गये हैं।

खण्ड – 3

इसमें भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण दिया गया है।

खण्ड – 4

इसमें आर्थिक शोषण के विरुद्ध संरक्षण के उपायों के बारे में बताया गया है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा0 अम्बेडकर के विचारों में मौलिक अधिकारों की सम्पूर्ण पूर्व कल्पना थी। बाद में इसे बदले रुपों में संविधान में शामिल भी किया गया था। इन्हें उन देशों से लिया गया था जिनकी परिस्थितियां भारत के मौलिक अधिकारों के समान थी।[2] भारत के नागरिकों के स्तर, जन्म, व्यक्ति, परिवार,

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित — पृ0 – 40
2. वही, — पृ0 – 41

धर्म, धार्मिक प्रथा, रुढ़िजन्य अयोग्यताओं को न मानकर, कानून के सामने बराबर माना गया। लगभग अधिकाँश कों बाद में संविधान में शामिल किया गया, पर आर्थिक समानता हेतु राज्य समाजवाद, एवं कृषि के राष्ट्रीयकरण आदि व्यवस्थाओं को शामिल नहीं किया गया। संविधान में वर्णित मूल अधिकारों को हम नीचे उल्लिखित कर रहें हैं, जिनकी प्रकृति डा0 अम्बेडकर द्वारा ऊपर वर्णित सिद्धान्तों से काफी मेल खाती है। इनमें पर्याप्त समानता है। पूर्व प्रतिपादित 21 मूलाधिकार भारतीय संविधान के मूलाधिकारों के समनुरुप एवं पूर्ववर्ती है। इनमें काफी साम्यता है।

1– समता का अधिकार :

(अ) विधि के समक्ष समता एवं विधि का समान संरक्षण।[1]

(ब) धर्म आदि के आधार पर विभेद का प्रतिषेध।[2]

(स) लोक नियोजन के अवसर की समानता।[3]

(द) अस्पृश्यता का अंत।[4]

(य) उपाधियों का अंत।[5]

2– विशिष्ट स्वतंत्रता का अधिकार :

(अ) वाक् स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, सम्मेलन का, संगम का संचरण का निवास करने एवं बस जाने का और वृत्ति की स्वतंत्रता।[6]

(ब) अपराधों के लिये दोष सिद्धि के विषय में संरक्षण।[7]

(स) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।[8]

---

1. अनुच्छेद –14
2. अनुच्छेद –15
3. अनुच्छेद –16
4. अनुच्छेद –17
5. अनुच्छेद –18
6. अनुच्छेद –19
7. अनुच्छेद –20
8. अनुच्छेद –21

(द) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।[1]

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार :

(अ) मानव के दुर्व्यापार एवं बलात श्रम का प्रतिषेध।[2]

(ब) परिसंकटमय नियोजन में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।[3]

4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार :

(अ) अतःकरण की एवं धर्म के अबाध रुप से मानने की स्वतंत्रता।[4]

(ब) धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।[5]

(स) किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिये करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता।[6]

(द) कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता।[7]

5. अल्पसंख्यकों के संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :

(अ) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि एवं संस्कृति का संरक्षण।[8]

(ब) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन ~~और प्रशासन~~ करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार।[9]

6. सम्पति अधिकार :

इस अधिकार का संविधान के भाग 3 से, संविधान (44 वाँ संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा लोप कर दिया गया है।

---

1. अनुच्छेद -22
2. अनुच्छेद -23
3. अनुच्छेद -24
4. अनुच्छेद -25
5. अनुच्छेद -26
6. अनुच्छेद -27
7. अनुच्छेद -28
8. अनुच्छेद -29
9. अनुच्छेद -30

7. संविधानिक उपचारों का अधिकार :

भारतीय संविधान में वर्णित सबसे महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, संवैधानिक उपचारों का अधिकार। इस भाग द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये कुछ उपचारों की व्यवस्था है। ये हैं बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा।[1]

रक्षा के इन उपायों को डा० अम्बेडकर संविधान का हृदय एवं आत्मा कहते हैं।[2] डा० अम्बेडकर आगे कहते हैं, "यदि कोई मुझसे पूछे कि संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान शून्य प्रायः हो जायेगा तो इस अनुच्छेद (32) को छोड़कर मैं किसी अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता।"[3]

डा० अम्बेडकर ने जीवन में समता को प्रमुख स्थान दिया है। समाज में, धर्म में समता का होना अनिवार्य सत्य हैं, अन्यथा समाज कष्टपूर्ण हो जाता है डा० अम्बेडकर ने कहा है, "असमानता से ग्रस्त व्यक्ति इस राजनीतिक प्रजातंत्र को तहस–नहस कर देगा, जिसे इस विधान सभा ने काफी मेहनत करके बनाया है।"[4] समता में स्वतंत्रता एवं भाई-चारा प्रमुख तत्व है। समता के बिना समाज छिन्न–भिन्न हो जायेगा। समाज एवं शासन में, सरकार में समता ही वह तत्व है, जो सुव्यवस्था की जड़ है। प्राचीन काल से अर्वाचीन तक भारत समता के अभाव के कारण ही अशान्त है। इसलिये सामाजिक स्थिरता के लिये समानता के अधिकारों का क्रियान्वितीकरण बहुत जरुरी हैं

---

1. अनुच्छेद – 32
2. डा० आर० सी० अग्रवाल, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पृ० – 44
3. डा० बी० एल० फड़िया व डा० पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति पृ० – 172
4. बुद्ध शरण हंस, डा० अम्बेडकर के विचार पृ० – 131

षष्ठ अध्याय

सामाजिक एवं समाजोत्थान सम्बन्धी विचार

(१) दलितों की सामाजिक स्थिति
(२) अस्पृश्यता निवारण के प्रयास
(३) सुधारक एवं कानूनवेत्ता
(४) नारी सुधार

डा0 अम्बेडकर के समय का युग राजनीति के नवमानववादी मूल्यों का युग था। विश्व में नई घटनायें घटित हो रहीं थीं। सामन्तवाद, राजतंत्र, उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करने के प्रयास चल रहे थे। लोक चेतना एक नई शक्ति के रुप में उभर कर सामने आ रही थी। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति का संघर्ष चल रहा था। शिक्षा का प्रसार हो रहा था। श्रमिक आन्दोलनों की चेतना फैलने लगी थी। औद्योगिक क्रान्ति का असर हो रहा था। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर के समय में अन्तःसंघर्ष का दौर प्रारम्भ हो चुका था।

डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक सुधार की चेतना लाने की दृष्टि से धर्म की कुरीतियों को उजागर किया। उन्होंने दलित वर्ग के हित में योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना प्रारम्भ किया था। वे जान चुके थे कि दलित वर्ग अज्ञान, अर्थाभाव, सामाजिक प्रतिष्ठाविहीन, उपेक्षित एवं यातनाओं से बुरी तरह पीड़ित है। वे दलितों में आपस में भी एकता लाना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर जानते थे कि मात्र मूल्यों की स्थापना से काम नहीं चल सकता। संघर्ष के समय की जाग्रत अवस्था को संघर्ष के बाद के क्षणों में भी बनाये रखना जरुरी है। डा0 अम्बेडकर की सामाजिक चेतना के सन्दर्भ में मुख्य भूमिका रही है। उनका समग्र चिन्तन, अनुशीलन एवं कार्य क्षेत्र सामाजिक उत्थान की भावना से प्रेरित रहा है।

1. दलितों की सामाजिक स्थिति :—

डा0 अम्बेडकर ने समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया था। उनके चिन्तन का केन्द्र बिन्दु दलितों की सामाजिक स्थिति एवं उनका उत्थान

था। वे भेदभाव की नीति को समाप्त कर देना चाहते थे, दलितों के कष्टों का उन्हें गहरा अनुभव था। वे इस बुराई से लड़े एवं इस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि इसी भेदभाव के कारण देश गुलाम हुआ था।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार विश्व समाज का अध्ययन करने पर एक निष्कर्ष सामने आता है कि सामाजिक संरचना के मूल में मानव की अंधमनोवृत्ति कार्य कर रही है। सभ्य से सभ्य देशों में, उनके समाजों में एवं अन्य स्तरों पर भेदभाव के ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, कि जिन्हें पढ़कर सभ्य समाज दाँतों तले उँगलियाँ दबा ले। आज भी शोषण मुक्ति के जितने उपाय ईजाद किये गये है, चाहे वे सामाजिक स्तर पर हों या आर्थिक अथवा राजनीतिक स्तर पर उनमें शोषण करने की आदि प्रवृत्ति कार्य कर रहीं है।

वैदिक काल में आर्य को शूद्र स्त्री से विवाह करने का अधिकार था, पर शूद्र को आर्य स्त्री से विवाह करने का अधिकार नहीं था। शतपथ ब्राह्मण सोमयज्ञ में शूद्र को भी भाग लेने का अधिकार देता है।[1] उपनिषदों के वर्णनानुसार सत्यकर्म, जाबाल, जानश्रुति जैसे शूद्र वैदिक दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। शतपथ एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार राजसूय यज्ञ के समय अभिसिंचन क्रिया में शूद्र को भाग लेने का अधिकार नहीं था। उसका उपनयन संस्कार नहीं होता था, पर वह सभी वैदिक धार्मिक क्रियाओं से वंचित नहीं था।[2] जो शूद्र श्राद्ध करता हो, उसका भोजन ब्राह्मण कर सकता था, यह स्थिति शूद्रों को श्राद्ध का अधिकारी बताती है।

---

1. दलित जन उभार — पृ0 - 227
2. वही. — पृ0 - 227

याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण पिता और शूद्र माता के पुत्र को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है। बृहस्पति ने शूद्रों के पुत्र को दान का अधिकारी नहीं माना है। गुप्तोत्तर काल में शूद्रों को सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा गया था, विभिन्न समृतिकारों के मत इस सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार शूद्रों को पूर्ण रूप से अस्पृश्य समझा गया, इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज में शूद्र नीचे स्तर पर थे।

छूआ–छूत की रूढ़ि हजारों वर्षों से चलती रही थी। डा0 अम्बेडकर को नहीं लगता था कि हिन्दू समाज में भेद की स्थितियों की दीवार को गिराकर पुनः नये सिरे से समाज का गठन हो सकता है, क्योंकि उसके संगठन में पेंचीदगियां एवं भिन्नता की जड़ इतने गहरे में पहुँच चुकी है, तो उनसे उसे मुक्त करना असम्भव नहीं तो कठिन जरुर है। मानवता के गुणों की आशा करना ही व्यर्थ है।[1] डा0 अम्बेडकर चाहते थे कि हरेक मानव को एक जीवन दर्शन अपनाना, चाहिये जिसके द्वारा उसका मूल्यांकन हो सके। मूल्यांकन का स्तर हर मानव को स्वयं ही तय करना चाहिये।[2] डा0 अम्बेडकर जानते थे कि भय आधारित और भेद–आधारित समाज की संरचना बालू पर मकान बनाने के समान है।

डा0 अम्बेडकर की मान्यता थी कि जाति–प्रथा अनैतिक है तथा असंगठन का भी कारण है, इसी कारण हिन्दू समाज पतनोन्मुख हुआ है। अच्छे समाज को सत्य धर्म पर आधारित होना चाहिये। मानव को व्यक्ति– विरोधी समाज के आगे घुटने नही टेकने चाहिये। समाज में आत्म विश्लेषण को स्थान होना चाहिये और

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 157
2. वही, पृ0 – 158

उसमें नवीन मूल्यों तथा मान्यताओं के प्रति सम्मान और उत्साह की कमी नजर नहीं आनी चाहिये।

आजादी के समय की शरणार्थी समस्या में भी डा0 अम्बेड़कर की पीड़ा दिखाई पड़ती है, उन्होंने पाकिस्तान में कैद स्वच्छकार समुदाय के लोगों के सुरक्षित ढंग से भारत में आने के लिये पं0 नेहरु को पत्र लिखा था।[1] जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने छोटी से छोटी बात पर नजर रखी, वे चाहते थे कि विभाजन के समय भी अछूत समुदाय सुरक्षित रूप से भारत आ जाये, और उसे किसी प्रकार से हानि न हो। वे गाँव के निम्नवर्गीय कामगारों की दशा को लेकर चिंतित थे।

डा0 अम्बेडकर ने इस बात का भी निष्कर्ष निकाला कि प्राचीन समय में ब्राह्मण और क्षत्रियों की लड़ाई का वर्णन वास्तव में शूद्रों से लड़ाई का था। यह संघर्ष शूद्रों और ब्राह्मणों के मध्य संघर्ष था। सुदास शूद्र था। अन्य राजाओं को शूद्र न कहकर इक्ष्वाकु वंश का बताया गया है। ऋगुवेद के अनुसार सुदास इक्ष्वाकु वंशीय बताया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि ब्राह्मणों से संघर्ष करने वाले सभी राजा शूद्र थे। शूद्र क्षत्रियों का एक वर्ग था। संघर्ष के कारण यह क्षत्रिय पराजित हो गये, इसी के कारण यह दूसरे वर्ण क्षत्रिय से गिरकर शूद्र में परिवर्तित हो गये।[2]

डा0 अम्बेडकर अछूतों की सामाजिक स्थिति से चिंतित थे। देख रहे थे, कि 20 वीं सदी का सामाजिक और सुसंस्कृत कहा जाने वाला मानव व्यवहार

---

1. बाबा साहब डा0 अम्बेडकर के पत्र — पृ0 - 104
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, शूद्र कौन — पृ0 - 10-11

में असभ्यता और असंस्कृतता के तमाम उदाहरणों को भी पीछे छोड़ रहा है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शोषण की वृत्ति मानव मन में गहरे से बैठी है, जो लोग हिंदुस्तान की आजादी की बात कर रहे थे, वे अछूतों के शोषण पर निष्क्रिय क्यों थे।

मानवता की दुहाई देने वाला धर्म व्यवहार में अमानवता से ग्रस्त रहा है। समस्त शक्तियां अभिजात्य वर्ग के हाथों में थी। और दलित समाज राजनीतिक चेतना से हीन था। डा0 अम्बेडकर के चिन्तन का प्रमुख विषय यही सामाजिक स्थिति थी। वे व्यक्ति का स्तर आनुवांशिकता से निश्चित करने के विरोधी थे। डा0 अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को चिन्तन का आधार बनाया था। शूद्र जन्मजात होते हैं, जो एक बार शूद्र जाति में पैदा हो गया वह सवर्ण नहीं हो सकता, इस चिंता में उन्होंने वर्ण व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया। डा0 अम्बेडकर ने लेखन, वक्तृत्व और संघर्ष से दलित जीवन के भयावह दुख और पीड़ा को रेखाँकित किया, उनके भीतर चेतना का संचार किया। इसी समय में वे संविधान में आरक्षण, समानता का अधिकार, राजनीतिक, धार्मिक, शिक्षा, आदि के क्षेत्र में संघर्षरत् रहे। यही कारण है कि दलित और सर्वहारा दोनों शब्दभाव अम्बेडकर में समाहित थे।

डा0 अम्बेडकर अस्पृश्यता को दास प्रथा से बुरा मानते थे। दास प्रथा कभी भी बाध्यकारी नही रही, अस्पृश्यता बाध्यकारी है। एक बार का अछूतपन सारी जिन्दगी आगे की पाढ़ियों को भी अछूतपन में धकेल देता है। डा0 अम्बेडकर एक जगह पर लिखते हैं, "अस्पृश्यता में स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था की सभी बुराइयां मिलती है। स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था में अस्तित्व का संघर्ष है। जीवित रहने का दायित्व व्यक्ति विशेष पर रहता है, यह दायित्व स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी बुराई है।"[1]

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 115

2. अस्पृश्यता निवारण के प्रयास :-

डा0 अम्बेडकर ने कहा है कि रामानुजाचार्य, चैतन्यगुरु, रामानन्द आदि ने अस्पृश्यता निवारण के प्रयास किये।[1] रामानुजाचार्य के गुरू काँचीपूर्ण ब्राह्मण नहीं थे। रामानुजाचार्य ने तिरुवल्ली में एक चाँडाल स्त्री को अपने पंथ की दीक्षा दी थी। वहीं चैतन्य गुरु ने जगन्नाथ मंदिर को सभी के लिये खुलवा दिया था। इस सबके बाद भी सुधार की दीर्घकालिक परम्परा प्रारम्भ नही हुई। अस्पृश्यता जस की तस रही। डा0 अम्बेडकर का विचार है कि वर्तमान में सुधार के प्रयास अंग्रेजों के आने के बाद प्रारम्भ हुये। इस श्रेणी के पहले सुधारकों में राजा राम मोहन राय को गिन सकते हैं, पर उनका सुधार धर्म के अन्दर सुधार तक केन्द्रित रहा। प्रारम्भ में सामाजिक प्रश्नों की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया था।[2]

डा0 अम्बेडकर उस परम्परा त्रस्त थे जिसमें कुछ लोगों की परछाँई मात्र से शेष अपवित्र हो जाते हों, जिसके अधिकतर लोग जंगलों में रहते हों, पहनने के लिये वस्त्र न हों। यह सब सामाजिक अपकीर्ति का विषय है। डा0 अम्बेडकर के महाड़ चोबदार तालाब एवं कालाराम मंदिर में प्रवेश का प्रयास सामाजिक सुधार एवं आत्म सम्मान की ओर एक कदम था। धनंजय कीर डा0 अम्बेडकर की तुलना मार्टिन लूथर से करते हैं।[3]

डा0 अम्बेडकर का कहना था कि जब एक देश दूसरे देश की गुलामी सहन नहीं कर सकता, तब एक समाज दूसरे समाज की दासता कैसे स्वीकार

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं पृ0 - 70
2. वही, पृ0 - 71
3. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 56

कर लेगा। हर व्यक्ति को विकास की पूरी सुविधायें होनी चाहियें सभी के विकास से देश व समाज का विकास सम्भव है। विकास के लिये सामाजिक आधार पर समानता होनी चाहिये। वे सामाजिक जीवन में क्रान्ति की बात करते थे, पर इसका लक्ष्य समाज का परिवर्तन होना चाहिये। कोरे परिवर्तन मात्र से दलितों को कोई लाभ होने वाला नहीं है। शक्ति का स्थानान्तरण मात्र राजनीतिक जीवन में ही नहीं, वरन् सामाजिक जीवन में भी होना चाहिये। समाज में शिक्षा एवं करणीय का बोध होना जरुरी है। उन्होने कई समाजों एवं देशों के उदाहरणों से कहा कि जब उन देशों में लोग मिल–जुल कर रह रहे हैं तो भारत में मिलकर क्यों नहीं रह सकते?[1]

डा0 अम्बेडकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे, खास तौर पर जो धर्म के क्षेत्र में स्थापित हो चुकीं हैं। उन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। वे अछूतोद्धार के काम में लगे रहे। उनकी पीड़ा जनहित से प्रभावित थी। वे अस्पृश्यता के उन्मूलन के बिना दलित वर्ग का उद्धार असम्भव मानते थे, कहते थे कि दलितों को पारपरिक कार्यो को छोड़ देना चाहिये।[2] डा0 अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्म से उनका झगड़ा गलत सिद्धान्तों एवं गलत सामाजिक जीवन की पोषण की वजह से है। डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार उनका झगड़ा सामाजिक अपूर्णता से नहीं है। यह अपूर्णता काफी मौलिक है। यह झगड़ा सिद्धान्तों से है।[3]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यता का प्रमुख कारण लोगों द्वारा इसका विरोध न करना रहा है। अस्पृश्यता का विरोध किया जाता तो यह कल्पना

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 – 58
2. डा0 एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 – 117
3. वही, — पृ0 – 113

काफी पहले बदल जाती। झूठ आग्रह एवं बुरे विचार व्यवहार में ज्यादा दिन नहीं टिकते हैं। जातिभेद एवं अस्पृश्यता का परिणाम सोचना चाहिये। निष्क्रिय रहने से जो विचार शून्य लोग हैं, वह छुआ–छूत की रुढ़ि भली है या बुरी इस पर विचार नहीं करेंगे, एवं इस प्रकार यह रुढ़ि भविष्य में हजारों वर्षों तक चलती रहेगी।[1] अस्पृश्य समाज को एक दिन भी अन्याय को सहन नहीं करना चाहिये। हमें प्रतिक्रिया का ध्यान रखे बिना कार्य में संलग्न हो जाना चाहिये। डा0 अम्बेडकर ने कुँये, तालाब एवं मंदिर सभी के लिये खोलने पर जोर दिया।[2] दलितों के हितों की रक्षा की जानी चाहिये। उन्होंने प्रतिकार के एक तरीके के रुप में अलग वसाहत का भी सुझाव दिया था। इसके अनुसार अपने गाँव का मोह छोड़कर अलग बस जाना चाहिये।[3]

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि सभी सामाजिक प्रभावों एवं संस्थाओं के समान, धर्म भी एक प्रभाव या संस्था है। वह समाज को, जो उसकी गिरफ्त में है, लाभ दे सकता है, या नुकसान पहुँचा सकता है।[4] वे धर्म परिवर्तन को भी अस्पृश्यता निवारण के प्रयास का एक साधन बनाना चाहते थे। उन्होंने एक बार चेताते हुये कहा था कि अछूतों के किसी भी परिस्थिति में मुसलमान बन जाने पर परिणाम क्या होगा, पर वे ऐसा कोई रास्ता जो अमरीकन नीग्रों की तरह हो, नहीं अपनाना चाहते थे। उन्होंने अनुमान किया था कि इससे देशहित पर आँच आती।

वे दलितों की गिनती अल्पसंख्यकों में मानते थे। उनका विचार था कि भिन्न धर्म का होना मात्र ही अल्पसंख्यक नहीं कहलाता। सामाजिक भेदभाव

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं — पृ0 – 60–61
2. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 – 54
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं — पृ0 – 119
4. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज — पृ0 – 06

का होना ही इस बात की वास्तविक कसौटी है कि अल्पसंख्यक कौन है, कौन नहीं?[1] धर्म परिवर्तन के निर्णय पर भी वे धर्म नहीं वरन् उसके व्यवहार से जुड़े थे। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि यदि इन्सानियत की कीमत हिन्दू धर्म में रहकर मिलती हो तो हिन्दू समाज के बहिष्कार के लिये नही कहा जा सकता है।[2] अस्पृश्यता उन्नति में बाधा है। उन्होंने सवर्णों के द्वारा दलितों के बहिष्कार पर चिंता दिखाई, इससे दलितों की रोटी छिन जाती है।[3]

डा0 अम्बेडकर ने दलितों की समस्या का राजनीतिकरण किया था। इसके लिये उन्होंने अप्रैल 1942 में शेड्यूल कास्ट फेडरेशन एवं 1956 में रिपब्लिकन पार्टी को जन्म दिया था। उन्होंने दलितों की लड़ाई राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर लड़ी। उनके चिन्तन का प्रमुख विषय सामाजिक संरक्षण हैं। उन्होने एक सशक्त सामाजिक जन चेतना को उभारा था।[4] डा0 अम्बेडकर का विश्व के सामाजिक जीवन में मानवीय स्तर पर प्रभावपूर्ण योगदान था। उनका चिन्तन दुनिया के दूसरे समाजों के लिये एक मिसाल था। अमरीका के नागरिक होते हुये भी नीग्रो जनता को वोट देने का अधिकार काफी बाद में मिला था।[5]

डा0 अम्बेडकर की दलित मुक्ति आन्दोलन के दो रुप हैं–

1. सामाजिक समानता का संघर्ष।
2. दासता से मुक्ति।

पहले का आधार व्यवस्था सम्बन्धी चिन्तन है,जिसके आधार पर डा0अम्बेडकर ने

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 – 59
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं पृ0 – 64
3. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 – 54
4. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 122
5. डा0 धर्मवीर, डा0 अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन पृ0 – 14

संविधान, नियम एवं जनतांत्रिक व्यवस्थायें प्राप्त करने की दिशा में प्रयास किये, एवं सफल भी हुये। दूसरे स्तर पर प्राचीन भारतीय इतिहास के मूल्याँकन प्रभुत्व की जड़ों की तलाश एवं वर्ण व्यवस्था के सैद्धान्तिक आधारों को तोड़ने का कार्य किया। उन्होंने व्यापक जन आन्दोलन संगठित किया।

डा0 अम्बेडकर ने 'मूकनायक' 1920 एवं 'बहिष्कृत भारत' 1927 पाक्षिक पत्रों का आरम्भ करके दलित चिन्तन एवं आन्दोलन का सूत्रपात किया। 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा एवं 1927 में समता सैनिक दल एवं 1928 में डिप्रेस्ड क्लास एजूकेशन सोसाइटी की स्थापना की थी। इस प्रकार सामाजिक चेतना के राजनीतिक हथियार द्वारा सामाजिक परिवर्तन की दिशा व दशा बदलने पर जोर दिया। इस प्रकार उत्पन्न चेतना ने आत्मविश्वास पैदा किया। डा0 अम्बेडकर हिन्दू समाज का नैतिक पुनरुद्धार करना चाहते थे। वे इसका बोझ बौद्धिक रुप से सम्पन्न लोगों पर डालना चाहते थे।

3. सुधारक एवं कानूनवेत्ता :—

डा0 अम्बेडकर के विचार न केवल एक विचारक के रुप में हैं, वरन् ऐसे सुधारक एवं कानूनवेत्ता के रुप में भी हैं, जिसने मानव जाति के समकक्ष सर्वश्रेष्ठ व्यवहारिक आदर्श रखे। उन्होंने ज़ीवन में उन सिद्धान्तों पर आचरण भी किया। उनके आदर्श काल्पनिक नहीं थे, वरन् व्यवहारिक थे। वे उस दर्शन एवं ज्ञान को मान्यता देते थे, जो मानव की समस्याओं में रुचि रखे। उनके सामाजिक सिद्धान्त

इस प्रकार के हैं, जिससे न्याय संगत समाज की स्थापना की जा सके, एवं समाज वास्तव में आगे बढ़ सके। वे भारतीय समाज को सुधारना नहीं वरन् बदलना चाहते थे। वे इसका एक मात्र समाधान क्रान्ति में देखते थे। उनकी कल्पना के समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा प्रमुख था।[1]

डा० अम्बेडकर ने लोगों से परम्परागत व्यवसाय छोड़ने के लिये कहा। उन्होंने कहा कि अपने अन्दर आत्मसम्मान पैदा करो। जूठा खाना छोड़ो, भले ही विपत्ति आ जाये, जैसे कोई शरीफ महिला वेश्या बनना पसन्द नहीं करती है, वैसे ही विपत्ति आ जाने पर भी आत्मसम्मान छोड़ना नहीं चाहिये।[2]

डा० अम्बेडकर सामाजिक जीवन की विडम्बना जानते थे, इसलिये वे चिन्तित थे, इसी चिन्ता को व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा था 26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभास पूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे है। राजनीतिक दृष्टि से हम समान होंगे, पर सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से असमान है। उन्होंने कर प्रणाली, ग्रामीण पुनर्रचना, शिक्षा एवं शासन प्रबन्ध के बारे में अलग एवं स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया था।

डा० अम्बेडकर इस बात को जानते थे कि समाज सुधार राजनीतिक सुधार से प्रमुख है। वह इस बात को जानते थे कि राजनीतिक शक्ति समस्त सामाजिक प्रगति की कुन्जी है।[3] वे नया वर्गहीन समाज स्थापित करना चाहते थे। वे मिल के इस विचार से सहमत थे कि राजनीतिक चेतना जाग्रत होने पर एक देश एवं एक वर्ग दूसरे देश एवं वर्ग पर शासन नहीं कर सकता। डा० अम्बेडकर

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा० अम्बेडकर के विचार पृ० - 132
2. वही, पृ० - 90
3. डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा० अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ० - 159

का विचार था कि नैतिक एवं संवैधानिक विधियाँ सामाजिक परिवर्तन के लिये उचित होती हैं। वे प्रार्थना एवं अपीलों पर विश्वास नहीं करते थे। वे भाग्यवादी नहीं थे। डा0 अम्बेडकर शक्ति के उपासक थे। उन्हें संघर्ष करने पर विश्वास था। वे सम्पूर्ण जीवन दलितोद्धार के लिये कार्य करते रहें।[1] वे गुलामी की बेड़ियां काटने को सबसे बड़ी भक्ति मानते थे, एवं कुरीतियों को समूल नष्ट करने पर जोर देते थे।

डा0 अम्बेडकर जीवन भर अधिकारों के प्रति जागरुक रहे। इसीलिये उन्होंने कहा था, "शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो"। न्याय के लिये लड़ना सीखो। वे कहते थे कि दलित उद्धार के इस आन्दोलन से न केवल लोगों का भला होगा, वरन् देश में इस प्रकार का समाज बनेगा जिसमें प्रत्येक का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मूल्य निशिचित हो सकेगा।[2]

डा0 अम्बेडकर को पीड़ा अन्याय एवं असमानता का व्यक्तिगत अनुभव था। वे मानते थे कि स्वयं न्याय पाने योग्य बनना होगा। केवल नारों एवं भाषणों के सहारे से वे ऊपर नहीं उठ सकते। उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त रुढ़ियों के निराकरण के लिये स्वयं कमर कसी थी। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण है, कि बम्बई लेजिस्लेटिव असेम्बली ने एक बिल पास किया था, जिसके अनुसार सरकार ने अनुमोदित किया था, कि तालाब एवं सार्वजनिक कुँये का पानी हर कोई प्रयोग कर सकता है। डा0 अम्बेडकर ने इस कानून के अनुसार स्वयं वास्तविक एवं व्यवहारिक पहल की थी।[3] वे इस बात के लिये प्रयासरत थे कि प्रत्येक स्त्री–पुरुष को शास्त्रों

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 - 90
2. वही, — पृ0 - 92
3. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 - 52

की गुलामी से मुक्ति मिले। शास्त्रानुमोदित हानिप्रद विचारों से उनके मन को मुक्त कराया जाये, एवं निर्भीक होकर परस्पर शादी–विवाह एवं खान–पान होना चाहिये।[1] इसके लिये उन्होंने कानून का सहारा लिया।

डा0 अम्बेडकर ने इस बात का निष्कर्ष निकाला कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था अछूतों को घृणित एवं ओछे कार्य सौंपती है, ऐसा करके कुछ लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ती है। यह व्यवस्था गन्दे कार्यो की बौछार करती है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि दलित वर्ग से प्रतिशोध की कोई सम्भावना नहीं होती। कोई धार्मिक रुप से अल्पसंख्यकों से इस प्रकार का व्यवहार क्यों नहीं करता। दलित भी हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में बराबरी से विश्वास करते है। सामाजिक व्यवस्था में यह विश्वास ही दुखों का मूल कारण है।

दलितों के मध्य भी जाति व्यवस्था से पारस्परिक स्पर्धा एवं ईर्ष्या उत्पन्न हुई है।[2] एवं जाति के अन्दर भी जाति की स्थिति देखने को मिलती है। डा0 अम्बेडकर को हिन्दू समाज सुधारकों की नीयत पर भी भरोसा नहीं था। डा0 अम्बेडकर का कहना भी था कि वे अपनी जाति में रहते, विवाह करते एवं अपनी जाति में ही मर जाते हैं।[3] वे इस बात से चिन्तित थे कि लोग राजनीतिक सुधार तो चाहते है पर समाज सुधार नहीं करना चाहते।[4] यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं है। सुधार, के भी दो रुप हैं। हिन्दू परिवार का सुधार एवं हिन्दू समाज का सुधार, पुनर्रचना एवं पुनर्गठन। डा0 अम्बेडकर परिवार सुधार नहीं वरन् हिन्दू समाज के पुनर्गठन एवं पुनर्रचना के हिमायती थे।

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 – 131
2. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 – 120
3. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 – 137
4. दलित जन उभार — पृ0 – 77

इस प्रकार डा0 अम्बेडकर के प्रयास से भारतीय संविधान में दलितों के हित में प्रावधान बनाये गये, जिनके प्रकाश में केन्द्र और राज्यों के स्तर पर अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक स्तर पर समानता के प्रयास किये गये। डा0 अम्बेडकर की अवधारणा स्पष्ट थी कि कोई किसी के अधिकार न छीने।[1] डा0 अम्बेडकर ने सुधार द्वारा समाज के परिवर्धन एवं कानून द्वारा दलितों को संरक्षण की स्थिति प्रशस्त की।

4. नारी सुधार :—

डा0 अम्बेडकर समाज के मुख्य चेतना स्त्रोत थे। उन्होंने भारतीय समाज की विसंगतियों एवं असमानताओं का सविस्तार संश्लेषणात्मक विवेचन किया था। दलित समस्या के साथ—साथ मजदूर एवं नारी जाति की स्थिति पर गहराई से विचार किया है। आपने "द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमैन" नाम से एक लेख कोलकाता से प्रकाशित होने वाली महाबोधि पत्रिका में छपवाया था, बाद में वह लघु पुस्तिका के रुप में प्रकाशित भी हुआ था। डा0 अम्बेडकर ने तटस्थ व्यक्ति की हैसियत से नारी के सन्दर्भ में बुद्ध के विचारो का अध्ययन किया था। डा0 अम्बेडकर ने एक प्रकरण पर विचार भी किया था। आनन्द ने प्रश्न किया था, "स्त्रियों के सम्बन्ध में हमें किस प्रकार का आचरण करना चाहिये? यदि हम उन्हें नहीं देखते हैं। परन्तु यदि हम उन्हें देखते हैं। हम क्या करें? पर यदि वे हमसे बोलना चाहें। प्रभु हम क्या करें?" बुद्ध ने कहा," पूरे सतर्क (जागरुक) रहो आनन्द।"[2] डा0 अम्बेडकर

---

1. सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उ0प्र0 सामाजिक न्याय की नई पहल
2. Dr. Ambedkar The rise and fall of the Hindu woman P. 3-4

को इस प्रसंग में सन्देह प्रतीत हुआ, यह प्रसंग बुद्ध की शिक्षाओं से मेल नहीं खाता। बुद्ध इस प्रकार का उत्तर दे नहीं सकते थे।[1] आनन्द के लिये स्त्रियों से मिलना सहज था। वह संघ की सदस्याओं से इतर स्त्रियों से भी मिल सकता था। उनसे बात कर सकता था। ऐसा करने पर आपत्ति का कोई कारण नहीं था। उपरोक्त प्रकरण अम्बेडकर की दृष्टि में मिथ्या था।

डा0 अम्बेडकर आम्रपाली के प्रकरण को याद करते हुये कहते है, कि वैशाली की नगर वधु के नाम से प्रसिद्ध सुन्दर आम्रपाली को उन्होने दीक्षा क्यों दी? उसकी दावत स्वीकार क्यों की? महात्मा बुद्ध को न तो स्त्री जाति से परहेज था, न उन्होने स्त्री जाति की उपेक्षा की। स्त्रियाँ भी उनसे भयभीत नहीं थी। नारी के कई रूप होते है।

डा0 अम्बेडकर का मानना था कि स्त्री शिक्षा ग्रहण करने व समझने में पूरी तरह सक्षम है। वह अनुशासन प्रिय है। बुद्ध की दृष्टि में स्त्री–पुरूष में कोई अन्तर नहीं था। दोनों संघ, भिक्षु एवं भिक्षुणियों के अलग–अलग अस्तित्त्व रखते थे, पर पारस्परिक रूप से सम्बद्ध थे। डा0 अम्बेडकर ने माना कि स्त्रियों के लिए अलग संघ था। इस प्रसंग में डा0 अम्बेडकर ईसाई धर्म का उदाहरण देते है, कोई भी कह सकता है कि ईसाईयत स्त्रियों को पुरूष की तुलना में हीन मानती है।[2] ऐसा इसलिये हो सकता है क्योंकि नन्स पादरी के अधीन रहती है।[3] फिर महात्मा बुद्ध के संघ की सम्पृक्त व्यवस्था स्त्री के लिये हीनतापूर्ण कैसे हो सकती है। ऐसा समझना मात्र भ्रम ही हो सकता है। बुद्ध स्त्रियों को कतई हीन नहीं मानते थे।

---

1. Dr. Ambedkar The rise and fall of the Hindu woman P. - 06
2. वही, पृ0 – 13
3. आर्टीकल 'नन्स' इन दि कैथोलिक एनसाइक्लोपीडिया, वॉल्यूम–11 पृ0 – 164

दलित वर्ग की महिलाओं की समस्यायें उच्चवर्ग की महिलाओं की तुलना में ज्यादा गम्भीर है। वे सदियों से संताप की शिकार रही हैं। उनके प्रति समाज एवं परिवार का दृष्टिकोण अधिक निम्न रहता है। वे सदैव से प्रताड़ित की जाती रही है। उनके मन में असुरक्षा का भाव भी जन्मा है। नारी को समाज में खिलौना समझा गया। उन्हें कभी भी सहयोगिनी या सहगामिनी नही समझा गया। इसी कारण नारी के प्रति सद्भाव, मित्रता व समानता की बात नही पनप सकी।

बीसवी सदी में बदलाव के साथ शिक्षा का प्रसार हुआ। शिक्षा ने पुराने परम्परावादी धार्मिक बन्धनों और मान्यताओं को शिथिल कर दिया। इसका लाभ स्त्रियों को मिला। संयुक्त परिवार समाप्त होने से भी नैतिक और सामाजिक बन्धन शिथिल हुये, पर दलित स्त्री की दशा में कोई परिवर्तन नही हुआ। वे समाज रूढ़ियों को ढोती रही। डा0 अम्बेडकर इस पीड़ा को समझ सके थे। दलित नारी की अवनति के कारण एवं समस्यायें उनके अध्ययन का प्रमुख विषय रही हैं।

डा0 अम्बेडकर के लेखन, भाषण एवं चेतना प्रसारण से दलित समाज में जागृति आयी है, फिर भी नही कहा जा सकता कि दलित नारी समाज में जागृति आयी है। दलित समाज सबसे ज्यादा रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रस्त है। दलित समाज में नारी की स्वतन्त्रता और समानता स्वप्नवत् है। उनके पारिवारिक प्रश्न भी जटिल प्राकृति के है। घर परिवार के प्रति जिम्मेदारियॉ उठाते–उठाते वह इतनी थक जाती है कि स्वयं व्यक्तिगत और बाहरी सामाजिक कार्यो को नकारने लगती है, या स्वयं को इस काम के लिए अक्षम और अयोग्य मान लेती है।[1] परिवार के

1. सुशीला टॉंकभौर, दलित साहित्य पृ0 – 115

पुरूष भी चाहते है कि वह घर परिवार के घेरे में बंधी रहे। नारी मुक्ति में आगे आने वाली महिलाओं को मान मर्यादा या अन्य बहाने बनाकर रोका जाता है। कई नैतिक दबावों के साथ उसे घर में कैद कर दिया जाता है इस प्रकार दलित महिलाओं के लिए परिवार की जिम्मेदारी से निकलना भी एक बाधा है।

दलित नारी के समक्ष आर्थिक प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। उसे हर कदम पर पुरूष के सहारे की जरूरत होती है। धीमे धीमे वह स्वयं को जरूरतें एवं इच्छायें ही भूल जाती है। अगर नारी कमाती भी है, तो इसे घर की सम्पत्ति मान लिया जाता है, अपना पैसा न देने पर नारी को अपमान से गुजरना पड़ता है। दलित नारी द्वारा अर्जित धन पर भी पुरूष का अधिकार माना जाता है। इस कमजोरी के कारण स्त्रियां जागृति का अनुभव नहीं कर पाती। वह लाचारी का अनुभव करती है।[1]

महिलाओं के समाज सुधार से जुड़ा एक प्रश्न यह भी है कि समाज में महिला सुधारकों के यात्रा करने पर घर वाले या समाज के लोग उनके प्रति संशय का भाव रखते है। चरित्र के प्रति ऐसी हीन भावना स्त्रियों को मानसिक कष्ट देती है, इसके परिणाम स्वरूप वह प्रायः मुक्त भाव खो बैठती है।

पुरूष वर्ग नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं रखता इस कारण वह अधिक संपर्क के लाभ से वंचित हो जाती है। फलतः दलित आन्दोलन मात्र भाषणबाजी तक सीमित हो जाता है। कुछ महिलायें तो दलित होने के कारण इतनी हीनता महसूस करती है, कि उनका मनोबल बढ़ाने की समस्या है। डा0 अम्बेडकर ने इस वर्ग में चेतना उत्पन्न की है। नारी अब आगे आने का उपक्रम करने लगी

---

1. सुशीला टाँकभौर, दलित साहित्य पृ0 – 116

है। अशिक्षा इस समाज का मुख्य शत्रु है।

दलित आन्दोलन एवं नारी सुधार का अर्थ स्वयं नारियाँ ही नही समझ पाती, ऐसी परिस्थिति में समाज को दिशा देने की कल्पना कैसे की जा सकती है? यह अनुत्तरित प्रश्न आज भी उत्तर की प्रतीक्षा में है। शिक्षित होकर संघर्ष कर संगठन का महत्व समझना होगा।

डा0 अम्बेडकर इस बात की चर्चा करते हैं कि प्राचीन समय में शूद्रों एवं स्त्रियों को उपनयन का अधिकार था। वे वेद पाठ करतीं थी एवं वेदाध्ययन हेतु पाठशालायें संचालित करती थी।[1] कालान्तर में नारी शोषण के गर्त में गिरती चली गई। आज सिद्धान्त एवं व्यवहारिक स्थिति में काफी अन्तर है। बिना किसी कारण के नारी को शिक्षा से वंचित कर दिया जाता था। ज्ञान प्राप्ति का प्रत्येक को अधिकार है। स्त्रियों के प्रति यह व्यवहार काफी क्रूर था। इस क्रूरता की कोई समानता नहीं है।[2] पातंजलि ने अपने महाभाष्य में संकेत किया है कि स्त्रियाँ अध्यापिकायें भी होती थीं। छात्रों को वेद पढ़ाती थी।[3]

डा0 अम्बेडकर कहते थे कि प्राचीन काल में नारी को पुरूषाश्रित रखा गया था। उसके बचपन से लेकर जवानी एवं वृद्धावस्था तक का संरक्षण क्रमशः पिता, पति एवं पुत्र को सौपा गया है। उसे तलाक का अधिकार नहीं था। यह संरक्षण दासता का एक रूप था। डा0 अम्बेडकर का मानना था कि स्त्री को अधिकार दिये बिना समाज का उत्थान सम्भव नहीं। प्राचीन समय में नारी अबला एवं असहाय थी।

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, शूद्र कौन — पृ0 - 120
2. Dr. Ambedkar, The rise and fall of the Hindu woman — P. - 17
3. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन — पृ0 - 152

तत्कालीन समय में नारी के मत का कोई मूल्य नहीं था। इसका सबसे बड़ा उदाहरण डा0 अम्बेडकर उस समय के विवाहों के प्रकारों द्वारा बताते हैं।

1. ब्राह्म, 2. दैव, 3. आर्ष, 4. प्रजापत्य, 5.असुर 6. गन्धर्व, 7.राक्षस, 8. पैशाच विवाह। इसी प्रकार 13 प्रकार के पुत्रों का वर्णन आता है। 1. औरस 2. क्षेत्रज, 3. पैत्रिक पुत्र, 4. कनिन, 5. गूढ़ज, 6. पुनर्भव, 7. सहोद्यज, 8. दत्तक, 9.कृत्रिम, 10. कृतक, 11. अपविद्ध, 12. स्वयंदत्त, 13. निषद।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार इनमें से काफी परम्परायें वर्तमान में कलिवर्ज्य कहकर समाप्त कर दी गई। कलिवर्ज्य का अर्थ है जो दूसरे समय में प्रचलित है, पर कलियुग में निषिद्ध है। इन उदाहरणों से नारी का शोषण सिद्ध होता है, ऐसा डा0 अम्बेडकर का मत है।[1] इसी प्रकार देवदासी परम्परा भी नारी का शोषण है। डा0 अम्बेडकर का मत इस घातक रूढ़ि को समाप्त करने का था। स्त्रियों को दुष्प्रेरित करने वालो का बहिष्कार किया जाय एवं उनकी मदद करने को स्वाभिमान माना जाना चाहिये। इस निर्दोष कन्याओं के पुनर्विवाह का प्रारम्भ किया जाना चाहिये।[2] डा0 अम्बेडकर के अनुसार भारतीय समाज में नारी के पतन के लिए मनु को उत्तरदायी ठहराते है, महात्मा बुद्ध को नही।[3] डा0 अम्बेडकर नारी के सन्दर्भ में सिद्धान्त एवं व्यवहार में व्याप्त अन्तर को लेकर रोष से भरे थे।

नारी की पुर्नप्रतिष्ठा के लिए हिन्दु कोड बिल पेश किया गया, इसमें डा0 अम्बेडकर की सर्वप्रमुख भूमिका थी। इसका प्रमुख उद्देश्य हिन्दु स्त्रियों

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, हिन्दू धर्म की रिडल — पृ0 – 89–90
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, स्वराज हमारे ऊपर राज — पृ0 – 82
3. Dr. Ambedkar, The rise and fall of the Hindu woman — P. - 26

को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त कराना था।[1] उन्होंने इसी कारण (कुछ अन्य कारणों से भी) बृहस्पतिवार 27 सितम्बर को मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था।[2] डा० अम्बेडकर ने इसका अर्थ सारे हिन्दुओं के लिये एक ही कोड बताया था। पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, इसकी कई प्रमुख धारायें निरस्त करनी पड़ी। कानून मंत्री की हैसियत से उन्होंने भारतीय समाज में नारी की दयनीय और उपेक्षित स्थिति को सुधारने तथा उसे समाज का स्वस्थ एवं शक्तिशाली अंग बनाने का विचार किया था।'

हम देखते है कि डा० अम्बेडकर स्त्री का काफी आदर करते थे, इसका कारण उनकी माता भीमाबाई एवं उनकी पहली पत्नी रामीबाई का उन पर काफी असर था। वे शिक्षा को महत्व देते थे, ऐसा उनके व्यक्तिगत जीवन में दूसरी पत्नी सविता अम्बेडकर से विवाह करने पर प्रतीत होता है।[3] जो जाति से सारस्वत वंश की ब्राह्मण थी। वहीं उनके पुत्र के विवाह की बातचीत से मालूम चलता है।[4] वे उन्नति के दूसरे पहिया के रूप में स्त्री को मान्यता देते थे। और उसके शिक्षित करने पर जोर देते थे। वे बहू बेटियों को शिक्षित करना चाहते थे।[5]

आज भी कानून की दृष्टि से नारी को जो सुविधायें मिली हैं, उनके पीछे डा० अम्बेडकर का गहन चिन्तन कार्य कर रहा है। डा० अम्बेडकर ने लिंग भेद समाप्त कर समान अधिकारों पर जोर दिया था। वे पत्नी को मित्र मानते थे एवं वेश्यावृत्ति के घोर विरोधी थे। अपने पत्र में वे महिला–मजदूरों की बात भी उठाते है।[6]

1.	एच० एल० पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर	पृ० – 139
2.	दस स्पोक अम्बेडकर	पृ० – 108
3.	डा० अम्बेडकर के पत्र	पृ० – 113
4.	वही,	पृ० – 122-123
5.	डा० बी० आर० अम्बेडकर, स्वराज हमारे ऊपर राज	पृ० – 81
6	डा० अम्बेडकर के पत्र	पृ० – 174

डा0 अम्बेडकर जीवन पर्यन्त नारी सुधार के लिये संघर्षरत रहे। उनका पूरा चिन्तन भारतीय समाज को जर्जरावस्था से निकालकर स्वस्थ समाज के रूप में ढालने का रहा है। उनके प्रयासों की लम्बी एवं संघर्ष पूर्ण गाथा से इस बात की पुष्टि होती है कि वे उपेक्षितों के प्रकाश–स्तम्भ थे और नारी की गरिमा को सम्पूर्ण आयामों में स्थापित करना चाहते थे।

सप्तम अध्याय

डा० अम्बेडकर का वैचारिक योगदान

(१) राजनीतिक विचारों में योगदान
(२) सामाजिक विचारों में योगदान

1. राजनीतिक विचारों में उनका योगदानः

डा0 अम्बेडकर सामाजिक क्रान्ति के जनक थे, उन्होंने हिन्दू समाज की कुरीतियों और रूढ़ियों से त्रस्त मनुष्य की दुर्दशा देखी थी, समाज में विभिन्न समूह में बँटे हुये अलग–अलग लोगों को देखा। इसमें व्यक्ति की पहचान उसके गुणों से नहीं वरन् जाति जैसे दूसरे कारणों से होती है। वह हिन्दू समाज की इस दुर्दशा से बेहद चिन्तित थे। डा0 अम्बेडकर ने हिन्दू समाज के रोग की इस दशा में नश्तर चुभोने का कार्य किया।

डा0 अम्बेडकर ने इस बात को सोचा कि अगर राजनीतिक दृष्टि से सफलता प्राप्त कर ली जाये तो सामाजिक समानता की तरफ तेजी से बढ़ा जा सकता है, वहीं वे यह भी जानते थे कि सामाजिक समानता के बिना राजनीतिक समानता का कोई मूल्य नहीं है। राजनीतिक सत्ता सामाजिक प्रगति की कुन्जी है।[1] इस प्रकार राजनीतिक समानता और समाजिक समानता परस्पर एक पक्षी के दो पंख है, एक के बिना दूसरा बेकार है। सब सामाजिक समुदायों को राजनीतिक शक्ति में हिस्सा लेना चाहिये। उनका विचार था कि व्यक्ति का मूल्य व्यक्तिशः होना चाहिये अन्य किसी आधार पर नही। उन्होंने दलित समाज को और वंचित वर्ग को इस बात के लिए चेताया था, कि कोई भी अधिकार प्रार्थना से नहीं मिलते, वरन् उसके लिये संघर्ष जरूरी है।

डा0 अम्बेडकर की दृष्टि में प्रजातंत्र व्यवस्था सर्वोत्तम व्यवस्था है, जिसमें एक मानव एक मूल्य का विचार होता है।[2] सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 159
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 – 47

का अपना–अपना योगदान है, पर राजनीतिक दृष्टि से यह योगदान तभी संभव है जब समाज और विचार दोनों प्रजातांत्रिक हों। आर्थिक कल्याण के लिए आर्थिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र जरूरी है।

राष्ट्र एवं राज्य सम्बन्धी :–

राष्ट्र व्यक्तियों का ही योग है। व्यक्ति के सुख और समृद्धि से राष्ट्र सुखी और समृद्ध बनता है। देखा जाय तो राष्ट्र एक जीवित इकाई है। राष्ट्र वह भावना है, जो प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक जनता को एक सूत्र में बाँधती है। डा0 अम्बेडकर के विचार से राष्ट्र एक भाव है, एक चेतना है, जिसका सबसे छोटा घटक व्यक्ति है, और व्यक्ति को सुसंस्कृत तथा राष्ट्रीय जीवन से जुड़ा हुआ होना चाहिए। राष्ट्र की यह भावना ही इसे माँ का दर्जा देती है, और यह जन्म देने वाली माँ से भी बड़ी भारत माँ है। जिसके प्रति बलिदान होने की भावना लोगों के मन में सदैव से रही है। इस भावना का प्रबल ज्वार हमें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, 1971 की लड़ाई या कुछ ही समय पहले हुये कारगिल युद्ध में देखने को मिलता है।

डा0 अम्बेडकर के विचार राष्ट्रवादी थे, वे राष्ट्र को सर्वोपरि मानते थे, परन्तु यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है, कि वे प्रगति का केन्द्र व्यक्ति को बनाना चाहते थे, और इसीलिये वे राष्ट्र को सर्वोपरि मानते हुये भी व्यक्ति को साध्य मानते थे और राज्य को साधन।

डा0 अम्बेडकर ने सदैव सामाजिक एकता पर बल दिया[1] और राजनीतिक एकता के लिये सामाजिक एकता को आवश्यक बताया, क्योंकि वे जानते थे कि सामाजिक एकता के बिना अन्य एकतायें अस्थाई है।[2] सामाजिक एकता के

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 103
2. वही, पृ0 – 104

स्थायीकरण के लिए ही वे प्रजातंत्र के यथार्थवाद होने पर जोर देते थे और यह चाहते थे कि शासन को लोगों की वास्तविक स्थितियों का अध्ययन करना चाहिये। डा0 अम्बेडकर के विचार से समुदाय के सामाजिक ढाँचे के द्वारा राजनीतिक योजना को व्यवहार में लाया जाता है।

डा0 अम्बेडकर समाज को महत्व तो देते है, पर राज्य का महत्व भी कम नही करते हैं। राज्य का प्रमुख कार्य समाज की आतंरिक व्यवस्था और बाह्रय आक्रमण से रक्षा करना है। उनके विचारानुसार राज्य व्यवस्था को मानव की सेवा करनी चाहिये। शान्ति व्यवस्था के लिये जनता को राज्य की आज्ञा का पालन करना चाहिये, परन्तु राज्य को भी विभिन्नताओं में सही निर्णय देकर न्याय करना चाहिये। वे कानून के शासन के पक्षधर थे, जिसमें लोग समाज कल्याण के लिये बने कानूनों का पालन करें।

डा0 अम्बेडकर के विचारों का केन्द्र तथा प्रेरणा का स्त्रोत गरीब एवं निर्धन थे। राज्य को अल्पसंख्यकों को अत्याचार से बचाना चाहिये। उल्लेखनीय है कि उनकी अल्पसंख्यक की परिभाषा में दलित भी आते थे। डा0 अम्बेडकर समाज की प्रगति में राज्य व्यवस्था का प्रमुख स्थान मानते थे। डा0 अम्बेडकर के राज्य प्रबंध को महत्व देने के पीछे सम्भवतः यही भावना थी।

डा0अम्बेडकर ने अपने राज्य सम्बन्धी विचारों में राज्य प्रबंध में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के कार्यो का नियंत्रण रखने के लिये यह सोचा कि पूँजीवाद को समाजवादी मार्ग की ओर बढ़ना चाहिये।[1] वे प्रशासन में मजबूत केन्द्र के

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिंतन पृ0 - 42

पक्षधर थे, साथ ही ग्राम पंचायतों को अधिकार सौंपने के विरोधी थे, और एकात्मक शासन की स्थापना करना चाहते थे, क्योंकि उनका विचार था कि ग्राम पंचायत दलित वर्ग का शोषण करती है। साथ ही भारत की गुलामी का कारण समाज का वर्गों में बँटा होना और शासन का विकेन्द्रीकरण था।

डा0 अम्बेडकर कृषि के क्षेत्र में सहकारी फार्म स्थापित करना चाहते थे और उसमें राज्य के द्वारा पैसा लगाना चाहते थे।[1] यह निवेश औजार, खाद, बीज एवं बैल आदि पर होना चाहिये, ताकि उत्पादन बढ़े और किसान सम्पन्न हों। वे सभी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नही थे, जो मुख्य उद्योग है अथवा जिन्हें मुख्य उद्योग घोषित किया जाये, उन्हें राज्य द्वारा संचालित किया जाना चाहिये, मूलभूत उद्योगों को भी राज्य द्वारा अथवा उन नियमों द्वारा जिन्हें राज्य स्थापित करे, चलाया जाना चाहिये। यह भारतीय समाज के निर्धन और कमजोर वर्गो के हितों की सुरक्षा करेगा। निजीकरण की प्रक्रिया तो दलितों का अहित ही करेगी। निजी क्षेत्र की स्वार्थी और अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण हो और बड़े उद्योगपतियों का एकाधिकार तोड़ा जाय।

डा0अम्बेडकर ने राज्य की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये नाजायज शराब पर रोक लगाने की बात कही थी। उनके अनुसार यदि सरकार जायज शराब के उपभोग का नियंत्रण करने में असफल हो जाती है। तो वह नाजायज शराब की बढ़ोतरी की दिशा में सीधी उत्प्रेरणा देगी। यदि राज्य नशाबन्दी का पालन करना चाहता है, तो डा0अम्बेडकर के अनुसार उस राज्य को अपनी कर–व्यवस्था को

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 - 27

नियमित रखना चाहिये और लोगों को घटिया स्तर की शराब नहीं पीने देना चाहिये।

डा0 अम्बेडकर के विचार में बीमा के क्षेत्र में राज्य को एकाधिकार होना चाहिये। बीमा द्वारा प्राप्त धन से राज्य आर्थिक योजनाओं में योगदान कर सकता है।[1]

राज्य को समाज के निर्धन पिछड़े और अल्पसंख्यकों के आर्थिक हितों का रक्षक बनना चाहिये। व्यक्ति की स्वतंत्रता को बचाये रखने के लिये राज्य का हस्तक्षेप सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अति आवश्यक है, अन्यथा भूस्वामी किराया बढ़ा लेगें, पूंजीपति कम वेतन देंगे, जमीदार निर्धन और श्रमिकों से बेगार लेंगे। राज्य को प्रमुख उद्योगों की धुरी सभांलना चाहिये, नही तो पूँजीपति हावी हो जायेगें। राज्य के नियंत्रण से मुक्त रहने की स्वतंत्रता निजी पूँजीपति की तानाशाही का दूसरा नाम है।

राज्य द्वारा समाजवाद को संविधान का एक कानून बनाना चाहिये, देश के आर्थिक हित में इसे स्थाई संस्था बनाया जाना राष्ट्र के हित में होगा। डा0 अम्बेडकर का प्रयास था, कि संसदीय प्रजातंत्र को बिना छोड़े और संसदीय बहुमत की इच्छा पर उसकी स्थापना को छोड़े बिना राज्य समाजवाद का ढांचा खड़ा किया जाय, इसके लिये साधारण कानूनों के बजाय सवैधानिक कानून का सहारा लेना चाहिये।[2]

वे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के भी पक्ष में थे। उनका विचार था कि किसी योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था को स्थगित करना, या छोड़ने से हानि हाती है,

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाव पृ0 - 44
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित पृ0 - 46

यह योजना स्थाई होनी चाहिये, इसीलिये संसदीय प्रजातंत्र में चुना बहुमत घोषणा पत्र के अनुसार कार्य करता है। कई बार निर्वाचित बहुमत योजनाओं को निरस्त कर सकता है। डा0 अम्बेडकर चेताते हुये विचार करते है, कि इन मौलिक उद्देश्यों की पूर्ति को साधारण कानून की आवश्यकताओं के सहारे छोड़ना अच्छा नही होगा। साधारण बहुमत, जिसका राजनीतिक भाग्य बौद्धिक आधारों से निर्णीत नहीं होता, योजनाओं को बनाने या बिगाड़ने का अधिकार रखता है। इन कारणों की वजह से राजनीतिक प्रजातंत्र इस उद्देश्य के लिये अनुपयुक्त प्रतीत होता है।

डा0 अम्बेडकर स्थायित्व के लिये तानाशाही पर चर्चा करते हुये कहते है कि जो स्वतंत्रता चाहते है वे सरकार के एक स्वरूप की दृष्टि से संसदीय प्रजातंत्र को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है।[1] समस्या तानाशाही के बिना राज्य समाजवाद प्राप्त करने की है, इसलिये संसदीय प्रजातंत्र को बनाये रखने का एक ही मार्ग प्रतीत होता है, कि राज्य समाजवाद को संविधान के कानून द्वारा स्थापित किया जाय, ताकि उसे संसदीय बहुमत द्वारा स्थगित, परिवर्तित अथवा समाप्ति की सीमा से परे रखा जाय।

इसमें महत्वपूर्ण बात यह है, कि डा0 अम्बेडकर ने राज्य के राजनीतिक ढांचे के साथ साथ आर्थिक ढाँचे को भी स्पर्श किया है, ताकि सशक्त आर्थिक तत्व, राजनीतिक ढांचे को बदल सकें। डा0 अम्बेडकर के अनुसार, "संविधान के कानून द्वारा समाज के आर्थिक और साथ–साथ राजनीतिक ढाँचे को परिभाषित करने के लिये एक साहसी कदम उठाने का समय आ गया है।[2]

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित — पृ0 – 47
2. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिंतन — पृ0 – 45

इस प्रकार हम देखतें है कि डा0 अम्बेडकर के राजनीतिक और आर्थिक विचारों को दलितों, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों की दयनीय स्थितियों को ध्यान में रख कर भारतीय समाज में लागू किया जा सकता है। डा0 अम्बेडकर इन वर्गों के वास्तविक जीवन से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने दलितों को सामाजिक–आर्थिक दुखों को मिटाने के लिये राज्य का सहारा लिया, और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया।

डा0 अम्बेडकर ने राज्य की परिकल्पना मानवों के राजनीतिक संगठन के रूप में की है,[1] जिसके पास अपनी विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासन होता है, वे राज्य और व्यक्ति के मध्य सामन्जस्यता चाहते थे। डा0 अम्बेडकर राज्य को साध्य नहीं मानते थे। राज्य मानव लक्ष्यों की प्राप्ति और बेहतर समाज स्थापना का एक साधन है। चूँकि व्यक्ति ने राज्य की रचना की है, इसलिये राज्य का कर्तव्य है कि वह व्यक्तिं की स्वतंत्रता और नैसर्गिक अधिकारों की रक्षा करे तथा उनके सम्मान और गरिमा को बनाये रखे।

डा0 अम्बेडकर राज्य के कल्याणकारी स्वरूप के पक्षधर थे और अनुवांशिक शासन–परम्परा के विरूद्ध थे। उनकी दृष्टि में लोकतन्त्र की सफलता के लिये लोगों को सार्वजनिक महत्व के विषयों और निर्णयों पर तर्क से काम लेना चाहिये। सामाजिक और धार्मिक विषयों में लोकतांत्रिक तरीके से परिवर्तन लाना कठिन है। कई बार तो वे कमाल पाशा और मुसोलिनी के बारे में सोचने लगते थे, पर बाद में उनके विचार बदल गये और उन्होंने लोकतंत्र का समर्थन किया। उनके विचारानुसार लोकतंत्र पूर्ण विकास के अवसर प्रदान करता है।

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 137

डा0 अम्बेडकर भाषा के नाम पर अलगाववाद के सख्त विरोधी थे। उनके मतानुसार राज्यों की अलग–अलग राजभाषायें नहीं होनी चाहिये, वरन् राज्यों को केन्द्र की एक राजभाषा का प्रयोग करना चाहिये।

राजनीतिक बहुमत एवं साम्प्रदायिक बहुमत में अन्तर करते हुये डा0अम्बेडकर ने कहा कि राजनीतिक बहुमत का सदस्य राजनीतिक कार्यवाही में अपना योगदान करने में अपेक्षाकृत स्वतंत्र होता है, परन्तु साम्प्रदायिक बहुमत का सदस्य केवल वही राजनीतिक कार्यवाही कर सकता है, जो उस विशेष सम्प्रदाय में जन्म लेने के कारण उसके लिये निर्धारित होती है।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि डा0अम्बेडकर ने अपने राजनीतिक विचारों के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया। वे राष्ट्रवादी विचारों के व्यक्ति थे। उन्होने समाज व्यवस्था को समझने के बाद सामाजिक एकता पर बल दिया। वर्तमान में इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि समाज की मुख्यधारा में लाये बिना सभी का विकास सम्भव नहीं है।[2] उनके विकास का लक्ष्य समाज का अंतिम व्यक्ति होना चाहिये। इसको हम वर्तमान में अन्त्योदय योजनाओं एवं अन्य जगह पर देख सकते है।

उनके विचारों में निजीकरण का विरोध झलकता है। वे मुख्य उद्योगों के सरकारीकरण एवं सामूहिक कृषि के पक्ष में थे, ऐसा होने के पीछे उनका तत्कालीन जमींदारी एवं सामंतशाही से विरोध झलकता है, परन्तु वे मार्क्सवाद के

---

1. ओ0 पी0 गाबा, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा पृ0 – 426
2. सूचना एवं जनसंपर्क विभाग (उ0प्र0), सामाजिक न्याय की नई पहल पृ0 – 01

विरोधी थे। वे मार्क्सवाद को भी शोषण का एक रूप मानते थे, जिसमें क्रान्ति की अग्रपंक्ति साभ्राँतजन में बदल जाती है। वे राज्य चलाने के लिये नियमित करारोपण जरूरी मानते थे।

डा0 अम्बेडकर प्रजातांत्रिक सरकारों की कमी से परिचित थे, इसीलिये उन्होने साधारण कानून की बजाय संवैधानिक कानून को महत्व दिया। वर्तमान में हम देखते हैं कि किस प्रकार सरकारें अपने स्वार्थ के लिये कानूनों की मनमानी व्याख्या करना चाहती है, इसके लिये हम उ0प्र0 में अतिपिछड़ों एवं अतिदलितों के आरक्षण को ले सकते है, जो सरकारों के हिसाब से तय होते है।

डा0 अम्बेडकर का विचार सही था कि जाति समाज में विघटन पैदा करती है, वर्तमान में सम्पूर्ण राजनीतिक परिदृश्य जाति के रंग से रंगा है, जो देश का सामाजिक वातावरण दूषित कर रहा है। जाति व्यक्ति, देश एवं समाज को तोड़ने का माध्यम बन गया है। हर चुनाव में हम इसके प्रभाव को निरन्तर बढ़ते एवं अन्य चीजों को गौड़ होते देख सकते हैं। पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर के यह उद्गार देश के हालात पर ज्यादा सटीक है, "देश की राजनीति तो चल ही रही है, और इसी प्रकार चलती रहेगी, पर जनतंत्र एवं संसद की राजनीति आज कोमा की स्थिति में है"[1] डा0अम्बेडकर इस बात से काफी हद तक परिचित थे। इसीलिये वे शोषणमुक्त एवं सबकी भागीदारी से युक्त समाज चाहते थे। इस प्रकार हम देखते है कि डा0अम्बेडकर के विचार वर्तमान में भी काफी प्रासंगिक है। उनके क्रियान्वयन से कई समस्यायें हल हो सकती है।

---

1. इण्डिया टुडे, 10 जुलाई 2002 पृ0 - 08

न्याय एवं शान्ति :–

डा0 अम्बेडकर का समाजवाद के प्रति झुकाव था, परन्तु वे सर्वहारा वर्ग की तानाशाही पर विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार इसी समाज में न्याय की संभावनाएं आदर्श एवं यथार्थ में संतुलन होने पर बढ़ जाती है, किसी भी न्यायिक व्यवस्था का आधार जन्म न होकर कर्म होना चाहिए। जाति भावना से आर्थिक विकास रूकता है।[1] न्याय का मुख्य कार्य सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों में संतुलन, समायोजन एवं सहयोग तथा भ्रातृत्व भाव होना चाहिए। डा0 अम्बेडकर के अनुसार जहां सभी क्षेत्रों में अन्याय, शोषण एवं उत्पीड़न होगा, वहीं सामाजिक न्याय की धारणा जन्म लेगी। न्याय ने सदैव समानता, क्षतिपूर्ति के समानुपात के विचारों को जागृत किया है। समदृष्टि समानता की ओर संकेत करती है। नियम, संयम व सदाचरण का मूल्य में समानता से सम्बन्ध होता है, यदि सभी आदमी समान हैं, तो सभी मानव एक ही सारतत्व के है और वह समान सारतत्व उन्हें समान मौलिक अधिकारों और समान स्वतंत्रता के लिए अधिकारी बनाता है। इस विवेचना में कई बातें अन्तर्निहित है।

डा0 अम्बेडकर के चिंतन का मुख्य बिन्दु मानव है। उनकी दृष्टि में मानव और समाज का अध्ययन मुख्य है, बाकी सब गौण है। वे किसी भी क्षेत्र में निरपेक्षतावाद को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने भारतीय समाज में आदमी को तड़पते और उत्पीड़ित होते देखा। वे राज्य में न्याय और शान्ति की स्थापना के लिए सामाजिक नियमों और बन्धनों से आक्रांत व्यक्तियों को सामाजिक आजादी

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 114

दिलाने के लिए संकल्पित थे। सामाजिक दासता भारतीय समाज की नियति थी। डा0 अम्बेडकर सामाजिक अधिकारों के सजग प्रहरी थे। वे भारतीय समाज में समन्वय लाना चाहते थे। उन्होंने जाति एवं वर्ण से ग्रसित राष्ट्र का गहराई से अध्ययन किया था। वस्तुतः समाज की दशा देखकर वे इसे सुधारना नहीं वरन् बदलना चाहते थे। उनकी कल्पना के समाज का आधार स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा था।

डा0 अम्बेडकर के अनुसार लोगों को समाज के आदर्शों और नियमों का अनुसरण आवश्यक रूप से करना चाहिये परन्तु वे चेताते हैं, कि समाज के नियमों को स्थिर नहीं रहना चाहिये। डा0 अम्बेडकर के अनुसार समाज व्यक्तियों से उच्च नहीं है। समाज और व्यक्ति अभिन्न है और डा0 अम्बेडकर इसके मध्य के अनुयायी थे, वे समाज और व्यक्ति में समन्वय के पक्षपाती थे। वे रूढ़ियों में सुधार चाहते थे। डा0 अम्बेडकर निरपेक्ष स्वतंत्रता के पक्ष में नही थे। उनका मंदिर प्रवेश का आन्दोलन वंचितों को ऊर्जा देने का उपाय था। उन्होंने कहा कि किसी भी आन्दोलन का उद्देश्य समाज सुधार और व्यक्ति सुधार होना चाहिये। वे समाज से बुराइयां मिटाने को सबसे बड़ी सेवा मानते थे। उनके अनुसार समाज का विरोध सरकार के विरोध से कठिन कार्य है।

समाज में समानता का स्थान सर्वोच्च होना चाहिये। डा0अम्बेडकर के अनुसार समानता के बिना समाज ऐसा है, जैसे बिना अस्त्र–शस्त्र के सेना। वे समानता को समाज के लिये प्राण वायु मानते थे। समानता को समाज के स्थाई निर्माण के लिये धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक क्षेत्र में तथा अन्य क्षेत्रों में लागू करना आवश्यक है।

जागृति, परिवर्तन समाज के लिये आवश्यक तत्व है। जिस समाज में जागृति है, जो समाज समय के अनुसार चलता है, बदलता है, वह आदर्श होता है न्याय की भावना भी उसी में स्थिर हो पाती है। निम्न वर्ग ने शोषण में पिसते–पिसते अधिकारों के प्रति चेतना खो दी थी। कालान्तर में वह वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन मूल्य भी खो बैठा और भूल गया कि वह भी दूसरों की तरह इंसान है। इस प्रकार यह वर्ग न्याय से वंचित हो गया।

डा0अम्बेडकर ने धर्म की उपयोगिता को कभी नही नकारा। वे मानते थे कि धर्म की स्थापनायें जीवन के लिये उत्प्रेरक सिद्ध होती है,इसी कारण से वे मार्क्सवाद के पक्ष में नहीं थे। वे सरकार को दलित वर्गों के हितों की रक्षा एवं उनकी सुरक्षा के लिये मंत्री स्तर का एक संपृक्त विभाग स्थापित करने को कहते थे और चाहते थे कि उस मंत्रालय का कार्य कानून को व्यवहार को बदलना हो और यदि उसमें रूकावटें हो तो सशक्त क्रियान्विति के लिये तत्काल कार्यवाही प्रारम्भ करने का प्रयास करें। उसके लिये गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार हो कि वह आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप कर सके और प्रत्येक प्रान्त में दलित वर्ग के लिये 'वेलफेयर ब्यूरो' सक्षम अधिकारी की देखरेख में खुलवा दें और उससे सम्बन्धित मंत्रालय के सहयोग से कार्य करें।

जब तक समाज के एक वर्ग द्वारा दमन और दुर्व्यहार जारी है,

तब तक भारत में एक मुक्त समाज की स्थापना नहीं हो सकती।[1] सामाजिक न्याय की दृष्टि से वर्ण, वर्ग एवं आय के आधार पर समाज में भेद मानना समाज के लिये अत्यंत हानिकारक है।[2] डा0 अम्बेडकर एक ऐसे न्यायप्रिय विद्वान थे जिन्होने न्याय की धारणाओं को नया रूप दिया। उन्होने स्वयं सामाजिक अन्याय का अनुभव किया, उसकी पीड़ा को भोगा और उसके क्रूर प्रहारों को न केवल सहन किया, वरन् साहसपूर्वक उनका सामना किया।

सामाजिक न्याय मानव व्यक्तित्व की गरिमा में अर्न्तनिहित विचार है। न्याय सामान्यतः स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का दूसरा नाम है।[3] जिसे उन्होनें संविधान का मुख्य निर्माता होने के नाते न्याय, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व एवं आदमी की गरिमा पर निर्धारित किया। यह मूल्य सम्पूर्ण मानवता का प्रतिनिधित्व करते है। सामाजिक न्याय की धारणा के अनुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उचित (जन्म आधारित नहीं) स्थान मिलना चाहिये।

इस प्रकार डा0अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय के प्रमुख तत्व निम्नांकित है– सम्मानपूर्वक रहें और रहने दें, किसी के प्रति हिंसा न की जाय, स्थायी अथवा तथाकथित स्वाभाविक वर्गों में बाँटे बिना प्रत्येक को अपना विवेकपूर्ण हिस्सा मिले, संवैधानिक शासन के प्रति निष्ठापूर्वक रहना, विधि के समक्ष समानता, समान अधिकारों की स्वीकृति, संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वाह सामाजिक दायित्वों और विधिक कर्तव्यों की अनुपालना, कुछ प्राथमिकताओं सहित सभी को समान अवसर,सम्पति, शिक्षा की उपलब्धता और अन्ततः न्याय, स्वतंत्रता, समता, भातृत्व एवं राष्ट्रीय एकता सहित मानव–व्यक्तित्व की गरिमा है।

---

1. डा0 अम्बेडकर, दलित जन उभार — पृ0 - 85
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 - 132
3. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड-3 — पृ0 - 25

सामाजिक न्याय का पक्ष यह है कि भारत के सभी वर्गो और धर्मो के वीच मानव मूल्यों और आधारों की बहुलता हो जिनसे समाज की व्यवस्था न्यायोचित बने और राष्ट्रीय जीवन समरसता की दिशा में बढ़े। वर्णाश्रम धर्म सामाजिक न्याय के सार तत्व का विरोधी है। उनके सामाजिक न्याय की धारणा भारत के सभी नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने के लिये समान नागरिक संहिता में अटूट विश्वास रखती है। इससे भी अधिक वे भारतीय परिस्थिति में भ्रातृत्व भाव पर बल देते है। भ्रातृत्व सामाजिक न्याय की आधार शिला है, इसके कारण दूसरों की भलाई के लिये स्वभावतः एवं अनिवार्यतः हमारे अस्तित्व की भौतिक दशाओं की ओर ध्यान देना पड़ता है, इसके कारण व्यक्ति शोषण से दूर रहता है। डा0अम्बेडकर किसी भी स्तर पर असमानता नहीं चाहते थे।

इस प्रकार सामाजिक न्याय और शांति की धारणा सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत है। इस प्रकार सामाजिक न्याय की धारणा को सतत् बनाये रखना होगा। डा0अम्बेडकर के इस मार्ग पर चलने के लिये त्याग, शिक्षा, संगठन, संघर्ष, दायित्व, कर्तव्य, निष्ठा, संयम और साहस की जरूरत है, इस प्रकार न्याय की धारणा सामाजिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, उनके न्याय की समझ, समता एवं सक्रियता पर निर्भर करती है।

डा0अम्बेडकर चिंतन के क्षेत्र में दलित वर्ग के वर्गीय पक्षधरता के सशक्त दार्शनिक एवं आधुनिक किवंदती बन चुके है। डा0अम्बेडकर ने पूर्व के चिंतकों को पढ़ा एवं आत्मसात् किया है। सामाजिक अन्याय को व्यक्तिगत जिंदगी

में भोगा है। बुद्ध, कबीर एवं फुले से प्रभावित होने की बात कही है। दर्शन से राजनीति तक का उनका चिंतन इस प्रभाव को चिन्हित करता है। 'मनु' से उनका मतलब विषमता की भावना से था जो गंगादीन सवर्ण एवं रामदीन अवर्ण दोनों के मन में मौजूद है। उन्होंने सवर्णों को अवर्ण और अवर्णो को सवर्ण बनाने का प्रयास कभी नहीं किया। वे जीवन के अंतिम समय तक भारत में जातिविहीन समाज का स्वप्न देखते रहे।

वे आदर्श एवं यथार्थ को संतुलित करने के हिमायती थे। उनके चिंतन का केन्द्र विन्दु मानव एवं उसका सर्वागीण विकास है। सामाजिक न्याय तभी संभव है, जब कर्म का आधार योग्यता हो। देखा जाय तो वर्तमान में तमाम परिवर्तनों के बाद भी गांवों की मानसिकता बदली नहीं हैं। गांवों में भेद को सामाजिक मान्यता बरकरार है इसका काफी बड़ा कारण आर्थिक हो गया हैं। कई जगह अति की प्रक्रिया उलटी भी है। ऐसी खबरें भी है कि दलित बहुल गाँवों में सवर्णो की बहू–बेटियों के साथ अत्याचार हुए पर ऐसी घटनायें कम ही हैं। इस प्रकार एक अति के जवाब में दूसरी अति बाबा साहब के सपनों को नष्ट कर देगी। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में जातीय घृणा के कुछ उदाहरण काफी चौकाने वाले है, जैसे महाराष्ट्र में छगन भुजबल ने फ्लोरा फाउँटेन इलाके में दलितों के प्रदर्शन के बाद शहीद स्मारक को गंगाजल से धोकर शुद्ध किया।[1] महाराष्ट्र में ही 1994 के लगभग विधान सभा के सामने प्रदर्शन कर रहे 130 गोवारी जाति के लोगों को गोली मार दी गई।[2] इस प्रकार सामाजिक न्याय का हिसाब– किताब रखते समय हमें इसकी प्रगति न्यूनतम दिखाई पड़ती है। जब हम एक जगह पढ़ते है। कि शोषण में जातिरंग भी मिला

1. दैनिक जागरण (कानपुर), 11/09/1997
2. वही, 11/09/1997

होता ~~होता~~ है। राजस्थान की एक मात्र दलित महिला न्यायाधीश सुशीला नागर (परिवर्तित नाम) उस मानसिकता को धिक्कार रहीं है, जिससे वे कथित रूप से 9 वर्षो से जूझ रहीं है। पिछले वर्ष इस्तीफा देने वाली नागर कहती हैं, "मेरे पुरूष सहयोगियों की यह मानसिकता है कि दलित महिलायें सहज सुलभ होती है।"[1]

इस प्रकार हम देखते है कि आज भी इस बात के काफी उदाहरण है, जो डा0अम्बेडकर के सपनों के सामाजिक न्याय को पूरी तरह से नहीं दर्शाते। समाज की कथनी–करनी में काफी अन्तर है। आज भी एक व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन में छुआछूत बरतता है एवं परमार्थिक दृष्टि से अद्वैत ब्रह्म का प्रचार करता है। इसी प्रकार एक दृष्टि और सामने आती है, जो विभिन्न राजनीतिक दलों एवं नेताओं के क्रियाकलापों से स्पष्ट होती है कि सामाजिक न्याय का अर्थ वर्तमान में मात्र वोटों का हिसाब–किताब रह गया है। पर ऐसी कोई व्यवस्था जो भेदभाव पर आधारित हो ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकती। डा0अम्बेडकर प्रतिभा एवं प्रज्ञा के धनी थे, उन्हें दलितों की चिन्ता थी, सामाजिक न्याय एवं जड़ता के प्रति उनके मन में रोष था। उनका कहना था कि सामाजिक न्याय के लिये परस्पर आस्था का होना जरूरी है। वे व्यक्ति को समाज की इकाई मानकर अपने कार्यो को वहीं से प्रारम्भ करते थे।

संविधान सम्बन्धी :–

डा0अम्बेडकर ने संविधान के द्वारा राजनीतिक,धार्मिक,सामाजिक समता की नीव रखी। ऊँच–नीच, अमीर–गरीब के बराबरी के स्तर के लिये लड़ाई

---

1. इण्डिया टुडे, 30 जनवरी 2002 पृ0 – 57

लड़ी। उन्होंने संविधान के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक विषमता मिटाने का प्रयास किया। उन्हें संविधान के एकात्मक रूप में विश्वास था। डा0अम्बेडकर संविधान में गणतंत्रात्मक प्रणाली के समर्थक थे। प्रजातंत्र वर्ण जाति के आधार पर भेद नहीं करता। संविधान की स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे की भावना में विश्वास करना चाहिये। विधान को सही तरीके से क्रियान्वित करना ही परिणिति है। वे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में समानता स्थापित करना चाहते थे। संविधान के माध्यम से भारतीय जीवन में व्याप्त भेदभाव एवं गतिरोध समाप्त होना चाहिये।

डा0अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यक सम्बन्धी समिति को एक ज्ञापन दिया था, जिसमें उन्होने अल्पसंख्यक लोगो के कल्याण के लिये निम्न अधिकार दिये जाने की बात उठाई थी।[1]

1. एक समान नागरिक संहिता होनी चाहिये एवं सरकार को दलितों को भय एवं आतंक से बचाना चाहिये।
2. नागरिकों के मूलाधिकारों के हनन पर दण्ड की व्यवस्था हो।
3. विधान सभाओं में दलितों के लिये सुरक्षित स्थान होना चाहिये।
4. सरकारी सेवाओं में भी सुरक्षित स्थान होना जरूरी है।
5. दलित वर्ग की उन्नति के लिये अलग विभाग हों, जो उनके हितों के लिये कार्य करें। इसके लिये मंत्री स्तर का संप्रक्त विभाग होना चाहिये।

उनकी हार्दिक इच्छा थी, वर्तमान भारतीय समाज में बरसों से दलितों के साथ जो असंगत पशुतापूर्ण व्यवहार हो रहा है, वह न हो और वे भी ससम्मान दूसरों की तरह जी सकें। उनमें उत्कट लालसा इस बात की थी कि जीविका

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 126

के लिये होने वाले प्रयासों से व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा हो, न कि जाति या धर्म के कारण। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार लाने के लिये वे कृत संकल्पित थे। यही कारण था कि उन्होने राज्य द्वारा उनके हितों के रक्षार्थ जरूरी पहल किये जाने का प्रावधान संविधान में रखा। उन्होने अपनी उपरोक्त इन माँगों को जितना सम्भव हो सकता था, क्रियान्वित करने का प्रयास किया। वे उस शोषण से लड़ रहे थे जो तमाम दुनियाँ में है।[1] भारतीय संविधान में डा0अम्बेडकर के इन विचारों का समावेश देखने को मिलता है।

संविधान राज्य के अंगो का काम–काज सुचारू रूप से चलाने के लिये एक यंत्र मात्र है। यह कोई ऐसा यंत्र नहीं है, जिसके द्वारा विशेष सदस्यों अथवा दलों का सरकार में चुनाव होता है। राज्य की नीति क्या होनी चाहिये, समाज का आर्थिक ढाँचा कैसा हो, एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान कैसे हो? यह ऐसे विषय है, जिनके बारे में समय एवं परिस्थितियों के अनुसार सोचना चाहिये। डा0अम्बेडकर का कहना था कि संविधान व्यवहारिक, लोचदार एवं देश को शान्ति एवं युद्ध के समय एकताबद्ध रखने में सक्षम हो। डा0अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, केन्द्रीयकृत सरकार एवं धर्मनिरपेक्षता के तत्वों का समावेश करके इसे विशेष महत्व का बना दिया।[2]

मौलिक अधिकारों को उन्होने शासन एवं विधानमण्डल की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश बताया। प्रत्येक मौलिक अधिकार के साथ यह अपवाद जोड़ा गया कि राज्य उस पर तार्किक प्रतिबन्ध लगा सके।

---

1. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, जातिवाद का उच्छेद पृ0 - 09
2. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 - 140

नीति निर्देशक सिद्धान्तों के विषय में डा0अम्बेडकर का कहना था, कि यह संविधान द्वारा विधानमण्डल एवं कार्यपालिका को दिये गये निर्देश है कि वे किस प्रकार संविधान में विहित शक्तियों का प्रयोग करें।

वे अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार लाने के लिये कृत संकल्पित थे। यही कारण था कि उन्होने राज्य द्वारा उनके हितों के रक्षार्थ जरूरी पहल किये जाने का प्रावधान संविधान में रखा।

डा0अम्बेडकर के विचार में सत्ताधारी वर्ग राज्य के माध्यम से एक ऐसे समाज की स्थापना करेगा, जिसमें शोषण, अन्याय, एवं दमन का अंत हो और सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधनों का कुछ ही हाथों में एकत्रीकरण न हो। राष्ट्रीय संसाधनों का न्यायोचित वितरण हो। सभी के जीवन के हितों की रक्षा हो, सभी को समान अधिकार मिलें। संविधान एवं जनप्रतिनिधियों का सहयोग जरूरी है।

उनके अनुसार संविधान निर्माताओं का लक्ष्य यह भी था कि आर्थिक प्रजातंत्र के आदर्शो की रक्षा के लिये संविधान में ठोस कार्यक्रम का उल्लेख किया जाय। उनकी इच्छा थी कि प्रत्येक सरकार आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना का प्रयास करेगी। आर्थिक प्रजातंत्र तक पहुँचने के मार्ग में विभिन्न विचारधाराओं के व्यक्तियों के लिये पर्याप्त जगह छोड़ दी गई है, उन्हें आर्थिक प्रजातंत्र स्थापित करने की स्वतंत्रता है। लोंगों को अपने तरीके से कार्यपूर्ण करने का अवसर है।

डा0 अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के माध्यम से अन्याय,

अत्याचार, अमानवीय पीड़ायें दूर कर अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों को आगे लाने के प्रयास किये। वे संविधान का प्रयोग सामाजिक मुक्ति के लिये कर रहे थे। उनकी महत्वपूर्ण देन सामाजिक समस्याओं के दीर्घकालिक सार्वकालिक निराकरण के लिये संवैधानिक संरक्षण था। उनका यह प्रयास 15 मार्च 1947 को संविधान निर्मात्री सभा को शेड्यूल कास्ट फैडरेशन की ओर से सौंपा जाने वाला यह ज्ञापन था जिसमें 21 मूल अधिकार एवं अन्य अधिकारों की भी चर्चा थी। इसके अधिकाँश बिन्दुओं को बाद में भारतीय संविधान में शामिल कर लिया गया।

भारतीय संविधान में प्रारब्ध का कोई स्थान नहीं है। वे राष्ट्रीय सम्पदा का नियंत्रण इस प्रकार करना चाहते थे कि सामूहिक हित को प्राथमिकता मिले। धन एवं सम्पदा के साधनों का कुछ हाथों में एकत्रीकरण न हो।[1] वे चाहते थे कि सभी को न्याय मिले, निर्धनों को विधिक सहायता, शिक्षा एवं काम का अधिकार हो, नागरिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठे, पर्यावरण का सुधार एवं संरक्षण हो। सहकारी फार्मों में खेती का सोवियत तरीका (तत्कालीन समय का) उनकी नजरों में सर्वोत्तम था। वे अनुसूचित जातियों, जनजातियों, एवं पिछड़ों का संरक्षण चाहते थे।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्तों आदि से संबंधित विविध अध्यायों में हमें डा0 अम्बेडकर के विचारों का सशक्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे प्रत्येक नागरिक को समान माना गया है।[2] संविधान ने धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के भेद को रोकने का प्रयास किया है।[3] इसी प्रकार लोक नियोजन के विषय में भी अवसरों की

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, दलित साहित्य पृ0 – 86
2. अनुच्छेद – 14
3. अनुच्छेद – 15

समानता को प्रस्थापित किया गया है।[1] डा0अम्बेडकर ने समाज के दंश अस्पृश्यता का भी अंत करने का प्रयास किया है।[2] इसके अंत से ही प्रगति संभव है। उपाधियों का अंत भी एक ऐसा कार्य है, जिसकी प्रत्याभूति संविधान देता है।[3] भारतीय संविधान ने मानव के दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम को भी प्रतिषेधित करने का कदम उठाया है।[4] संविधान के अन्तर्गत कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध किया गया है।[5] संविधान के अन्तर्गत इन मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिये इसके उपचारों की व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया गया है।[6] डा0अम्बेडकर ने इस भाग को संविधान की आत्मा एवं हृदय की संज्ञा दी है।

इसके अलावा नीति–निर्देशक तत्वों में भी इसी के समकक्ष कुछ व्यवस्थायें की गई है। जैसे गरीबों को निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था हैं।[7] एक अन्य व्यवस्था के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, एवं अन्य दुर्बल वर्गो के शिक्षा सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि का उपबन्ध है।[8] किसी भी व्यक्ति को धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र नहीं ठहराया जा सकता है।[9]

दलित वर्ग को उच्च वर्ग के समकक्ष विकास की धारा में शामिल करने के लिये लोकसभा में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थानों का आरक्षण किया गया है।[10] इसी प्रकार राज्य विधान सभाओं में भी अनुसूचित

---

1. अनुच्छेद - 16
2. अनुच्छेद - 17
3. अनुच्छेद - 18
4. अनुच्छेद - 23
5. अनुच्छेद - 24
6. अनुच्छेद - 32
7. अनुच्छेद - 39 (क)
8. अनुच्छेद - 46
9. अनुच्छेद - 325
10. अनुच्छेद - 330

जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान का आरक्षण किया गया है।[1] एक व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानों के आरक्षण एवं विशेष प्रतिनिधित्व के पचास वर्ष बाद न रहने की व्यवस्था की गई है।[2] सेवाओं एवं पदों के लिये भी अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के दावे को सुरक्षित किया गया है।[3] अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों आदि के लिये विशेष अधिकारी की बात कही गई है।[4]

संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में भी संघ के नियंत्रण को स्पष्ट किया गया है।[5] भारतीय संविधान में पिछड़े वर्गों की स्थिति से चिंतित होकर उनकी दशाओ के अन्वेषण के लिये आयोग की नियुक्ति की गयी है।[6] डा0 अम्बेडकर ने उपरोक्त अनुच्छेदों के माध्यम से अपने सपनों को क्रियान्वित करने का प्रयास किया है।

डा0 अम्बेडकर केन्द्र को राज्यों के मुकाबले में अधिक अधिकार देना चाहते थे। मजबूत केन्द्र के सम्बन्ध में उनका विचार था कि भारत एक संघ है, पर यह संघ किसी समझौते का परिणाम नहीं है। किसी राज्य को पृथक होने का अधिकार नहीं है। उन्होने जोर देकर कहा कि सुदृढ़ केन्द्र आधुनिक परिस्थितियों की माँग है। संघ अविनाशी होना चाहिये। देश को प्रशासन की सुविधा के लिये विभिन्न इकाइयों में बाँट दिया गया है, पर यह यह एक अखण्ड एवं पूर्ण इकाई है। इसके लिये लोग एक ही स्त्रोत से निकली हुई परम् सत्ता या प्रभुत्व शक्ति के अधीन निवास करते है।

---

1. अनुच्छेद - 332
2. अनुच्छेद - 334
3. अनुच्छेद - 325
4. अनुच्छेद - 338
5. अनुच्छेद - 339
6. अनुच्छेद - 340

अमेरिका निवासियों को यह स्थापित करने के लिये गृह युद्ध करना पड़ा कि राज्यों को केन्द्र से अलग होने का कोई अधिकार नही है। उनका संघ अविनाशी है। हमारे देश में प्रारूप समिति ने सोचा कि इस बात को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देना अधिक अच्छा है, बजाय इस बात के, कि इसे अटकलबाजी या कल्पना पर छोड़ा जाय।[1] इस प्रकार भारतीय यूनियन अविनाशी है। डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि राज्यों एवं यूनियनों का इकट्ठा संविधान है, जिससे कोई अलग नहीं हो सकता और जिसके अन्दर रहकर दोनों को कार्य करना चाहिये।

डा0 अम्बेडकर की एक महत्वपूर्ण देन यह है कि 552 देशी रियासतें संविधान के अधीन शेष भारत में विलीन हो गई। यह समस्या जिसे 1935 का संविधान हल नहीं कर सका, उसे हमारे संविधान निर्माताओं ने पूरा कर दिया। पूरा भारत एक हो गया। एक राज्य के रूप में एकीकृत हो गया। यह विश्व इतिहास में अभूतपूर्व है।

संविधान की रचना में दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों से काम लिया गया। एक यह है कि सभी निर्णय बहुमत की बजाय सहमति से किये जायें। दूसरा समझौते की भावना अर्थात अल्पमत वालों का ज्यादा ध्यान रखना। यह दोनों बातें भारत की मौलिक देन है, पर अल्पमत की भावनाओं का विचार करते हुये भी उन्होने आनुपातिक प्रतिनिधित्व, अप्रत्यक्ष चुनाव, अल्पसंख्यक महजबों को विशेष प्रतिनिधित्व और स्विट्जरलैण्ड जैसे मंत्रीमण्डल आदि अल्पमतों के विशेष संरक्षण उपायों को नहीं अपनाया, क्योंकि अलगाववाद की प्रवृतियों को काबू में रखना चाहते थे।

---

1. संवैधानिक असेम्बली डिबेट्स, वॉल्यूम VII पृ0 – 43

संविधान के सम्बन्ध में डा0 अम्बेडकर ने विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि अब यह संविधान पूर्णतया व्यवहार जनक है, यदि नवीन संविधान के अन्तर्गत कुड त्रुटियां हों तो उनका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब है, वरन् हमें यह कहना पड़ेगा कि मानव स्वभाव दुष्ट है।

डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने 26 नवम्वर 1949 को कहा था कि जिन व्यक्तियों का निर्वाचन किया जाता है, यदि वे योग्य, चरित्रवान एवं ईमानदार हैं, तो वे एक दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम संविधान बना सकेंगे। यदि उनमें गुणों का अभाव होगा, तो वह संविधान देश की सहायता नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार नाना पालखीवाला ने संविधान की विफलता के कारणों की चर्चा करते हुये कहा था हमारे संविधान की नींव जनता की बेवकूफी, राजनीतियों के भ्रष्टाचार के कारण हिल गई है। संविधान की उत्तम प्रक्रियाओं को हमने कायरता, बकवास, स्वाँग, एवं तमाशे के स्तर पर ला दिया है।[1] इस प्रकार हम देखते है कि विफलता का करण सही ढंग से क्रियान्वित न होना है।

डा0 अम्बेडकर ने अथक, अनवरत् एवं कठोर परिश्रम करके संविधान को पूर्ण किया था। डा0राजेन्द्र प्रसाद ने इस पर विचार व्यक्त करते हुये कहा था। कि उन्हें इस बात की कल्पना अधिक है, कि डा0अम्बेडकर ने कितनी निष्ठा, लगन एवं जोश के साथ इस कार्य को पूरा किया।[2] उन्होने इस बात को महसूस एवं व्यक्त किया कि डा0अम्बेडकर को प्रारूप समिति में शामिल करके, एवं फिर उसका अध्यक्ष बनाकर एक अच्छा कार्य किया गया। डा0अम्बेडकर के कार्य की सभी प्रशंसा

1. दैनिक जागरण 17 मार्च 2002
2. वही,

करते है। इसके निर्माण में भारतीय जीवन के विरोधाभास एवं असंगतियों को ध्यान में रखकर ऐसी व्यवस्था की गई कि जिससे विरोधाभास में समतासूत्र स्थापित हो सके एवं भेद रहित समाज का निर्माण हो सके। डा0अम्बेडकर ने भारतीय संविधान की रचना में अभूतपूर्व काम किया था। लगातार तीन वर्षो तक उन्होने जिस तन्मयता के साथ कार्य कर संविधान को रचनात्मक रूप दिया, उसके लिये न केवल भारत वरन् उनको विश्व में यश मिला है। भारतीय संविधान के निर्माण में उनके इस योगदान के कारण भारत के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिख़ा जायेगा।

2. सामाजिक विचारों में योगदान :-

दलितोत्थान सम्बन्धी विचार :-

दलितों के प्रति सहानुभूति रखने के कारण डा0 अम्बेडकर युवावस्था में ही गरीबों के वकील के नाम से मशहूर हो चुके थे। 33वर्ष की अल्पायु में उन्होने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना करके समाजसेवा के क्षेत्र में पदार्पण कर दिया था। इसके बाद चाहे बम्बई विधान सभा हो, चाहे राउण्ड टेबिल कांफ्रेस मंत्री परिषद हो,या संविधान असेम्बली सभी स्थानों पर वे दलितों की जोरदार हिमायत कर रहे थे। संविधान असेम्बली की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होने जो ऐतिहासिक कार्य किया वह आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक क्रान्ति पैदा की, उन्होंने दलित वर्ग को नयी चेतना एवं नयी प्रेरणा प्रदान की। उन्होने सम्पूर्ण जीवन दलितों का बौद्धिक स्तर

उठाने में समर्पित कर दिया। वे घृणा को जातिवाद का मूल मानते थे। वे जाति व्यवस्था को छूआछूत की जड़ मानते थे और इसलिये इसे समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने दलितों को शासन में भागीदारी के लिये तैयार किया। उन्होंने राजनीतिक और धार्मिक शोषण के विरूद्ध जागृति पैदा की और भारतीय समाज में समानता की लड़ाई लड़ी। वे दलितों की माँग को किसी हीनता या हिंसा से नही जोड़ते थे। वे अराजकता का पक्ष भी नहीं लेते थे, उनकी सारी माँगें लोकतांत्रिक ढंग की थी। डा0 अम्बेडकर दलित स्त्रियों की शिक्षा के पक्ष में थे, क्योंकि वे जानते थे कि शिक्षा के बिना स्त्रियों की प्रगति असम्भव है। उनका विचार था कि बहुजनों की देश में सम्पूर्ण भागीदारी के बिना सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बदलाव संभव नहीं है।

मूल्यों की स्थापना मात्र से काम नही चल सकता। मूल्यों और जीवनीय मान्यताओं के प्रति मानव की हर क्षण उतना ही सतर्क और सक्रिय रहना चाहिये, जितना उन मूल्यों की प्राप्ति के लिये संघर्ष करते समय वह था। संघर्ष स्वयं जीवन मूल्य है, उसमें ही मानवीय परिस्थितियों की अनुभूतियाँ सुरक्षित है। डा0 अम्बेडकर का समग्र चितंन और अनुभूति शोषण के विरूद्ध था। वे नवमूल्यवादी नैतिक संस्थाओं की स्थापना करना चाहते थे। उनका इस संदर्भ में नजरिया हर समाज की बेहतरी और सुसंस्कृतता के लिये हर युग में काम में आने वाला है, क्योंकि उन्होंने जीवन मूल्यों की व्याख्या की है। सामाजिक संचेतना का निहायत अर्थवादी और अतिवादी स्वरूप सदियों से किये जा रहे उन परिणामों को मटियामेट कर सकता है, जिनके आधार पर डा0 अम्बेडकर नैतिक मूल्यों की स्थापना समाज में करना चाहते

है। उनकी लड़ाई दलितों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में प्रमुख स्थान दिलाती है।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि छुआछूत को हटाने के लिये राजनीतिक शक्ति बहुत जरूरी है। छुआछूत समस्त सामाजिक व्यवस्था को अस्त--व्यस्त करने वाली है। डा0 अम्बेडकर नही चाहते थे, कि अछूतपन जैसा कोई चिन्ह समाज में दृष्टिगोचर हो। इसी कारण वे गाँधीजी की हरिजन की अवधारणा के खिलाफ थे, क्योंकि उससे अछूत होने का निशान या कलंक नहीं मिटता था। वह अछूतों के बीच परस्पर भेद को भी समाप्त करना चाहते थे।

डा0 अम्बेडकर का अनुचितंन पुस्तकीय की बजाय व्यावहारिकता से प्रभावित था। डा0 अम्बेडकर को दलित वर्ग के कारण जिस मान अपमान को अन्त तक झेलना पड़ा एवं बर्दाश्त करना पड़ा, वही आत्म व्यथा उनके सामाजिक अनुचितंन की पृष्ठभूमि बनी है। डा0 अम्बेडकर हिन्दू समाज में चली आ रही भेदभाव की नीति को समाप्त करना चाहते थे। वे जानते थे कि भारत का भविष्य बहुसंख्यक दलित वर्ग के भविष्य पर निर्भर है।

डा0 अम्बेडकर ने (शूद्रो की खोज) पुस्तक की भूमिका में शूद्रों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुये शूद्रों को आर्यों की जाति का सूर्यवंशी ठहराया है। उनके अनुसार हिन्दू समाज के इतिहास का अधिकांश भाग शूद्रों पर अत्याचार की कहानी है, जिसे उसमें स्थान नहीं दिया गया। उन्होंने महाभारत के शान्ति पर्व के चालीसवें अध्याय के रचयिता का आभार प्रकट करते हुये, इस तथ्य की ओर

ध्यान आकृष्ट करना चाहा कि उसने पैजवन को शूद्र बताकर शूद्रों की उत्पत्ति का मार्ग खोल दिया है। शूद्र नीच नही थे। उन्हें नीच बनाने के लिये रूढ़ियों और कुरीतियों ने नई और जड़ परिस्थितियां पैदा कर दी।

उनका कहना था कि जब एक देश का दूसरे देश पर राज्य करना गलत है, तो एक समाज का दूसरे समाज पर एवं एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर राज करना सही नही हो सकता। सबका विकास के समान अवसर प्राप्त होना चाहिये। सभी की उन्नति से समाज की उन्नति हो सकती है। उन्होंने दलितों के संरक्षण की माँग की थी कि जब तक सामाजिक आधार पर समाज में समानता स्थापित नहीं हो सकती तब तक किसी प्रकार का विकास संभव नहीं है।

डा0 अम्बेडकर ने अल्पसंख्यक उपसमिति में उनके हितों के लिये भावी संविधान में कुछ महत्वपूर्ण योगदान करवाये। उस स्कीम का शीर्षक दिया गया था **" A Scheme of political safe Guards for the protection of the depressed classes in the future constitution of, a self governing india."** तदर्न्तगत दलित वर्ग को समान नागरिकता प्रदान की गयी।

डा0 अम्बेडकर ने दलित भारत को काफी नजदीक से देखा था। वे दलित भारत की स्थापना नहीं करना चाहते थे, वे सिर्फ दलित मुक्ति चाहते थे। दलितों के प्रति उनमें पीड़ा थी। उनका लक्ष्य स्वतंत्रता को समाज के निम्न से निम्नतर व्यक्ति तक ले जाना था। अनवरत् संघर्ष के बाद भी वे अपने जीवन काल में उच्च जातियों के प्रभुत्व को समाप्त नहीं कर सके थे, पर संवैधानिक प्रावधानों के

माध्यम से आज निम्नतम व्यक्ति भी उच्चतम स्थान पर पहुँच रहा है और इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि सत्ता पर ऊँची जाति की पकड़ ढीली हुयी है।[1]

अछूत वास्तविक दास है डा0 अम्बेडकर का विचार था कि अछूतों की सामाजिक स्थिति यह है कि वे अपनी हीन स्थितियों के प्रति कभी शिकायत नहीं करते। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा कि वे ऐसे प्रयास करें कि अन्य जातियों को अपने साथ ऐसा व्यवहार करने के लिये मजबूर करें, जैसा एक इंसान दूसरे के साथ करता है। दलितों के मन में हीन भावना इतनी घर कर गयी थी, कि वे इसलिये जन्में है, उन्होंने कभी यह सोचा भी नही कि उनका निस्तार भी हो सकता है। उन्हें कोई यह नहीं समझा सकता है कि मनुष्य एक ही मिट्टी के बने हैं और उन्हें यह अधिकार भी है कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार की माँग कर सकें। डा0 अम्बेडकर कहते हैं कि अन्य राष्ट्रों की तरह हिन्दुओं में दास–प्रथा नहीं रही है, पर अस्पृश्यता किसी भी स्थिति में दास प्रथा से बुरी नही है।

नागरिकता के अधिकार का अर्थ दलितों को संतोष नहीं दे सकता, जनता का जनता के लिये शासन का अर्थ, अछूतों के लिये समान अवसर नहीं हो सकता, सभी के लिये समान अधिकारों का अर्थ दलितों के लिये नहीं हो सकता, डा0 अम्बेडकर के अनुसार पूरे देश में अछूतों को असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, भेदभाव भुगतना पड़ता है। अछूतों के प्रति होने वाले अन्यायों का सामना करना पड़ता है, इस प्रकार वे भारत में, अछूतों को सर्वाधिक तिरस्कृत व्यक्ति मानते थे।

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 147

उनके चिन्तन का प्रमुख उद्देश्य यही था कि मानव जाति शोषण की जघन्य प्रवृत्ति से अपने आप को मुक्त कर सके और स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। इस दृष्टि से उन्होंने हिन्दू धर्म की तकलीफे सहते हुये भी धर्म की उपयोगिता को नही नकारा। धर्म मानव के जीवन की धुरी है। उसके द्वारा मानव निरन्तर उदातोन्मुखी होता जाता है और उसकी संस्थापनायें जीवन के लिये उत्प्रेरक सिद्ध होती है। यही कारण है कि दलित वर्ग के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाने पर भी मार्क्सवाद उनको प्रभावित नहीं कर सका था और उसके लिये स्वयं रास्ता निकालने के लिये उन्हें सोचना पड़ा।

स्वस्थ समाज के बिना विकास की स्थिति की अनुभूति मानव की नहीं हो सकती। समाज की संरचना समता की भूमि पर ही संभव है। समता तभी संभव है, जब कि उस समाज के लोगों का दृष्टिकोण भेदभावपूर्ण न हो और वे एक दूसरे के सहायक सिद्ध हों। उनमें नागरिकता के गुणों का निरन्तर संवर्द्धन होता रहे। डा0 अम्बेडकर ने दलितों से कहा था कि उन्हें लक्ष्य प्राप्ति के उपायों को जानना चाहिये। डा0 अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद का अर्थ स्पष्ट किया था कि उससे अर्थ एक समुदाय के रूप में ब्राह्मणों की शक्ति, हितों एवं विशेषाधिकारों से नहीं है। यह मापना नहीं है, जिसको लेकर वे शब्द का प्रयोग करते हैं। ब्राह्मणवाद से उनका अभिप्राय स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव की भावना के निषेध से है, इस अर्थ में ब्राह्मणवाद सभी वर्गों में व्याप्त है और मात्र ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं है। हांलाकि उनके विचार से यही लोग उसके जन्मदाता रहे है। ब्राह्मणवाद का

प्रभाव सामाजिक अधिकारों जैसे अर्न्तजातीय खानपान और विवाह तक ही सीमित नहीं था वरन् उसने लोगों को नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा।

वे मानववादी मूल्य एवं दर्शन के संस्थापक एवं अनुयायी थे, उन्होंने सामाजिक संचेतना पैदा की। एक ऐसा समाज जो भय और भेद पर आधारित नहीं हो, की नींव रखी। उन्होंने बताया कि अस्पृश्यता के उन्मूलन के बिना हिन्दू धर्म का उद्धार संभव नहीं है, उन्होंने दलितों की समस्या का राजनीतिकरण किया तथा उसे राजनीतिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर लड़ा। उनके विचार विचारक, सुधारक और कानूनवेत्ता के हर आयाम में है। वास्तव में वे समाज को सुधारना नहीं वरन् बदलना चाहते थे। दलितों का संघर्ष कर स्वयं न्याय पाने योग्य बनना होगा, यह उनका कथन मात्र नहीं था, वरन् कर्मठ क्रियान्विति थी।

डा0 अम्बेडकर ने मानव–प्राणियों के एक बड़े भाग को दरिद्र एवं दयनीय दशा में देखा। उन्होंने पाया कि अधिसंख्य लोग पद–दलित और उत्पीड़ित है, उन्हें निर्धनता, अज्ञानता, अशिक्षा, जाति एवं छुआछूत की बुराइयों ने घेर रखा है। मानव को इन बुराईयों का अंत करना चाहिये। इस प्रकार मानव अस्तित्व का औचित्य शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, असमानता और जातिगत भेदभाव एवं छुआछूत जैसी अनेक बुराइयों के सुधार और उनके प्रति विद्रोह में अर्न्तनिहित है। उन्होंने दलितों के लिये तीन त्रयी संघ बताये–

1. शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष
2. स्वतंत्रता, समता एवं भ्रातृत्व
3. बुद्ध, धम्म व संघ

डा0 अम्बेडकर ने दलितों की पीड़ा को सहा, निर्धनता की दुर्गति को झेला एवं दुःख का स्वयं अनुभव किया। इसके आधार पर उन्होंने समय एवं स्थान विशेष के अनुसार इस सामाजिक त्रयी को अपनाया। वे अछूतों के लिये व्यवहारिक, यथार्थोन्मुखी एवं सहज कार्य करना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष का रास्ता दिखाया। डा0 अम्बेडकर ने दलितों के शिक्षित होने पर जोर दिया। उनका विचार था कि शिक्षा से जागरूकता आती है। जागरूकता ही लोगों को संगठित होने के लिये प्रेरित करती है। संगठन ही लोगों को संघर्ष के लिये मंच देता है। संगठन के द्वारा ही व्यक्ति संघर्ष के लिये तैयार होता है। यह सिद्धान्त न केवल दलित वरन् हर किसी के लिये भी उपयोगी हो सकते है।

वे दलित वर्ग में स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे का भाव पैदा करना चाहते थे। मानव एवं समाज का सामंजस्य तथा संतुलन स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे की भावना में ही साकार हो सकता है। उनका मानना था कि नियंत्रित मन ही व्यक्ति एवं समाज के मध्य सेतु का कार्य कर सकता है। इससे भाईचारे की भावना पैदा होती है। वे मानव के मध्य के सम्बन्धों को महत्व देते थे। इस सम्बन्ध में स्वतंत्रता समता एवं भाईचारे का प्रमुख स्थान है।

डा0 अम्बेडकर का अन्य त्रयी सिद्धान्त बुद्ध, धम्म एवं संघ में निहित है। मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में इस त्रयी सिद्धान्त का प्रमुख स्थान है।[1] डा0 अम्बेडकर ने बुद्ध की शरण ज्ञान के प्रतिरूप के रूप में ली थी, वे ज्ञान को समस्त अंधविश्वास एवं बुराइयों के रूप में देखते थे। ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति उत्तरदायित्व

---

1. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर के त्रयी सिद्धान्त पृ0 - 31-44

का निर्वाह कर सकता है। धम्म को वे मजहबी संघ से भी आगे नैतिक कर्तव्य के रूप में स्वीकारते थे। एक ऐसा नैतिक कर्तव्य जो बुद्ध की शिक्षाओं पर आधारित है। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर की दृष्टि नैतिक थी। 'संघ' से डा0 अम्बेडकर का अभिप्राय ज्ञान एवं कर्तव्य के प्रति उनकी रूचि का परिचायक था। संघ को वे एक समूह एवं कर्मकाण्ड के रूप में न देखकर, एक ऐसे संगठन के रूप में देखते थे, जहाँ व्यक्ति स्वयं को जान सके। मानव की उचित रूप में खोज कर सकें एवं दूसरों को बुद्ध मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित कर सकें।

इस प्रकार उनका एक अन्य योगदान दलितों को स्वयं सहायता के लिये प्रेरित करना था। वे दलितों को मस्तिष्क, हृदय एवं हाथ द्वारा मानवाधिकारों को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट करना चाहते थे। वे सम्मान को सुरक्षित रखना चाहते थे। इस प्रकार उनका दर्शन ज्ञान, नैतिक कर्तव्य एवं सामूहिक दृष्टिकोण का परिचायक है, ताकि मानव एवं दलितों के प्रश्न को उचित ढंग से सुलझाया जा सके।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि एक ओर भौतिक मूल्यों का अतिवादी प्रयोग आदमी को पथभ्रष्ट बनाता है, तो दूसरी तरफ तात्विक, पराप्राकृतिक एवं दिव्य मूल्यों में आस्था आदमी को काल्पनिक लोक में ले जाती हैं, जो यथार्थता से दूर एवं इंसानियत को पैदा करने वाली नहीं होती। इन दोनों की तुलना में केवल मानवीय मूल्य ही आदमी को आदमी बनाते है, उसे धरती पर रखते है। उनमें समरसता एवं बंधुत्व स्थापित करते है। यह मूल्य ही दलितों, कमजोर एवं पिछड़े वर्गो को

मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते है। भौतिक मूल्यों की बहुलता या उनका अतिवादी प्रयोग उन्हें पुनः पतनावस्था में डाल देगा और दिव्य मूल्यों में आस्था मायाजाल में फँसा कर भ्रमित करती रहेगी। डा0 अम्बेडकर के अनुसार दलितो को स्वयं असली आदमी बनकर नये मानव का निर्माण और नये समाज को स्थापित करना है। व्यक्ति यदि संकल्पित हो और सामाजिक मुक्ति को संभव बनाना चाहे तो डा0 अम्बेडकर के मूल्यों का अनुकरण ही उन्हें सफल बना सकता है।

उन्होंने दलितों को मानव अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। उन्होंने तत्कालीन सरकार पर जोर डाला कि वह अछूतों की सुविधा के लिये बनाये गये नियमों के पालन की ओर ध्यान दें। उन्होंने दलित वर्गों के आत्मसुधार पर ध्यान केन्द्रित किया एवं उन्हें मदिरापान तथा गौमाँस छोड़ने की सलाह दी, उन्होंने दलितों को सूत्र दिया था कि जो संघर्ष करता है, वह अकेले उन्नति कर लेता है। और असहाय रहने के दिन अब समाप्त हो गये है, एक नये अध्याय का प्रारम्भ करो। देश की राजनीति और विधान में भाग लेने की क्षमता अब दलित वर्ग में आ गई है। इसलिये दलित वर्ग के लिये अब सब कुछ सम्भव है। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह एवं खानपान पर भी जोर दिया था। डा0 अम्बेडकर के सभी आन्दोलन उनके समाज सुधार के साक्षी और बढ़ते हुये कदम थे। डा0 अम्बेडकर ने दूसरा विवाह सारस्वत वंश की ब्राह्मण डा0 सविता के साथ किया था।

डा0 अम्बेडकर ने बहिष्कृत भारत के अग्रलेखों में दलित समाज के सवालों की गहराई के साथ जाकर चर्चा की। उन्होंने दलितों, पिछड़ों व मजदूर

वर्ग के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी बुनियादी प्रश्नों पर अपने विचार प्रदर्शित किये। उन्होंने दलित जीवन से जुड़े प्रश्नों को काफी निर्भीकता और व्यापकता के साथ रखा। तत्कालीन समाज का कोई भी अध्ययन या चर्चा उनकी आँखों से ओझल नहीं हो पाया था, वे दलित वर्ग के लोगों का मार्गदर्शन भीं करते रहे और उनकी कमियों को सुधारते रहे।

डा0 अम्बेडकर ने लोगों को उनके अधिकार के लिये संघर्ष करना सिखाया, उन्होंने संगठन की शिक्षा दी, क्योंकि संगठन शक्ति का मूल है। संगठन और संघर्ष शिक्षा से पैदा होता है, इसलिये डा0 अम्बेडकर ने शिक्षा के महत्व की ओर ध्यान केन्द्रित किया, और डा0 अम्बेडकर अपनत्व का भाव लेकर समाज में ठहराव के कारण आये सड़ाँध को रोकने का कार्य अच्छी तरह करते रहे। उन्होंने असमानता, अन्याय, उत्पीड़न एवं अत्याचार के प्रति घृणा दिखाई और उस व्यक्ति या संगठन के प्रति भी जो इनके इस्तेमाल का दोषी हो। वे सामाजिक संगठन के लिये चातुर्वर्ण को सर्वाधिक जिम्मेदार ठहराते थे। वे इसे उस प्रथा की संज्ञा देते थे जो लोगों को सहायक क्रिया कलाप के लिये निर्जीव, पंगु एवं अशक्त कर देती है।

डा0 अम्बेडकर ने दलितों के लिये न केवल विचार वरन् प्रत्यक्ष रूप से भी काफी कार्य किया। उन्होंने उनकी आर्थिक समानता के लिये भी कार्य किया। एवं सामाजिक आन्दोलन के माध्यम से समरसता और एकता का सन्देश दिया।

अष्टम अध्याय

डा० अम्बेडकर के विचारों की समीक्षा

(१) महात्मा गाँधी एवं डा० अम्बेडकर के विचारों की तुलनात्मक समीक्षा

(२) भारतीय राजदर्शन को डा० अम्बेडकर के योगदान की समीक्षा

(३) डा० अम्बेडकर के विचारों की आलोचना, प्रत्यालोचना एवं निष्कर्ष

1. महात्मा गांधी एवं डा0 अम्बेडकर के विचारों की तुलनात्मक समीक्षा

सामाजिक उत्थान के क्षेत्र में सवर्ण होते हुए भी दयानन्द सरस्वती एवं विवेकानन्द ने महत्वपूर्ण कार्य किया, वहीं महाराष्ट्र में ज्योतिबाफुले एवं केरल में नारायण गुरू उल्लेखनीय दलित उद्धारक थे, फिर ईसाई मिशनरियों का दोहरा प्रभाव था कि, दलितों में स्वयं का नेतृत्व भी उभर रहा था।[1] डा0 अम्बेडकर ने तीन प्रमुख कार्य किये, पहला हिन्दू धर्म शास्त्रों के व्याख्याकारों को चुनौती दी, दूसरा ईसाईयों के धर्मपरिवर्तन आन्दोलन को निष्प्राण किया, तीसरा दलितों में स्वयं के प्रति सम्मान की भावना पैदा कर उनका स्वयं का नेतृत्व पैदा किया।

गांधी जी प्राचीन वर्ण व्यवस्था से सहमत थे, परन्तु आधुनिक जाति प्रथा की आलोचना करते थे और ऊँच नीच के भेद–भाव को गलत मानते थे। उनके अनुसार वर्ण का अर्थ इतना ही है कि हम सब अपने वंश एवं परम्परागत काम को केवल जीविका के लिए ही करें, बशर्ते कि वह नैतिकता के मूल सिद्धान्त के विरूद्ध न हो। गांधी जी का यह भी सोचना था कि जन्म के समय सभी मानव बराबर होते है, एवं किसी मनुष्य की श्रेष्ठता का दावा करना, मानवता को लांक्षन लगाना है। जो अपनी उच्चता का दावा करता है, वह उसी क्षण मनुष्य होने का अधिकार खो देता है। वे मानते थे कि निष्ठापूर्ण सेवा एवं व्यक्ति के गुण, कर्म एवं प्रवृत्ति के अनुकूल ही समाज संगठित एवं संयमित होगा। 16 नवम्बर 1935 के हरिजन अंक में उन्होंने लिखा, "प्रचलित जाति प्रथा वर्णाश्रम के बिल्कुल विपरीत है, अतः इसको जनता जितनी जल्दी समाप्त कर दे, उतना ही अधिक अच्छा है।"[2]

---

1. डा0 धर्मवीर, डा0 अम्बेडकर और दलित आन्दोलन — पृ0 – 12
2. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 – 49

जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नही है। यह आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रीयता दोनों के विकास में बाधक है।

वे अस्पृश्यता को अभिशाप मानते थे। उनके विचार से यह मानव एवं ईश्वर के प्रति एक पाप था, जो विष के समान हिन्दूवाद की मजबूत जड़ों को नष्ट कर रहा है। हिन्दू शास्त्रों में अस्पृश्यता को मान्यता नहीं दी गयी है। गांधी जी के विचार में यह संभवतः उस समय अस्तित्व में आया होगा, जब समाज अपनी निम्नतम अवस्था में रहा होगा। इस धारणा ने सामाजिक प्रगति का मार्ग अवरूद्ध कर दिया है। गांधी जी की छवि एक ऐसे हिन्दू की है, जो हिन्दुत्व के आदर्श रूप तक पहुंचा हो। वह सर्वाधिक असमर्थ, वंचित एवं दलित में ही ईश्वर का सर्वाधिक अंश देखते थे। गांधी जी अस्पृश्यता को कंलक मानते थे, उन्होंने अस्पृश्यता के विरूद्ध आन्दोलन किया। उनका विश्वास था कि यदि हिन्दू समाज अस्पृश्यता की भावना को दूर कर दे, तो वह विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है। वे विविध क्षेत्रों में दलितों की प्रगति के पक्षधर थे। गांधी जी की इच्छा थी कि दलितों को भी मन्दिर प्रवेश का अधिकार मिलना चाहिये।

गांधी जी बार–बार कहते रहे कि हिन्दूधर्म के लिये जीवन मरण का प्रश्न है, यदि अस्पृश्यता बनी रहती है तो न केवल हिन्दूधर्म वरन् पूरा भारत वर्ष समाप्त हो जायेगा। हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता की भावना जड़मूल से उखाड़ फेंकने पर हिन्दू धर्म विश्व को निश्चित संकेत दे सकता है। गांधी जी का विचार था, कि अस्पृश्यता को हिन्दूधर्म का अंग मान लेने पर हिन्दूधर्म मृतप्राय हो जायेगा।

अस्पृश्यता एक घृणित सत्य है। उनके विचारों से आन्दोलन का लक्ष्य यह नहीं है कि हर हिन्दू अछूतों को छूने लगे वरन् यह है कि हर एक हिन्दू अस्पृश्यता को अपने हृदय से निकाल दे और पूर्णरूप से उनका हृदय परिवर्तन हो जाये। वे कहते है कि अस्पृश्यता जैसी बुराई को हिन्दूधर्म के साथ जोड़ देने से दुगनी गलत बात हो जाती है।

वे अस्पृश्यता को शास्त्रोक्त कहने वालों के प्रति भी असहमति दर्ज कराते हैं। पर यदि जनता इस पाप पर प्रायश्चित करे, अपने को सुधारे एवं शुद्ध बनाये, तो इतिहास में इस कार्य का उल्लेख हिन्दुओं के एक सर्वश्रेष्ठ, पवित्र कार्य के रूप में किया जायेगा। समय की गति के कारण अस्पृश्य यदि स्वयं एवं यह अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, तो यह न हिन्दुओं के लिए श्रेयस्कर होगा, न हिन्दूधर्म के लिये।[1] दलितों के लिये मन्दिर खोल देने पर स्कूल, कुंए एवं इसी प्रकार की बहुत सी सुविधाओं के द्वार अपने आप खुल जायेंगे।

गांधी जी का प्रमुख लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ना था, वहीं डा0 अम्बेडकर अंग्रेजों को भारत से बाहर तो खदेड़ना चाहते थे, परन्तु साथ–साथ ही इस बात के लिये भी चेष्टारत् थे कि हजारों सालों से व्याप्त जाति प्रथा रूपी सामाजिक गुलामी से भी मुक्ति मिल जाये। डा0 अम्बेडकर ने अन्याय और अत्याचार को सहा था। जहाँ गांधी जी हृदय परिवर्तन की बात करते थे, वहीं डा0 अम्बेडकर दलितों को संगठित कर अधिकारों के संघर्ष का आवाहन कर रहे थे।

---

1. महात्मा गांधी, दलित जन उभार पृ0 – 112

महात्मा गांधी के अनुसार दलितोद्वार को अनतंकाल के लिये टाला नहीं जा सकता। दलितों के कष्ट निवारण के लिये एक आन्दोलन चलाया जाना चाहिये। उनके विचार से इस कार्य को भी स्वतंत्रता की तरह तुरन्त पूरा करने की जरूरत थी। उनका मानना था कि यदि समाज का सबसे उपयोगी वर्ग ही अपने आवश्यक अधिकारों से वंचित हो जाता है, तो स्वयं स्वतंत्रता का स्वाद फीका पड़ जायेगा। गांधी जी के अनुसार हरिजनों की वास्तविक भूख स्वाभिमान एवं समानतापूर्वक आदमी की तरह रहने की भूख है। मानव के नाते न्यायोचित व्यवहार होना चाहिये। दलितों को भय से मुक्ति, सफाई, मितव्ययिता, परिश्रम एवं शिक्षा की जरूरत है, इसके लिये लोगों को लगन, आत्मत्याग, धीरज एवं बुद्धिमत्ता से काम करने की जरूरत है। उनका कहना था, कि "यदि आप मुझे हरिजनों को खाना खिलाने के लिये रूपया देते है, तो मैं, उसे अस्वीकार कर दूँगा, क्योंकि मैं उन्हें आलसी एवं भिखारी नहीं बनाना चाहता"।[1]

जिस समय डा0 अम्बेडकर का संघर्ष कर्म एवं समाज को लेकर नया मोड़ ले रहा था, गांधी जी ने उन्हें हिन्दूधर्म के लिये चुनौती के रूप में स्वीकारा था,[2] परन्तु इस कारण गांधीजी को मात्र सनातनी हिन्दू कहकर एवं डा0 अम्बेडकर को दलित नेता बनाकर भ्रम की दीवार खड़ा करना बेमानी होगा, जहाँ गाँधी जी ने संकेत दिया था, कि अगर धर्मशास्त्र दलितों के विरूद्ध विचार रखते हैं तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। वे प्रगतिशील थे। डा0 अम्बेडकर यद्यपि दबे–कुचले लोगों को खाई से उबारना चाहते थे, वहीं उन्हें सम्पूर्ण राष्ट्र की चिन्ता थी। फरवरी 1950 को उन्होंने सदन को सम्बोधित करते हुये कहा था कि भारत शताब्दियों के बाद

---

1. महात्मा गांधी, दलित जन उभार पृ0. – 113
2. महात्मा गांधी, हरिजन (1936)

स्वतंत्र हुआ है, स्वतंत्रता की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। भारत में किसी प्रकार की फूट हमारा स्वराज्य छीन लेगी।[1] डा0 अम्बेडकर देश की रक्षा के विषय में एकमत थे। उन्होंने कहा था कि मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि जहॉ तक भारत की रक्षा का प्रश्न है, यद्यपि सवर्ण हिन्दुओं से मेरा कुछ बिन्दुओं पर मतभेद है, पर मैं अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हूँ।

डा0 अम्बेडकर व गांधीजी की पृष्ठ भूमि में अन्तर था। डा0 अम्बेडकर निम्न परिवार से थे, एवं जीवन भर संघर्ष का संत्रास भोगते रहे, वहीं गांधी जी मध्यम वर्गीय परिवार से थे और उस पीड़ा से नहीं गुजरे थे, इसका प्रभाव दोनों की मानसिकता एवं उनके विचारों पर भी पड़ा।

डा0 अम्बेडकर एवं गांधीजी दोनों धर्म को महत्व देते थे पर उनका विश्वास वर्णाश्रम व्यवस्था में नही था, वे वर्णाश्रम को धर्म का अंग नहीं मानते थे। गांधीवदियों का प्रयास यह था कि वे उनके खेमे में आ जाये। वह व्यक्ति जो अत्यधिक योग्य राजनीतिज्ञ हो एवं राजनीति विज्ञान का प्रकाण्ड पण्डित हो।[2] उनके शिविर में शरण लेने को वे तैयार नही थे। वे व्यक्तिवादी थे उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता में प्रबल आस्था थी, और वह धार्मिक उत्साही पुरूष थे।

डा0 अम्बेडकर के दलित चिन्तन की अवधारणा का प्रमुख बिन्दु भारतीय जाति व्यवस्था की निर्मम परम्परा रही है, डा0 अम्बेडकर जाति व्यवस्था को भयानक सच्चाई के रूप में स्वीकारते हैं। उनके संपूर्ण चिंतन का मूल बिन्दु दलित जीवन, उसकी त्रासदी व उस त्रासदी से मुक्ति के प्रयास पर आधारित है, सारा जीवन

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 - 145
2. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 - 76

वे इसी प्रयास में संघर्षरत रहे और देखा जाये तो अम्बेडकर के व्यक्तित्व में सर्वहारा एवं दलित दोनों शब्द समाहित से हो गए लगते हैं। वे वर्ण, धर्म में स्वार्थ को स्थान नहीं देते थे। वे जानते थे कि रोटी–बेटी के व्यवहार को वर्ण व्यवस्था से जोड़ देने से हिन्दू धर्म का बहुत नुकसान हुआ है।[1] साथ ही वे तार्किक दृष्टि से इस बात को दोहराते थे, कि शूद्र का धर्म उस पर लादा नहीं जा सकता है।

डा0 अम्बेडकर के चिंतन का मूल आधार वर्ण व्यवस्था है। डा0 अम्बेडकर के साथ वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा और अस्पृश्यता जीवन भर अभिन्न रूप से जुड़ी रही है। उन्होंने स्वयं अन्याय, अपमान व अमानुषिक अत्याचार झेला था। वह जानते थे कि व्यक्ति की हैसियत अनुवांशिक व सुनिश्चित होती है। भारतीय समाज में व्यक्ति की हैसियत उस जाति की हैसियत पर आधारित होती है, जिसमें उसने जन्म लिया है। यह आनुवाँशिक होता हैं, क्योंकि हिन्दू समाज के हर व्यक्ति पर उस जाति का ठप्पा लगा होता है, जिससे उसके माता–पिता सम्बन्धित थे।

गांधीजी ने दलित वर्ग के लिये हरिजन शब्द को प्रयोग किया था। यह हरिजन शब्द भेद की दीवार को मिटाने के लिये प्रयोग किया गया था, इस शब्द का गांधीजी ने महान् भक्त नरसी मेहता के भजन से लिया था। वहीं डा0 अम्बेडकर 'हरिजन' शब्द के खिलाफ थे। गांधी जी हरिजनों को अपमान का नही सेवा का पात्र मानते थे। गाँधी जी के इस सेवा भाव व हरिजन शब्द की छानबीन करते हुये हम देखते हैं कि गांधीजी को हरिजन शब्द प्रिय था, इसका ठोस कारण यह था, कि वे दलित समाज को सवर्णो की ओर से सम्बोधित कर रहे थे। वे महान

---

1. महात्मा गांधी, दलित जन उभार पृ0 – 105

सन्त श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की एक चौपाई का उल्लेख करते हैं–

"सुर महिसुर हरिजन अरू गाई ।

हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ।।"[1]

हरिजन शब्द को वे भगवान के जन के रूप में हृदयाँगम करते हैं, अपने को इस नाम के योग्य बनाने का प्रयास करते है।[2] हरिजन शब्द के सम्पूर्ण अर्थ के लिये समुचित प्रयास करना होगा। दलित वर्ग में अपनी स्वीकार्यता बढ़ानी होगी गांधीजी ने अपनी व्यस्तताओं के बावजूद ऐसा करने की पूरी चेष्टा की थी। इस प्रकार हम देखते हैं, कि गांधीजी की हरिजन की धारणा बहिष्कृत समाज से थी। यह धारणा आर्थिक नहीं सामाजिक थी। वे सामाजिक सम्बन्धों में व्याप्त सवर्णों एवं हरिजन की इस अन्यायपूर्ण धारणा को समाप्त करना चाहते थे, और इसके लिये उन्होंने सेवा का रास्ता अपनाया। यही बात है कि गांधी जी ने अम्बेडकर के विचारों के बारे में स्पष्टीकरण देते हुये कहा था, "मैं हिन्दू हूँ, सिर्फ इसलिये नहीं कि इस धर्म में पैदा हुआ हूँ। मैं अपने निर्णय एवं इच्छा से भी हिन्दू हूँ। मेरे विचार से हिन्दू धर्म में हीनता व उच्चता नहीं है। लेकिन जब डा0 अम्बेडकर चातुर्वर्ण के विरूद्ध संघर्ष करना चाहते हैं, तब मैं उनका साथ नहीं दे सकता, क्योंकि मैं वर्ण व्यवस्था को हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग मानता हूँ"[3] इस प्रकार हम देखते है कि गांधीजी एक उदार व प्रगतिशील सवर्ण थे। गांधीजी ने भारत के इतिहास में सर्वप्रथम दलितों के विरूद्ध होने वाली ज्यादतियों पर रोक लगाने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर मुहिम छेड़ी।

---

1. श्री गोस्वामी तुलसीदास, श्री रामचरित मानस (बालकाण्ड, दोहा 272, चौ0 06)
2. महात्मा गांधी, दलित जन उभार पृ0 – 109
3. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 28

गाँधीजी के विपरीत डा0 अम्बेडकर दलित वर्ग का अलग अस्तित्व स्थापित करना चाहते थे, वे कहते थे, कि दलित को न तो अलग होने दिया जाता है, न ही जीने दिया जाता है। डा0 अम्बेडकर के आन्दोलन में सम्मान व प्रतिष्ठा के साथ–साथ सामाजिक संस्कृति पर भी जोर था। डा0 अम्बेडकर बुद्धिजीवियों को समझ चुके थे, कि वे दोहरा चेहरा लगाए हैं, वास्तव में बुद्धिजीवी वहीं हैं, जो पहचान सकें कि रोटी का कौन सा भाग चुपड़ा है। बुद्धिजीवी राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिये खोखली घोषणायें कर रहे थे। डा0 अम्बेडकर राजनीतिक परिवर्तन से ज्यादा सामाजिक परिवर्तन पर जोर देते थे।

गांधीजी ईश्वर की निगाह में सबको समान मानते थे, इसलिये छुआछूत के खिलाफ थे। वे समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। वही डा0 अम्बेडकर सीधी कार्यवाही द्वारा इस भेदभाव को जड़ से मिटा देना चाहते थे, शायद इसीलिये उन्होंने धर्म का चिंतन नए सिरे से किया था। इसकी साम्यता राम की शक्ति पूजा के लिए किए गए प्रयास के समान मान सकते हैं। उनके कार्यों का मूल्यांकन करते हुए मि0 ग्लोदेन बोल्टन ने लिखा था, "दिन पर दिन डा0 अम्बेडकर प्रसिद्ध होते जा रहे है। वह कन्जरवेटिव या सोशलिस्ट के कैसा भी मंच हो, हर जगह भारत के हित को ध्यान में रखते हुए दलित वर्ग के लिए जोरदार अपील कर रहे हैं। महात्मागांधी एवं उनके बीच उभरते मतभेदों से स्पष्ट हो चुका है, कि डा0 अम्बेडकर दलित वर्ग के सच्चे व प्रभावशाली नेता है।"[1]

डा0 अम्बेडकर गाँधी जी के प्रति कटु विचारों से भरे हुए थे,

---

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 75

इन्हें कहते हुए डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि, "यदि मुँह में राम बगल में छुरी रखने वाले किसी व्यक्ति को महात्मा कहा जा सकता है, तो मोहनदास करमचंद गाँधी निश्चय ही महात्मा है"।[1] डा0 अम्बेडकर कहते थे कि गाँधी के युग में नेता अर्धनग्न रहने में गौरव महसूस करते है, और इस प्रकार अर्धनग्न रहकर भारत को पुरातत्व का नमूना बनाते है, राजनीतिज्ञों के लिए ज्ञान आवश्यक शर्त नहीं रह गया है। वर्तमान में नेता लोगों ने जीवन व समाज के तथ्यों एवं सत्यों को पहचानना छोड़ दिया है। इस प्रकार वे गाँधी युग को भारतवर्ष के लिए अन्धकार के युग की संज्ञा देते हैं।

डा0 अम्बेडकर गाँधीजी की आलोचना करते हुये कहते है कि, "जहां तक मि0 गाँधी एवं मि0 जिन्ना से मेरा घृणा करने का प्रश्न है, मैं बल देकर कहता हूँ कि मैं उनसे घृणा नहीं करता, उन्हें नापसन्द करता हूँ, वह भी इसलिये क्योंकि उनकी अपेक्षा मैं भारत से अधिक प्रेम करता हूँ"।[2] आगे डा0 अम्बेडकर पुनः एक जगह कहते हैं कि गांधी ने स्वयं को अलग–थलग कर लिया है। वे वैभवशाली अलगाव के शिखर पर खड़ा होना पसंद करते है। उन्होंने आश्चर्यजनक नाट्यकला विकसित कर ली है। डा0 अम्बेडकर पुनः चुटकी लेते हुये कहते है, उन्हें विधाता ने असावधानी के क्षणों में हमारा नेतृत्व करने के लिये विकसित किया है। अपने प्रभुत्व के बल पर आधे अनुयायियों को उन्होंने मूर्ख बनाया है। आधों को वे पाखण्डी की संज्ञा देते है। उन्होंने आगे कहा कि अछूतों के सवाल पर गाँधी की आलोचना करने के लिये मैनें एक किताब लिखी है। मि0 गाँधी मुझे देश से बड़े नही लगते।

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 – 29
2. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, रानाडे, गांधी, जिन्ना — पृ0– VII

किसी भी महान् आदमी से देश सदैव बड़ा होता है। कांग्रेस में न होने वाला व्यक्ति भी राष्ट्रवादी हो सकता है।[1] ऐसा कहने के पीछे उनका संकेत उन आलोचनाओं की तरफ था, जिनमें डा0 अम्बेडकर को देशद्रोही कहा जा रहा था। उन्होंने भारतीय राजनीति में गाँधी की काफी आलोचना की है।

वे गांधीवाद को अविकसित प्रकृति में पशु जीवन की ओर ले जाने वाला मानता है। गांधीवाद मशीनीकरण का विरोध करता है। यह आर्थिक समानता को स्थान नहीं देता है। उनके दृष्टिकोण से आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से गाधींवाद एक प्रतिक्रियावादी विचारधारा है। वे गांधीवाद को न तो कल्याणप्रद मानते थे न व्यवहारिक। वे गांधीवाद से काफी आशा लगाए बैठे थे। वे सोचते थे कि गांधी भारत की जनता पर अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे और सामाजिक मामले में तानाशाह जैसा काम करेंगे। अपनी यह आशा समाप्त हो जाने पर वे गाँधीवाद के मुखर विरोधी हो गए थे, और इसीलिये कभी–कभी कहते थे, कि भारत को सामाजिक या धार्मिक मामले में कमालपाशा या मुसोलिनी जैसे तानाशाह की जरूरत है।

गाँधीवाद एक प्रतिक्रियावादी विचारधारा है जो मशीनीयुग की वैज्ञानिक प्रगति से मुँह मोड़कर आदिमयुग की ओर ले जाती है,[2] सामान्य जन को गाँधीवाद से कोई आशा नहीं करनी चाहिऐ, क्योंकि डा0 अम्बेडकर के विचार से गांधीवाद थोथी व काल्पनिक मान्यताओं पर टिका है। यह आदिमयुग की ओर ले जाने का लक्ष्य रखकर मानव को पशु के स्तर पर ले जाकर छोड़ देना चाहता है, जिसमें मानव की आवश्यकता न्यूनतम् हो, वह अधिक से अधिक प्रकृति पर निर्भर करे।[3] वे

---

1. डा0 अम्बेडकर के पत्र — पृ0 – 97
2. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार — पृ0 – 22
3. वही, — पृ0 – 22

इसे हिन्दू धर्म के पुराने सिद्धान्तों का नवीन संस्करण मानते थे और अछूतों के प्रति एक ही प्रतिक्रिया की सलाह देते थे, कि गांधीवाद से दूर रहो।

वे गांधीवाद के राजनीतिक विरोधी थे। एक बार तो उन्होंने कहा था, कि गांधी स्वयं को कांग्रेस व अछूतों के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, उन्होनें चुनौती देते हुए कहा था, कि गांधी भारत के किसी भी क्षेत्र में उनके मुकाबले में खड़े होकर अपनी स्थिति की परीक्षा कर लें तो वे सत्य पर आ जायेंगे। डा0 अम्बेडकर ने अपने गहरे मतभेद प्रदर्शित करते हुए गांधी जी को पत्र लिखा था, कि गांधी का रास्ता भीख का और दया का रास्ता है, जबकि डा0 अम्बेडकर ने अपने रास्ते को दलित कल्याण का रास्ता बताया था। हम देखते हैं कि गांधी एवं अम्बेडकर के बीच जबरदस्त वैचारिक मतभेद चले, गांधीजी के लंदन से हिन्दुस्तान वापस लौटने पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं और गांधी विरोधी दलित वर्ग के प्रदर्शनकारियों में डटकर लड़ाई हुई। दोनों ओर से खुलकर लाठियाँ चली, सोडावाटर की बोतलें फेंकी गई, ईंट व पत्थर बरसाए गए। गांधी जी का यह विरोध अहमदाबाद में डा0 अम्बेडकर को काले झण्डे दिखाने और उन्हें गद्दार कहने की प्रतिक्रिया थी।

गांधी जी की दृष्टि में वर्णाश्रम पृथ्वी पर मानव के मिशन को शरीर एवं आत्मा के लक्ष्य को लेकर परिभाषित करता है। वर्ण प्रकृति का एक अकाट्य तथ्य है, वह हिन्दू धर्म से पहले का प्रकृति का नियम है। वह आनन्द व वास्तविक धार्मिक अनुसरण के लिए सबसे उत्तम सुरक्षा का मार्ग है। फलतः गांधी व अम्बेडकर में विरोध स्वाभाविक था। डा0 अम्बेडकर इस वर्णाश्रम को समूल नष्ट करना चाहते

थे। वे गांधीजी की हरिजन संज्ञा को भी अवैज्ञानिक मानते थे। वे अछूतपन के अस्तित्व को हिन्दू धर्म से मिटा देना चाहते थे। वे जानते थे कि यदि हरिजन के रूप में भी अछूत का अस्तित्व बचा रहा, तो भी शोषण जारी रहेगा।

डा0 अम्बेडकर स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भावना के विरोध को ब्राहणवाद की संज्ञा देते थे, और मानते थे, कि यह भावना सभी में व्याप्त है। गांधी जी छुआछूत की इस भावना को अन्तःकरण में परिवर्तन के द्वारा मिटाना चाहते थे, वही डा0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वर्ण व्यवस्था का ही अन्त करना चाहते थे। जवाहरलाल नेहरू ने अम्बेडकर का उल्लेख करते हुए कहा था, कि वह हिन्दू समाज के अत्याचारपूर्ण तत्वों के प्रति विद्रोह के प्रतीक थे।

वे दलितों में आत्मसम्मान की भावना जाग्रत करना चाहते थे। गांधी ने सवर्ण हिन्दुओं एवं अछूतों के मध्य विवाह सम्बन्ध और गोद लेने के सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया। उन्हें दृढ़ विश्वास था, कि एक दिन अस्पृश्यता का अन्त हो जाएगा। गांधी जी अछूतोद्वार के प्रणेता थे। उन्होंने इस क्षेत्र में अथक कार्य किया, परन्तु वर्णाश्रम धर्म के समर्थक होने के नाते उन पर आरोप लगाया गया कि वे रूढ़िवादी हैं। इस संदर्भ में गांधी जी का उत्तर था कि वर्णधर्म के बचाव हेतु वह कभी नहीं गये, हालांकि अस्पृश्यता को दूर करने के लिए वह कई जगह गये। स्वराज के तीन आधार हैं– खादी का प्रचार, हिन्दू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता का निवारण कांग्रेस के इन प्रस्तावों के वे लेखक भी थे पर उन्होंने कभी भी वर्णाश्रम धर्म की चौथे आधार के रूप में स्थापना नहीं की थी। गांधी जी कट्टर

हिन्दू होते हुए भी हिन्दू धर्म की रूढ़ियों एवं कुरूतियों को समाप्त करना चाहते थे।

डा0 अम्बेडकर गांधीवाद को वर्णाश्रम के कारण ही नकारते थे। धर्म गांधी जी के जीवन का अभिन्न अंग रहा है। सामाजिक न्याय की धारणा, वैष्णव जन की भावना एवं ईश्वर कृपा अथवा दरिद्र नारायण के विचार पर आधारित है। डा0 अम्बेडकर सर्वोदय की भावना को तीन कारणों से नकार देते हैं।

1. श्रम विभाजन–वर्णाश्रम धर्म के आधार पर किया गया है।

2. न्याय के रखरखाव की प्रक्रिया में दरिद्र नारायण की भूमिका को प्रमुख स्थान दिया गया है।

3. आर्थिक न्याय के लिए जिस न्यासिता के आदर्श को प्रस्तावित किया गया है, वह भेड़िये को मेमने की रखवाली सौंप देने के समान है।

डा0 अम्बेडकर ने गांधी जी के विपरीत सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में वर्णाश्रम की भावना एवं ईश्वर के संकल्प की भूमिका को आधार नही बनाया। उन्होंने संवैधानिक शासन, कानून, धर्म एवं नैतिकता को सामाजिक न्याय का आधार स्वीकार किया।

डा0 अम्बेडकर व गांधीजी में एक और विचारधारात्मक भिन्नता थी। गांधी जी भारत के गाँवों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की आत्मा मानते थे। डा0 अम्बेडकर भारत के गांवों में स्थापित व्यवस्था को दलित हित के विरूद्ध मानते थे।[1] वे इसी कारण से ग्राम पंचायतों को ज्यादा अधिकार देने के हिमायती

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 143

नहीं थे, एवं विकेन्द्रीकरण को न अपना कर केन्द्रीयकरण को अपनाना चाहते थे।

महात्मा गांधी को भारतीय समाज व्यवस्था की गहरी समझ थी। दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर गांधी जी ने भारतीय समाज का साक्षात्कार किया। 1930 में 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की थी। उन्होंने दलित जातियों के साथ उठने-बैठने, खाने-पीने की वकालत की थी। दलितों के भीतर व्याप्त बुराइयों के खिलाफ सुधार के आन्दोलन संगठित किये। चिंतन की इस गांधीवादी अवधारणा में सेवा, ह्रदय परिवर्तन एवं भावात्मक आाशावादिता उपस्थित थी, पर अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद गांधी जी ने भारतीय समाज में उपेक्षित जन समुदाय की पीड़ा को समझा। दलितों के प्रति उपेक्षा एवं अत्याचारों को वे भूल मानते थे एवं हिन्दू समाज को इससे उबारने का प्रयास करते रहे।

डा0 अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन के निर्णय को जब गांधी ने दुर्भाग्यपूर्ण कहा तो डा0 अम्बेडकर ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा था, "यह केवल हिन्दूधर्म एवं हिन्दू धर्म की असमानता नहीं है, जिसने मेरे मन में घृणा एवं अवमानना की भावना भर दी है। इसका मुझ पर आरोप लगाया गया है। मैं मानता हूँ कि यह दुनिया अपूर्ण है व जो भी इसमें जीना चाहता है, उसे अपूर्णता सहन करना चाहिए। अगर मुझे हिन्दू धर्म एवं उसके सिद्धान्तों से ऊब होती है, तो इसलिए कि मुझे विश्वास है कि वे गलत सिद्धान्तों व गलत सामाजिक जीवन का पोषण करते हैं। हिन्दू व हिन्दू धर्म से मेरा झगड़ा उनके सामाजिक आचरण की अपूर्णता से नही हैं। यह झगड़ा बहुत अधिक मौलिक है। यह झगड़ा उनके सिद्धान्तों से है।"[1]

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 - 131

डा0 अम्बेडकर गाँधीवाद को धनिकों का दर्शन मानते हैं। वे गांधीवाद को खाली बैठों का काम मानते थे। वे समझते थे, कि इसने लोगों को बहकाने का काम किया है,कि वे अपनी मुसीबतों को प्रारब्ध का फल मान लें। उनके अनुसार गांधीवाद में गंदगी, सफाई का काम सर्वोच्च्व सेवा बताया गया है, इसके बावजूद यह मुसीबत जानबूझकर एक जाति के मत्थे मढ़ दी गई है।[1]

डा0 अम्बेडकर ने गांधी जी के दलित प्रेम को सदैव आशंका की दृष्टि से देखा एवं उनके आचरण को अर्न्तजातीय पाखंड कहा। वे अछूतों को अलग अंग मानते थे एवं हिन्दु समुदाय का अंग नहीं मानते थे, जैसे सिक्ख और मुसलमान अलग–अलग है। डा0 अम्बेडकर का कहना था कि गांधी राजनीति में अपना स्थान न खोए, इसलिए जाति एवं वर्ण का समर्थन करते है। महात्मा वर्ग के नाम पर जाति को उपदेश देकर लोगों को धोखा दे रहे हैं, पर वास्तव में वे दलितों की उपेक्षा नही कर रहे थे। वे देश की आजादी को वरीयता देकर दलितों के लिए लड़ रहे थे, डा0 अम्बेडकर कांग्रेस को ब्राह्मण, बनिया राज की संस्था मानते थे।[2]

गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी एवं डा0 अम्बेडकर के बीच काफी टकराव था, वहीं टकराव का महत्वपूर्ण बिन्दु एक और था, जिसे साम्प्रदायिक पंचाट या कम्युनल अवार्ड के नाम से जाना गया। 20 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रीमियर ने दलितों के लिए प्रान्तीय विधान सभाओं में 71 विशेष स्थानों की घोषणा की, तब कांग्रेस एवं गांधी जी को धक्का लगा। डा0 अम्बेडकर के साथ 1932 में हुए प्रसिद्ध विवाद कि दलित संयुक्त मतदाता सूची में रहें, या स्वतंत्र सूची में, के मसले

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 142
2. अरूण शौरी, वर्शिपिंग फाल्स गॉड्स पृ0 – 267

पर गांधी ने भारतीय समाज की संरचना का हवाला देते हुये कहा, कि जो लोग संघर्ष की वकालत गांवों के द्विस्तरीय विभाजन के आधार पर कर रहे हैं, उन्हें अपने देश की पहचान नहीं है। इस राजनीतिक तनातनी से डा0 अम्बेडकर अविचलित रहे, एवं दलितों की पैरवी करते रहे। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर डा0 अम्बेडकर ने कहा, कि हर अल्पसंख्यक समुदाय को जनसंख्या के आधार पर पृथक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। गांधी जी ने इस बात का स्पष्टतः विरोध किया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गांधी ने डा0 अम्बेडकर को स्पष्टतः दलितों का प्रतिनिधि नहीं माना था। उनके अनुसार डा0 अम्बेडकर को सारे देश के दलितों की ओर से बोलने का अधिकार नहीं है। डा0 अम्बेडकर ने इस आरोप को दृढ़तापूर्वक नकार दिया था। गांधी जी पृथक निर्वाचन से सहमत नहीं थे। उनका मानना था, कि इससे स्वतंत्रता प्राप्ति में अनेक कठिनाईयां उत्पन्न होगी। डा0 अम्बेडकर का मानना था, कि कांग्रेस सत्ता प्राप्ति के लिए जितनी चिंतित है, उतनी उद्देश्यों या सिद्धान्तों के लिए नही है।

गांधी जी अछूतों के मौलिक हित की बात करते थे। वे कहते थे कि इनके हितों को तिलांजली नही दी जा सकती। गांधीजी ने चेतावनी दी थी, कि साम्प्रदायिक पंचाट वापस न लेने पर वे आमरण अनशन प्रारम्भ कर देगें। 8 सितम्बर 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने पंचाट के फैसले को वापस लेने की मनाही कर दी, तो गांधीजी ने 20 सितम्बर से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा था, ''यदि सामूहिक हिन्दु भावना अस्पृश्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये

सार्वजनिक तौर पर तैयार नहीं है तो उसे बेशक, बिना झिझक मेरी कुर्बानी दे देनी चाहिये।"[1] गांधी जी के अनशन के विषय में डा0 अम्बेडकर ने कहा, कि वे राजनीतिक स्टंट की परवाह नहीं करते। यदि गांधी हिन्दुओं के लिये अपनी जिन्दगी से लड़ सकते हैं, तो अछूत भी अपने हितो की रक्षा के लिये जिन्दगी से लड़ सकते है।[2]

डा0 अम्बेडकर काफी समय अपनी बात पर अड़े रहे, पर बाद में पं0 मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में बैठक हुई। इसमें राजेन्द्र प्रसाद, ठक्कर बापा, सी0डी0देशमुख, सावरकर, कमला नेहरू, सी0गिडवानी, तेजबहादुर सप्रू एवं डा0 सोलंकी शामिल हुये। तेजबहादुर सप्रू ने प्रस्ताव सुझाया, जिस पर डा0 अम्बेडकर, डा0 राजेन्द्र प्रसाद, सी0 राजगोपालाचारी ने सहमति व्यक्ति की और पूना जेल में डा0 अम्बेडकर ने गांधीजी से उदास आवाज में स्थिति का खुलासा करते हुये कहा "यदि आप हम अछूतों के उत्थान के लिये अपने आप को पूरी तौर पर समर्पित कर दें, तो आप हम अछूतों के भी नेता हो सकते है"[3] इस प्रकार 24–9–1932 को सम्पन्न पूना पैक्ट ने सम्पूर्ण देश को झकझोर दिया था।

गांधीजी और डा0 अम्बेडकर में एक मौलिक अन्तर और भी था। उनकी दृष्टि में हिंसा एवं अहिंसा का जीवनीय मूल्य एक समान था। अकेली अहिंसा तमाम मानवीय समस्याओं का समाधान नहीं हो सकती। महात्मा गांधी अकेली अहिंसा के माध्यम से जीवन की समस्याओं का हल करना जीवन का लक्ष्य मानते हैं।

महात्मा गांधी का कहना था कि अस्पृश्यता के खिलाफ चलाये

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 - 134
2. अरूण शौरी, वर्शिपिंग फाल्स गॉड्स — पृ0 - 265
3. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर — पृ0 - 134

जाने वाले आन्दोलन का, हिन्दू धर्म को सबल बनाने से कोई सरोकार नहीं है। गांधीजी कहते है, कि आपको विश्वास कर लेना चाहिये मैं इस तरफ से बिल्कुल ही उदासीन हूँ, कि हिन्दूधर्म सबल हो रहा है, निर्बल हो रहा है, या नष्ट हो रहा है। गांधीजी के सामने मात्र छुआछूत एवं जातिवाद का सवाल नही था। वे भारतीय समाज को अंधविश्वासों, रूढ़ियों एवं नारियों को मुक्ति दिलाना चाहते थे। गांधीजी ने शायद एकरूपता दिखाने के लिये डा0 अम्बेडकर से कहा था, "डाक्टर तुम जन्म से अछूत हो एण्ड आई एम वाई एडॉप्ट्स।"[1] गांधीजी का डा0 अम्बेडकर से कहना था कि हम परस्पर अविभाज्य रहें। उन्होंने कहा कि वे हिन्दू समाज के विघटन को रोकने के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर सकते हैं। वे दलितों पर किये गये अत्याचारों के लिये सवर्णों में पाप बोध जगाने एवं उसके प्रायश्चित पर जोर देते थे। 1931 में नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश के लिये वे दलितों के नहीं वरन् सवर्णों के सत्याग्रह के हिमायती थे।

गांधी जी के व्यक्तित्व की विशेषता व्यवहारिक आदर्शवाद थी। गांधीजी देश, समाज एवं अनुयायियों का ध्यान रखते थे। भारत में रूढ़ियां, अन्धविश्वास एवं कई तरह की विषमतायें हावी रहती है। इन परिस्थितियों में सब को साथ लेकर ही स्वराज की लड़ाई लड़ी जा सकती थी। दलितों को हरिजन नाम देना गांधीजी के इसी चिन्तन का परिणाम है।

विविध मतभेदों के बाद भी गांधीजी एवं डा0 अम्बेडकर के विचारों में काफी साम्यता भी दिखाई पड़ती है। डा0 अम्बेडकर गांधी के मूलदर्शन के आलोचक

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 - 144

होने के बाद भी गांधी जी के व्यक्तित्व के ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा आदि गुणों के प्रशंसक रहे है।[1] महात्मा गांधी रूचि के अनुसार पेशा अपनाने के पक्षधर थे। दोनों लोग मानव या किसी मानव समूह के श्रेष्ठता के दावे को झूठा ठहराते थे। गांधीजी वर्ण व्यवस्था से सहमत थे, परन्तु जाति के भाव से असहमत थे। दोनों लोग छुआछूत को अभिशाप मानते थे। गांधीजी हिन्दू धर्म की महानता स्वीकार करते हुए अस्पृश्यता को गलत ठहराते थे। दोनों के मन में भारत के प्रति भक्ति का समान भाव था। इन महापुरूषों के साधनों में तो अन्तर हो सकता है, परन्तु उनके लक्ष्य समान हैं। दोनों लोग धर्म, नैतिकता एवं मानव की शुचिता पर विश्वास रखते थे। दोनों के दर्शन का केन्द्रबिन्दु सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समानता है। दोनों व्यक्ति में आत्मविश्वास जागृत करना चाहते थे।

गांधीजी स्वयं को ग्रहण किया हुआ हरिजन मानते थे। दोनों लोग साम्यवाद को नापसंद करते थे। वे लोकतंत्र में विश्वास रखते थे एवं नागरिक समानता पर आधारित जनतंत्र में विश्वास रखते थे। दोनों लोग शोषणकारी व्यवस्था के विरोधी थे। दोनों लोग स्वयं से अधिक समाज एवं राष्ट्र को चाहते थे। इस प्रकार गांधीजी एवं डा0 अम्बेडकर के विचारों में परस्पर सहमति के बिन्दु थे, यद्यपि उनके साधन भिन्न हो सकते है, परन्तु लक्ष्य नही। दोनों जीवन में 'राष्ट्राय स्वाहा, इदं न मम्' पर विश्वास रखते है। हम पाते है कि दोनों ने समाज सेवा एवं व्यक्ति निर्माण में स्वयं को गला दिया था। वे व्यक्तिगत लाभ–हानि, मान–अपमान से ऊपर उठ चुके थे। भारत के कण–कण से दोनों गम्भीर रूप से जुड़े थे एवं उनकी दृष्टि

---

1. दैनिक जागरण (कानपुर) 16 अप्रैल 1995

में राष्ट्र चिंतन सर्वोपरि था।

इस प्रकार हम देखते है कि गांधीजी एवं डा0 अम्बेडकर दोनों में एक ही पीड़ा कार्य कर रही थी। जहाँ गांधीजी साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता एवं साम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़े, वहीं डा0 अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ी। डा0 अम्बेडकर ने संघर्ष का आवाहन किया, वहीं महात्मागांधी इस कार्य में हृदय परिवर्तन, दलितोद्वार एवं सामाजिक भेदभाव मिटाने में लगे रहे। एक इस देश का राष्ट्रपिता कहलाया, दूसरा संविधान का जनक। साम्प्रदायिकता एवं जातिवाद से दोनों दुखी थे। महात्मा गांधी एवं अम्बेडकर मात्र दो नाम नहीं वरन् एक ही काल खण्ड की दो ऐसी समानान्तर विचारधारायें थी, जो स्वाधीनता एवं स्वराज्य के विराट शिखर से निःसृत हुई और विस्तार पाते–पाते अनेक उपसारणियों में विभाजित होती गयी। एक के पास जातिवाद का कटु अनुभव था, तो दूसरा उस अनुभव को समझ रहा था। गांधीजी ने दलितों पर से समस्त प्रतिबंध हटाने की कोशिश की थी। जब हम गांधी जी एवं डा0 अम्बेडकर का गहरा अध्ययन करते हैं, तो पाते है कि दोनों जटिल पहेली थे। इतिहास में उनके मध्य टकराव एवं प्रसन्नता दोनों के क्षण विद्यमान रहे हैं।

डा0 अम्बेडकर के साथ–साथ कुछ अन्य प्रमुख दलित नेताओं पर भी दृष्टि डालना सामयिक होगा। जो राजनीति में प्रमुख स्थान रखते थे। इन्होंने दलित चिन्तन को प्रभावित किया है। इनमें प्रमुख नाम बाबू जगजीवनराम का है। जो कांग्रेस के अध्यक्ष रहे एवं प्रमुख गांधीवादी नेता थे। आप दलित चिन्तन में सशक्त हस्ताक्षर थे। बाबू जगजीवनराम इस मतके पक्षधर थे, कि हिन्दूधर्म आधुनिक धर्म है,

हिन्दूधर्म का वेदों, उपनिषदों में वर्णित स्वरूप मान्य है, वे उसे वैज्ञानिक मानते थे। उन्होंने घोषणा की थी, कि हिन्दू धर्म का गुण है, कि यह सर्व सत्तावादी एवं दुराग्रही नहीं है। वे हिन्दू धर्म को धर्म से भी अधिक एक जीवन पद्धति मानते थे।[1] जगजीवनराम हिन्दू धर्म को बन्धुत्व का रूप मानते थे।

जगजीवनराम वर्णव्यवस्था में कोई विश्वास नहीं रखते थे, पर वह हिन्दूधर्म के पक्षधर थे। उनका कहना यह था कि हिन्दूधर्म के जाति सिद्धान्त को समाप्त हो जाना चाहिये, इस दृष्टिकोण से देखने पर हम पाते है, कि डा0 अम्बेडकर और जगजीवन राम में कोई अन्तर नहीं है।

बाबू जगजीवनराम जातीयता को अमानवीय व्यवस्था मानते हुये कहते हैं, "यह केवल बौद्धिक विश्वास में आस्था ही नहीं है, जिसका कोई मूल्य है, अपितु उसका व्यवहार अधिक महत्वपूर्ण है। यहां तक कि शिक्षित हिन्दू का व्यवहार भी अधिकतर पूर्व निश्चित आग्रहों से निर्धारित होता है, जिनका हिन्दू विचार संरचना में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।"[2] यहां तक बाबूजगजीवन राम के विचार डा0 अम्बेडकर के साथ हैं। डा0 अम्बेडकर स्वाभिमान और गरिमा के लिये गांधी जी की हरिजन शब्दावली को राजनीतिक शब्दावली मानते थे।

जगजीवन राम हिन्दू धर्म के प्रबल पक्षधर थे, वही डा0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म के कट्टर विरोधी थे। बाबू जगजीवनराम हिन्दू धर्म में रहकर ही आत्म–सम्मान प्राप्त करना चाहते थे, जबकि डा0 अम्बेडकर इसे असंभव मानते थे, वे धर्म परिवर्तन को मुक्ति का मार्ग मानते थे।

1- Why I am a Hindu, Illustrated weekly, 24 Nov. 1975 P. - 22

1. जगजीवनराम, कास्ट एण्ड अनटचेबिलिटी पृ0 - 12

बाबू जगजीवनराम मानते थे कि "वर्ण व्यवस्था का हल धर्म परिवर्तन द्वारा सम्भव नहीं हो सकता है, क्योंकि जब तक दलित वर्गों के लोग हिन्दू समाज के लिए अस्पृश्य बने रहेंगे, तब तक वे जहां कहीं भी जायेगें यह कलंक उनके साथ लगा रहेगा।"[1] जबकि डा0 अम्बेडकर का विचार था कि जब तक दलित हिन्दू धर्म के अनुयायी रहेंगे, तब तक दलितों में जीवन के लिए आशा, प्रेरणा और उत्साह नहीं हो सकता। इस तरह बाबू जगजीवनराम और डा0 अम्बेडकर के विचार परस्पर विरोधी थे।

बाबू जगजीवनराम चाहते थे, कि दलित हिन्दू धर्म और गांधीवाद के अनुचर रहें। डा0 अम्बेडकर दलितवर्ग का एक स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करना चाहते थे, जो सामाजिक दृष्टि से मुस्लिम, ईसाई या अन्य धर्मावलम्बियों के समकक्ष हों। डा0 अम्बेडकर इस बात से भयभीत थे, कि गांधीवादी हरिजन के साथ जाति सूचक संज्ञा जुड़ी रहेगी, और दयनीय आर्थिक स्थिति उन्हें पराश्रित बनाये रखेगी। वे हिन्दू समाज में क्रान्तिकारी संशोधन करना चाहते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि बाबू जगजीवनराम और डा0 अम्बेडकर की दृष्टि में पर्याप्त अन्तर था। यह अन्तर बाबू जगजीवनराम के गांधीजी के अनुयायी होने, हिन्दूधर्म के प्रति श्रद्धा रखने तथा डा0 अम्बेडकर के विचार निर्माण में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के कारण अन्तर था। यह अन्तर इन लोगों के चिन्तन एवं व्यवहार में भी परिलक्षित होता है।

---

1. जगजीवनराम, जीवन और व्यक्तित्व पृ0 - 100

दक्षिण के एक और प्रमुख नेता रामास्वामी नायकर पेरियार की चर्चा करना सामयिक होगा। नायकर ने दक्षिण में अस्पृश्यता एवं अन्याय के विरूद्ध आन्दोलन चलाया, उन्होंने हिन्दूधर्म की और देवी–देवताओं की खिल्ली उड़ाई। धर्म को वे अंधविश्वास मानते थे और हिन्दी भाषा को लेकर सदैव उग्र आन्दोलन करते रहे।[1] उन्होनें आर्य और द्रविड़ का भेद पैदा किया तथा उत्तर और दक्षिण के अन्तर को प्रमुखता से उभरा।

नायकर से प्रभावित जस्टिस पार्टी ने 1917, में सरकारी नौकरियों एवं राजनीतिक क्षेत्र में ब्राह्मण प्रभुत्व के खिलाफ आन्दोलन छेड़ा था। इसी ब्राह्मण विरोधी नीति की नीवं पर सन् 1941 में द्रविड़ कजगम् की स्थापना हुई। जिसने द्रविड़ लोगों का आवाहन किया, कि वह सत्ता अंग्रेजों के हाथों से निकलकर आर्यो के हाथों में न जाने दें। उल्लेखनीय है कि इस पार्टी ने भारत से एकदम अलग द्रविड़स्थान की स्थापना की मांग की थी।[2] कालान्तर में देश के दूसरे भागों के जनमत ने द्रमुक के रूख पर प्रभाव डाला। विघटन की प्रवृति को रोकने के लिये राष्ट्रीय एकता परिषद की उपसमिति ने संविधान में संशोधन सिफारिश की, जिसका लक्ष्य प्रान्तीयता एवं भाषा की कट्टरता से देश की एकता, अखण्डता एवं प्रभुता की रक्षा करना था।

डा0 अम्बेडकर के विचार पेरियार से भिन्न है, जहां पेरियार धर्म का विरोध करते हैं, वहीं डा0 अम्बेडकर धर्म को नैतिक जीवन के लिये आवश्यक मानते थे। वे मानव जीवन के लिये धर्म को आवश्यक अंग के रूप में स्वीकारते

---

1. बी0 एल0 ग्रोवर व यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 - 285
2. राबर्ट एल0 हार्डग्रेव, द द्रिविड़ियन मूवमेन्ट बम्बई 1965

है। एक दूसरा अन्तर हिन्दी भाषा को लेकर भी था। डा0 अम्बेडकर राष्ट्र भाषा हिन्दी की उपेक्षा को राष्ट्रीय एकता की उपेक्षा मानते थे। वे राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी और लिपि के रूप में देवनागरी की वकालत करते है। उन्होंने राजनीतिक स्वार्थ के लिए राष्ट्रभाषा का विरोध नहीं किया।[1] वे राष्ट्रीय एकता के समर्थक थे और किसी भी तरह, किसी के लिए अलग राज्य विरोधी थे। उनके मस्तिष्क में उत्तर–दक्षिण का भेद भी बेमानी था। उन्हें वास्तविक अर्थो में राष्ट्रपुत्र कहा जा सकता है।

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 99

2. भारतीय राजदर्शन को डा0 अम्बेडकर के योगदान की समीक्षा

डा0 भीमराव रामजीराव अम्बेडकर कान्तिकारी विचारों के राष्ट्रवादी नेता थे। उन्होंने सम्पूर्ण समाज में कान्ति की चिंगारी पैदा की। डा0अम्बेडकर के विचारों में विशुद्ध राष्ट्रीय एवं रचनात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। उन्होंने देश एवं समाज में सुधार के लिए सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्ति का चिन्तन दिया। डा0अम्बेडकर अंग्रेजों के शासन के खिलाफ थे, पर साथ ही उन्होने सामाजिक गुलामी का भी पुरजोर विरोध किया। वे प्रखर राष्ट्रवादी थे। उन्होंने जनकल्याण एवं राष्ट्रकल्याण में स्वयं की आहुति दे दी।

सामाजिक योगदान की समीक्षा :–

डा0 अम्बेडकर ने न केवल दलित वर्ग को अपितु सम्पूर्ण समाज जीवन को सुव्यवस्थित एवं सौहार्द्रपूर्ण बनाने के लिये जो अभियान छेड़ा था, यदि उसे दुर्देव से राजनीतिक दुष्चक्र में न फंसा दिया गया होता, तो आजाद भारत के गांवों से ऊँच–नीच छुआ–छूत की दुर्भावनाओ का कलंक दूर होने के साथ ही अमीर–गरीब के बीच की खाई भी पट गई होती। उनका जीवन बच्चों तक को समरसता का संदेश देता है।

वे नारी के राजनीतिक व सामाजिक अधिकारों के प्रति पूर्णतः सचेत थे। वे बदलाव के इस दौर में नारी को समाजकी प्रगति में योगदान करने के लिये पूर्णतः सक्षम बनाना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर नारी को दो प्रकार की अतियों से बचाना चाहते थे, एक तो उसे हीनता की पराकाष्ठा से बचाना, और दूसरा उसे देवी होने की संज्ञा देना।

देवी घोषित करने पर वह समाज के प्रति केवल कर्तव्य कर सकती थी, वह अधिकारों की बात नहीं कर सकती है। डा0 अम्बेडकर नारी को अधिकारों के प्रति सचेत कर सामाजिक प्रगति में बराबर का भागीदार बनाना चाहते थे।

सरदार पटेल ने देश को भौगोलिक विखण्डन से बचाया और भारत को भौगोलिक रूप से संगठित किया, ठीक उसी प्रकार डा0 अम्बेडकर ने भारत को सामाजिक विखण्डन से बचाया और इसे सामाजिक रूप से एक रखने की चेष्टा की। डा0 अम्बेडकर अपने को भारतीय मानते थे। उनके विचारों के अनुसार लोगों को यह भी नहीं कहना चाहिए, कि वे पहले भारतीय हैं, बाद में हिन्दू अथवा मुसलमान। वे इस बात को नहीं स्वीकारते थे। वे भारतीय होने की निष्ठा को एकमेव एवं सर्वोपरि मानते थे। उनका कहना था, कि लोगों को पहले भी भारतीय होना चाहिए, और अन्त तक मात्र भारतीय ही होना चाहिए भारतीय के अलावा कुछ नहीं।[1]

दलित उद्धारक डा0 अम्बेडकर का अछूत उद्धार आन्दोलन सार्थकता की बहस लिए है। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि गांवों में दलितों के साथ होने वाले अन्याय एवं अत्याचारों के विरूद्ध यदि दलित एवं सवर्ण मिलकर आवाज नही उठाते तो दलितों एवं सवर्णो के बीच धीरे–धीरे दूरियां बढ़ेंगी। इससे दलितों के मन मे असंतोष पैदा होगा, यह असंतोष आगे चलकर विद्रोह का रूप धारण कर सकता है। डा0अम्बेडकर के विचारानुसार ऐसा होना लोकतंत्र के लिये हानिकारक होगा।

डा0 अम्बेडकर अछूतों के ऊपर युगों–युगों से होने वाले अमानवीय

---

1. डा0 प्यारेलाल आदर्श, भारतीय संविधान पृ0 – 37

व्यवहारों से व्यथित एवं चिन्तित थे,इसलिये स्वतंत्रता संग्राम में खुलकर भाग नही ले पाये। वे स्वयं को भारत मां का पुत्र मानते थे। जिस कर्मठता के साथ उन्होने अछूतोद्वार की समस्याओं को उजागर किया, उसी की परिणिति है कि, आज इस वर्ग की स्थिति बेहतर हुई है। और शायद डा0 अम्बेडकर की ऐसी सक्रिय भूमिका न रही होती, तो आज यह कदापि सभंव न हो पाता । उनका सामाजिक एकता का प्रयास स्तुत्य है। सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत डा0 अम्बेडकर सामाजिक परिवर्तन के महासंघर्ष में शक्ति एवं प्रेरणा के केन्द्र हैं। उनका आयाम असीम था।

डा0 अम्बेडकर के पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है,कि दलितों, पिछड़ों व मजदूर वर्ग के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शिक्षा संबंधी बुनियादी प्रश्नों पर उन्होंने नूतन एवं विस्तृत ढंग से सोचा । वे तथ्यों एवं तर्कों के सटीक इस्तेमाल के आदी थे। बे वर्णभेद की समाप्ति को सामाजिक उत्थान के अंग के रूप में देखते थें।

भारत में सामाजिक जीवन में एक विचित्रता और देखने में आती है। यहां भेद के अन्दर भेद विद्यमान है। भेद मात्र जाति तक ही सीमित नही है,वरन जाति के अन्दर भी उपजातियां है। इन उपजातियों में भी परस्पर भेद है। उनमें ऊँच–नीच की भावना विद्यमान है। एक कहावत है, "ज्यों केले के पात पात में पात,त्यों लोगन की जाति जाति में जाति।"

डा0 अम्बेडकर ने इस प्रकार के भेद का विरोध किया। इस प्रकार

जाति के अन्दर एक कुलीन वर्ग पैदा हो जाता है, जो सरकार एवं समाज द्वारा प्रदत्त समस्त सुविधायें सोख लेता है। इस कुलीनवर्ग में उच्चता की भावना पैदा हो जाती है, जो अपने को शेष विपन्न वर्ग से काट देता है। कहीं कहीं दलित वर्ग के कुलीन वर्ग के लोगो ने सवर्णों से अन्तर्जातीय विवाह किये, इस प्रकार जाति की दीवारे गिरने की शुरूआत हुई, पर दूसरा पहलू यह देखने को मिला कि यह वर्ग शेष जाति से कट गया एवं उसने स्वयं को अलग–थलग कर लिया इस प्रकार सुविधाओं की वृष्टि सभी पर समान रूप से नहीं हो पायी। इसमें जो थोड़े आगे बढ़ गये थे, वे आगे बढ़ते चले गये, शेष में से बहुत थोड़े लोग आगे बढ़ सके। इस प्रकार सुविधायें नीचे तक नहीं पहुंच पाती। उन्हें सम्पन्न वर्ग रास्ते में ही रोक लेता है। सुविधाओं में निष्यंदन हो जाता है। निचले स्तर पर नाम मात्र की सुविधायें पहुंच पाती है। सुविधायें सम्पन्न वर्ग द्वारा निष्यंदित हो जाती है।

इसका हल कुछ विचारकों के अनुसार शिक्षा एवं प्रबुद्धता द्वारा आत्म प्रकाशीकरण है, इसके बिना दलित वर्ग में एवं विशेषकर उसके अति पिछड़े वर्ग में चेतना का प्रसार सम्भव नहीं है। दूसरा एक प्रमुख उपाय है कि दलितों को स्वयं को अन्य लोगों के रणनीतिक उपयोग में आने से बचाना होगा। दलितों का उपयोग अन्य लोग एवं स्वयं उनकी जाति के ही अन्य लोग करते रहे है। दलितों को परिस्थितियों का उपयोग करना सीखना होगा एवं स्वतंत्र दृष्टि अपनानी होगी। तीसरा उपाय है कि जाति को मात्र जाति की दृष्टि से देखना बन्द करना होगा। जाति में से सम्पन्न वर्ग को शेष विपन्न वर्ग से अलग कर विकास की गणना करनी होगी। जाति को वर्ग के रूप में देखना होगा, आखिर संविधान के अनुच्छेद 16(4) में भी 'वर्ग' शव्द ही प्रयोग किया गया है। तभी दलितों को

विकास की स्वच्छ धारा मिलेगी। चौथे उपाय के अन्तर्गत ऐसा नेतृत्व जो 'अन्याय और शोषण' जैसे शब्दों के नारों को मात्र अपने स्वार्थ के लिये प्रयोग करते है, ऐसे नेतृत्व को भले ही वह दलितवर्ग के अन्दर का नेतृत्व हो या बाहर का, पहचान कर अलग–थलग करना होगा एवं सही नेतृत्व भले ही वह सामूहिक हो स्वयं से उभरने देना होगा विकास के मुद्दे पर जाति को सम्पूर्ण इकाई में न देखकर विकास के सोपान के अन्तर्गत स्तरीकरण करके विकास की धारा की शुरूआत समाज की सबसे निचली सीढ़ी पर खड़े व्यक्ति से करना होगी, तभी समग्रता, समरूपता एवं एकरूपता सम्भव है।

भारत का सवर्ण वर्ग अंग्रेजों एवं मुसलमानों का राजनीतिक गुलाम था,पर दलित वर्ग तो जहां अंग्रेजों का गुलाम था, वही सामाजिक रूप से भी सवर्णो के अत्याचार को झेल रहा था। इस प्रकार दलित वर्ग राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से दोहरी गुलामी के आगोश में था।

समाज सुधार एवं धार्मिक आन्दोलन के रूप में डा0 अम्बेडकर ने सबसे पहले 1927 में दलितों के आन्दोलन की अगुआई करते हुये महाड़ के चोबदार तालाब से पानी पिया था। 1930 में नासिक के कालाराम मन्दिर में दलित प्रवेश का बिगुल बजाया था। इस मंदिर में प्रवेश का सत्याग्रह 1935 तक चला था। शिक्षा के क्षेत्र में 1946 में "प्यूपिल्स एजूकेशन सोसाइटी" बनाकर स्कूलों कालेजों की भरमार कर दी।1950में महाराष्ट्र के औरंगाबाद में मिलिन्द महाविद्यालय की नींव रखी, 1953 में मुम्बई में सिद्धार्थ कालेज आफ इकानोमिक्स की स्थापनाकी एवं जून 1956 में मुम्बई में सिद्धार्थ लॉ कालेज खड़ा किया।

डा0 अम्बेडकर ने दलितों की समस्या का राजनीतिकरण किया। अप्रैल 1942 में शैड्यूल कास्ट फैडरेशन एवं 1956 में रिपब्लिकन पार्टी को जन्म दिया। उन्होने सामाजिक असमानता की इस लड़ाई को राजनीतिक स्तर पर लड़ा। यह डा0अम्बेडकर का विश्व के सामाजिक जीवन में मानवीय स्तर पर जबरदस्त योगदान था। यह दुनिया की दूसरी कौमों के लिये राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर एक मिसाल थी। डा0 अम्बेडकर ने दलितों की समस्या को राजनीतिक स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया।

आर्यसमाज के जात–पांत तोड़क मण्डल ने डा0 अम्बेडकर को अपने 1936 के वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया था। यह अधिवेशन लाहौर में होने वाला था। डा0 अम्बेडकर ने इसके लिये अपना अध्यक्षीय भाषण लिखकर तैयार किया था। जात–पांत तोड़क मण्डल की स्वागत समिति ने पाया कि अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त विचार मण्डल को सहन नहीं होगे, इसलिये 1936 का यह अधिवेशन रद्द कर दिया गया था। डा0 अम्बेडकर ने पूरा कारण बताते हुए, "एनहिलेशन आफ कास्ट" के नाम से उस भाषण को प्रकाशित करा दिया था। इसकी काफी आलोचना की गयी थी, पर यह पुस्तक सामाजिक क्रान्ति में मील का पत्थर थी। इसी आरोप के लगने के बाद डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि किसी को उन पर आरोप लगाने का अधिकार नहीं है। वे लोगों को जातिवाद में फंसा हुआ पाते थे।

1932 का कम्यूनल अवार्ड भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह इतिहास का एक ऐसा मिलान बिन्दु था, जिसमें सवर्णों एवं दलितों को

अपने–अपने विचारों को त्यागना पड़ा था। इस पूना पैक्ट के तहत सवर्णो ने अपने हिस्से में से कुछ दिया था एवं दलितों को कुछ मिला था। इससे कई सवर्ण सोचने लगे थे कि उनका सर्वस्व लुट गया है एवं कई दलित यह कहते पाये गये कि वास्तव में उन्हें कुछ नहीं मिला। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर ने दलितों को पूरी भारतीय राजनीति की कीली बना दिया था।

डा0 अम्बेडकर दलितों को देश की राजनीति में दबाव समूह बनाना चाहते थे, यद्यपि यह तेजी से नहीं हो सका, पर इसका असर धीमे–धीमे हो रहा है। हर चुनाव दलितों को कुछ न कुछ देकर जाता है। इसका प्रभाव आज तक जारी है। भारतीय राजनीति एवं प्रशासन सीधे–सीधे दलित समाज के हाथ में नहीं आ रहा, पर वे समूची भारतीय राजनीति एवं सामाजिक व्यवस्था पर अपना प्रभाव बढ़ाते चले जा रहे है।

राजनीतिक योगदान की समीक्षा :–

डा0 अम्बेडकर राजनीति के मौलिक चिन्तक एवं गहन अन्वेषक थे, उनमें राजनीति की विलक्षण प्रतिभा थी। डा0 अम्बेडकर व्यक्ति पूजा को हानिकारक मानते थे। वे व्यक्ति पूजा को अधोगति में ले जाने वाला मानते थे। यह अधिनायकवाद को प्रश्रय देता है। इससे लोगों में दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृति बढ़ती है। इस प्रवृति को वे देश के लिये घातक मानते थे। उनका कहना था कि नए युग में राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करना सीखो। व्यक्ति पूजा को वे गुलामी का कारण मानते थे। उनके अनुसार नेताओं के प्रति विश्वास को भक्ति में नहीं बदलना चाहिये, क्योंकि भक्ति से अन्धविश्वास एवं अन्धविश्वास से पतन होता है।

डा0 अम्बेडकर किसी भी राजनीतिक दल की सफलता के लिये तीन बातें जरूरी मानते थे।

1– राजनीतिक दल के नेता को चरित्रवान होना चाहिये।

2– संगठन में अनुशासन का अत्याधिक महत्व है।

3– राजनीतिक दलों के पास ठोस एवं स्पष्ट कार्यकम होना चाहिये[1]

डा0 अम्बेडकर के अनुसार बहुमत प्राप्त दल को मात्र अपनी पार्टी का हित चिन्तक न होकर आम जनता का हित चिन्तक होना चाहिये। वे देश के हित को सर्वोपरि रखते हुये कहते हैं, कि देश के भाग्य का निर्णय करते समय नेता, व्यक्ति एवं दल के महत्व की गणना नहीं करना चाहिये।

वे यथार्थवादी राजनीतिज्ञ थे। उन्होने भारत–चीन के मध्य पंचशील समझौते पर टिप्पणी करते हुए कहा था, कि राजनीति में विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पंचशील के लिये कोई जगह नहीं है। इस बात की पुष्टि 1962 की चीन की लड़ाई में हुई, जब भारत पर चीन ने सारी संधियों को ताक पर रख कर धोखे से आक्रमण कर दिया था। इस लड़ाई में भारत को बुरी तरह से पराजित होकर सम्मान खोना पड़ा था।

वे इस बात के लिये भी चिंतित रहते थे, कि अच्छे एवं संस्कारवान् लोग राजनीति में आना नहीं चाहते । इस कारण से राजनीति गंदी हो रही है। वे राजनीति का उपयोग जनता के कल्याण में करना चाहते थे। उनके अनुसार काल्पनिक आदर्श को न अपनाकर व्यवहारिक आदर्श को अपनाना चाहिये। राजनीतिक समझौते में भी व्यवहारिक नियम होने चाहिये। डा0 अम्बेडकर ने देश के विभाजन के समय भौगोलिक एवं स्थायी

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 95

सीमांकन की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये इसकी जरूरत बतायी थी। उन्होने कहा कि यह भय सत्य साबित हुआ कि सीमा कमीशन द्वारा निर्धारित की गयी सीमा देश की प्राकृतिक सीमा नहीं है। ऐसी स्थिति में भारत को काफी कठिनाईयां झेलनी पड़ेगी लोगों का अमन–चैन एवं सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी।उन्होने देश के सही एवं जल्दी सीमांकन के लिये लोगों को सलाह दी थी।

फरवरी 1942 को बैगल हाल मुम्बई में डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि यदि पाकिस्तान बनता है, तो भारत की खैर नहीं। विभाजन की दशा में उन्होंने पूर्ण आबादी के बदलाव का विचार प्रस्तुत किया।[1] डा0 अम्बेडकर ने जिन्ना की पचास प्रतिशत की भागीदारी का विरोध किया था।

डा0 अम्बेडकर की इस बात को हम वर्तमान में भारत–पाक, भारत–चीन एवं भारत– बंगलादेश के साथ सीमा विवाद को लेकर निरन्तर होती झड़पों के रूप में देख सकते है। भारत बंगलादेश सीमा पर बी0एस0एफ0 जवानों की बंग्लादेश राइफल्स के जवानों द्वारा की गयी निर्मम हत्या के जख्म ताजे हैं। यह सारे विवाद डा0 अम्बेडकर के यथार्थवादी विचारों की पुष्टि करते हैं।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि यदि वंचित वर्ग ने आजादी की प्रारम्भिक लड़ाई में भाग लिया होता, तो भारत गुलाम नहीं होता । भारत के आजादी खोने का एक बड़ा कारण देश के बहुत बड़े वर्ग का मुख्यधारा एवं समस्याओं से कटा होना था। भारत ने आजादी लोगों के छल कपट के कारण खोई थी। उदाहरण देते हुए डा0 अम्बेडकर कहते है कि मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय राजा दाहिर के

---

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इंकलाब पृ0 – 25

सेनापतियों ने रिश्वत लेकर दाहिर की तरफ से लड़ने के लिये मना कर दिया था। जयचन्द्र ने गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण के समय मदद दी थी। वे कहते है कि शिवाजी की आजादी की लड़ाई के समय कई मराठा एवं राजपूत मुगलों की तरफ से लड़ रहे थे। ब्रिटिश एवं सिक्खों की लड़ाई में उनके प्रमुख सेनापति चुपचाप बैठे थे।[1]

1857की आजादी की लड़ाई में अधिकांश लोग चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे थे। समाज की विषमता के समाप्त न होने की दशा में वह प्रश्न करते है कि, क्या इतिहास स्वयं को पुनः दोहरायेगा। यदि ऐसी घटनाओं की पुनरावृति होती है, तो भारत की स्वतंत्रता पुनः खतरे में पड़ जायेगी। डा0 अम्बेडकर जोर देकर कहते है कि, हमें मन मे ठान लेना है, कि हम अपने शरीर के रक्त की अन्तिम बूंद देकर भी स्वतंत्रता की रक्षा करेगें।[2] डा0 अम्बेडकर ने स्वतंत्रता का पक्ष लेते हुये जनहितकारी कार्यो का नया इतिहास बना दिया, वे यथार्थवादी राजनीतिज्ञ एवं सम्पूर्ण देश के नेता थे।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि एक भाषा लोगों को एक रखती है। दो भाषायें लोगों को बांटती है। भारतीय परस्पर संयुक्त होना चाहते हैं, एक सामान्य संस्कृति विकसित करना चाहते हैं, इसीलिये भारतीयों को हिन्दी को अपनी भाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिये। डा0 अम्बेडकर तो यहां तक कहते हैकि यदि कोई भारतीय एक भाषा के नियम को स्वीकार नही करता तो उसे स्वयं को भारतीय कहने का अधिकार नहीं है।[3] उन्होने भाषायी आधार पर राज्यों को अंगीकृत किया, पर किसी राज्य की भाषा को वहां की राजभाषा बनाने का विरोध किया था। वे चाहते थे कि भाषायी राज्यों के आधार पर राज्यों के गठन के बाद भी, राज्यों के काम काज की भाषा हिन्दी होनी चाहिये।

---

1. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार पृ0 – 107
2. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इंकलाब पृ0 – 24
3. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 138

डा0 अम्बेडकर को लोगों ने आधुनिक मनु की संज्ञा दी है। डा0 अम्बेडकर ने संविधान में स्वतंत्रता, समानता, केन्द्रीकृत सरकार एवं धर्मनिरपेक्ष तत्वों का समावेश करके इसे विशेष महत्व का बना दिया है, यह मूल्य उनके जीवन एवं दर्शन के प्रमुख अंग बने रहे । संविधान निर्माता के रूप में यह भूमिका महत्वपूर्ण रही थी।

डा0अम्बेडकर का धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त पाश्चात्य उदारवादी चिन्तन से अनुप्राणित रहा है। उनका स्पष्ट कहना था कि धर्मनिरपेक्षता अधार्मिकता के सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। इसका एकमात्र अर्थ सभी धर्मो का आदर करना है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी धर्म को मानने की छूट है। यह किसी पर कोई विशेष धर्म नहीं लादती। भारतीय संविधान की यह एक प्रमुख विशेष्शता है। जिसके लिये हम काफी सीमा तक डा0 अम्वेडकर के ऋणी है।

मौलिक चिन्तक :-

डा0 अम्बेडकर ने सृजनशीलता एवं नयी दृष्टि के कारण राजनीतिक दर्शन को नया आयाम दिया है। वे ग्रामों एवं पंचायतों को अधिकार देने के खिलाफ थे। इससे भारत के पारम्परिक मानसिकता वाले समाज में अत्याचार बढ़ने की संभावना रहती है। गॉवों की मानसिकता अत्याचार पूर्ण एवं सामंतशाही की होती है वे जातियों का राजनीतिकरण कर उनके अस्तित्व को समाप्त कर वर्गभेद समाप्त करना चाहते थे। वे हजारों सालों से चली आ रही गुलामी के खिलाफ लड़े। उन्होने कठोर सामाजिक बंधनों को तोड़ने की चेष्टा की, एवं मानवाधिकारों के लिये लड़े । उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया परिवर्तन आज तक जारी है। डा0 अम्बेडकर मौलिक विचारक एवं राजनीति के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होने जो सोचा सो किया। उनका सारा कार्य 'बहुजन हिताय एवं बहुजन

सुखाय' को समर्पित था। वे परार्थ में सार्थकता खोजते थे। पं0 नेहरू ने डा0 अम्बेडकर के विषय में कहा था, कि उनका नाम भारत की स्वतंत्रता और उसके संविधान के साथ इस प्रकार जुड़ा है कि एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।[1] राष्ट्र के क्षितिज पर वही नेता उभरता है जिसमें त्याग करने की शक्ति होती है। डा0 अम्बेडकर ने 'राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित' पुस्तक में स्वतंत्र भारत का निर्माण, मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक दलितों के संरक्षण की व्यवस्था, अनुसूचित जातियों के अधिकारों की रक्षा, कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व, सेवाओं में प्रतिनिधित्व, उच्चतर शिक्षा के प्रावधान एवं नई बस्ती के प्रावधान पर चर्चा की, इस प्रकार उन्होने समस्या और चिंतन एवं राजनीति के हर पहलू को छुआ है, हालांकि यह ज्यादातर अचर्चित एवं अल्पज्ञात है।

डा0 अम्बेडकर की चिंतनधारा का एक विशिष्ट सूत्र है। मानव की स्वतंत्रता, धर्म, राज्य एवं अर्थव्यवस्था की भूमिका में उनका अपना स्वतंत्र दर्शन है। भारतीय सामाजिक जीवन की विसंगतियों को उनके दृष्टिकोण से जाना जा सकता है। उन्होने धार्मिक दृष्टि से भी भारत को जोड़ने का कार्य किया। वे राज्य समाजवाद के हिमायती थे।

डा0 अम्बेडकर के पूर्व कई प्रगतिवादी एवं सृजनात्मक तत्व विलुप्त पड़े थे, जिन्हें स्वतंत्र भारत में उभरने के अवसर प्राप्त हुये। डा0 अम्बेडकर इस बात को जानते थे, कि जनता की सुदृढ़ता और नई राजनीतिक संस्कृति का मूल आधार परिवर्तित राजनीतिक परिस्थिति में ही संभव हो सकता है। डा0 अम्बेडकर ने सिद्धान्ततः यह निश्चित करना चाहा था, कि सत्ताधारी वर्ग राज्य के माध्यम से एक ऐसे समाज की स्थापना करेगा, जिसमें शोषण, अन्याय एवं दमन का अंत हो। उस व्यवस्था में सम्पति एवं उत्पादन के

---

1. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इंकलाब पृ0 – 31

साधनों का कुछ ही हाथों में एकत्रीकरण न हो । राष्ट्रीय संसाधनों का न्यायोचित वितरण हो।

लोकतंत्रीय विचारक :–

डा0 अम्बेडकर इस पक्ष में थे कि सुराज या स्वराज्य के स्थान पर लोकतंत्र शब्द उपयुक्त रहेगा। लोकतंत्र प्राप्त करने के लिये प्रयास करना चाहिये। डा0 अम्बेडकर ने 'फैडरेशन वर्सेस फीडम' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अंग्रेजों की कुटिल चाल का पर्दाफाश किया गया था। डा0 अम्बेडकर की 'थॉट्स ऑफ पाकिस्तान' नामक पुस्तक परिस्थितियों का यथार्थवादी विश्लेषण थी।

जुलाई1942 को अपनी लड़ाई खुद लड़ने के लिये 'शेड्यूल कास्ट फैडरेशन' की स्थापना की गयी थी। जो 1932 के पूना पैक्ट के बाद की निराशा से उपजी थी। डा0 अम्बेडकर ने 1930में गोलमेज परिषद में भारत एवं दलितों की मुक्ति की मांग की । प्रतिनिधि शासन में दलितों के प्रतिनिधित्व की मांग उठाई। डा0 अम्बेडकर इस बात के विरोधी थे, कि दलितों को समस्त मानवीय व्यवहारों एवं अधिकारों से वंचित किया जाय। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि यदि विदेशी तत्वों को निष्कासित कर आर्थिक परिवर्तनों को वरीयता दी जाये, तो सशक्त प्रशासन आसानी से दूरगामी समाज सुधार ला सकता हैं।

डा0अम्बेडकर के अनुसार दलित समाज अपने स्वाभाविक अस्तित्व को तभी प्राप्त कर सकता है। जब इसके बीच से ही दलित हितों के लिये प्रतिबद्ध नेतृत्व उभरे। उसके पास वर्गगत समस्याओं की ठोस जानकारी हो। इस सबके बिना

दलित आन्दोलन का पतन का शिकार हो जायेगा। संगठन को व्यक्ति केन्द्रित नहीं होना चाहिये। समाज के सामान्य हित के लिये संविधान, जनप्रतिनिधि एवं राज्याधिकारी तीनों का सहयोग जरूरी है।

नई पीढ़ी को संविधान में निहित व्यवस्था को समझना चाहिये। डा0 अम्बेडकर के अनुसार संविधान जनता द्वारा निर्वाचित शासक वर्ग को निर्देश देता है, कि वे आर्थिक एवं सामाजिक प्रजातंत्र की स्थापना करें। संविधान सभा में डा0 अम्बेडकर ने विचार व्यक्त करते हुये कहा था, कि संविधान निर्माताओं का उद्देश्य यह नही था,कि आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिये संविधान में एक ठोस कार्यक्रम का उल्लेख किया जाय वरन् उनकी इच्छा थी, कि प्रत्येक सरकार आर्थिक प्रजातंत्र की स्थापना का प्रयास करेगी। आर्थिक प्रजातंत्र तक पहुंचने के मार्ग में विभिन्न विचारधाराओं के लिये पर्याप्त जगह छोड़ दी गयी हैं। डा0 अम्बेडकर ने आगे कहा कि उन्हें यह कहने का अवसर प्राप्त है कि वह जनता को बताये कि आर्थिक प्रजातंत्र स्थापित करने का कौन सा मार्ग उत्तम है। उन्हें अपने तरीके से कार्य करने का पूर्ण अवसर प्राप्त है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है, कि युवा पीढ़ी को अपने ढंग से अनुकूल समाज एवं आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने का अधिकार है।

वे भारत में संसदीय एवं राजनीतिक जनतंत्र के समर्थक थे। उन्होने दलितों को राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन की राह दिखायी। वे राजनीतिक आजादी के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक आजादी को भी जोड़ते थे। डा0 अम्बेडकर पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होते हुये भी भौतिक सुख–सुविधाओं को मानव मूल्यों के ऊपर

तरजीह नही देते थे। वे समाज के सबसे छोटे घटक व्यक्ति को पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व के प्रति जिम्मेदार बनाना चाहते थे।

हम देखते है कि डा0 अम्बेडकर शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र को सर्वाधिक चाहते थे। वह लोकतन्त्र को ऐसी प्रक्रिया मानते थे, जिसमें रक्तपात के बिना जन साधारण के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाते हैं। सच्चा लोकतंत्र शासन प्रणाली मात्र नहीं है। वह मिलजुलकर रहने का एक तरीका है। संसदीय शासन प्रणाली में जनता की अदालत के कारण प्रतिनिधियों में भय बना रहता है। वे एकात्मक शासन के समर्थक थे। संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए जरूरी है कि सामाजिक, आर्थिक जीवन में घोर असमानतायें न हों। भेदभाव सामाजिक दरार को जन्म देता है, परिणामतः खूनी क्रान्ति के बीज अंकुरित होने लगते है। दूसरी शर्त बहुदलीय प्रणाली एवं प्रभावशाली विपक्ष है। लोकतंत्र में अल्पमत पर बहुमत का अत्याचार नहीं होना चाहिये। अल्पमत में सुरक्षा की भावना ही लोकतंत्र का आधार स्तम्भ है।

मानवतावादी चिन्तकः–

डा0 अम्बेडकर ने मनुष्य होने का उद्घोष किया था। मनुष्य होने के नाते समस्त नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर दावा भी पेश किया था। जब तक वह अधिकारों के लिए लड़े, कभी विश्राम नही किया, और दूसरों को भी प्रेरित किया। उन्होने अपना ध्येय मानव अधिकारों की प्राप्ति रखा था। अधिकारों से आत्म सम्मान की भावना आती है। ऐसा सतत् अभ्यास से होता है। डा0 अम्बेडकर ने कहा था कि संसार में आत्म सम्मान के साथ जीना सीखो।[1] इस संसार में व्यक्ति को कुछ भी करने की सम्भावना मन

---

1. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन पृ0 - 233

में होनी चाहिये। जो व्यक्ति संघर्ष करता है,वह अकेले उन्नति कर लेता है, असहाय रहने का युग अब समाप्त हो गया है। उन्होने एक नये युग का शंखनाद किया था, एवं दलित वर्ग के लिए आशा व्यक्त की थी, कि इस देश की राजनीति और विधान में भाग लेने की क्षमता के कारण वह सब कुछ सम्भव कर सकते है।

उन्होने व्यक्तिगत स्तर पर जिस अभिशाप को सहा था, उससे उनमें जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण जन्मा था। वे उस दृष्टिकोण के द्वारा हालातों का सामना करते हुये हिन्दू समाज को विकृतिमूलक, अमानवीय व्यवहार से मुक्त कराना चाहते थे। उनका राजनीतिक चिन्तन शोषण को नकारने का था। उनका चिन्तन सवर्ण वर्ग के विरोध में न होकर, शोषणके विरोध में एवं दलित वर्ग के अस्तित्व की रक्षा के लिये था। वे सामाजिक क्षेत्र में मानवतावादी एवं राजनीतिक क्षेत्र में नैतिकतावादी थे। उनके अनुसार दलितों की मुक्ति राजनीतिक शक्ति में ही सम्भव है।

उन्होने 12 जून 1951 को मुम्बई में भाषण दिया था, कि राजनीतिक शक्ति समस्त सामाजिक उन्नति की कुंजी है।[1] उनके नए दल के गठन के पीछे भी वर्गहीन समाज का स्वप्न कार्य कर रहा था। हर जाति को अपना भाग्य स्वयं बनाना होगा। डा0 अम्बेडकर कहते थे, मानव अपना निर्माता स्वयं है। डा0 अम्बेडकर की बात को अछूत वर्ग समझ चुका था। वे वर्ग की सोई आत्मा को जगाने का प्रयास कर रहे थे, पर सम्मान खोकर वे कुछ भी प्राप्त नहीं करना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर के विचार में जातिवाद को समाप्त किए बिना न तो राजनीतिक सुधार सम्भव है, न ही आर्थिक सुधार सम्भव है।

वे दलितों के आत्मसुधार में विश्वास करते थे। शासन की संस्थाओं में दलित वर्गो के उचित एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व पर उन्होने बल देते हुये विश्वास व्यक्त

1. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 159

किया, कि इससे दलित वर्गों को कानूनी तरीके से शिकायत निवारण का अवसर मिलेगा। उन्होने दलित जातियों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण लेने की सलाह दी।

डा0 अम्बेडकर यह नही चाहते थे कि शोषण की प्रक्रिया उलट जाए, वरन् वे शोषण की सारी व्यवस्था को ही समाप्त करना चाहते थे। उनका विचार था कि सामाजिक शोषण समाप्त होने पर ही समरसता आयेगी। सामाजिक समरसता के लिए कट्टरता को त्यागना होगा। इसके लिए राजनीति एवं सामाजिक जीवन में विचारों की उदारता जरूरी है। वे हर क्षेत्र में लोगों की मानसिकता बदलना चाहते थे। वे यह भी चाहते थें कि परिवर्तन के इस दौर को नकारात्मक परिणामों की ओर न जाने दिया जाय।

वे चाहते थे कि पददलित, कमजोर, उत्पीड़ित, लोगों की सामाजिक मुक्ति को राज्य का लक्ष्य निर्धारित किया जाये। सरकार का दायित्व लोगों को सामाजिक न्याय दिलाना है। इस प्रकार उन्होंने राजनीति के माध्यम से एक विधिक आधार प्रस्तुत किया। उन्होने सामाजिक मुक्ति एवं न्याय के लिये संवैधानिक व्यवस्था एवं विधि के शासन को प्रमुख स्थान दिया। राजनीतिक क्रिया का केन्द्र–बिन्दु व्यक्ति रहा है। उनका चिन्तन गरिमा को महत्व देता है। वे दिव्यता से दूर सामाजिक मानव बने रहे । उनका राजनीतिक दर्शन उन्नत है, एवं सबको मनुष्यता की ओर ले जाने वाला हैं। वे सभी लोगों की एकता भाईचारा चाहते थे। दुःखी, पीडित, स्वबांधवों के प्रति प्राथमिकता से करूणा का भाव होने पर भी वे कभी विदेशी चालों के शिकार नहीं हुये और देश, समाज तथा राष्ट्र के प्रति सदैव समर्पित रहे। उन्होंने सदैव राष्ट्रभक्ति की भावना से स्थिति का ऐतिहासिक एवं

वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उन्होने पहला हमला 'साहेब वाक्यं प्रमाणम्' मानने वालों पर किया।

डा0 अम्बेडकर दलित नेतृत्व के बारे में भी सदैव चिंतित रहते थे। उनका विचार था कि यदि युवा वर्ग को भविष्य में योग्य कर्णधार न मिले, तो उन्हें साम्यवाद के प्रभाव से बचाना मुश्किल हो जायेगा। डा0 अम्बेडकर दलित युवकों को विदेशी वादों से पूर्णतः बचाना चाहते थे। उनका मानना था कि प्रगतिशीलता एवं समान अधिकार की आंधी इतनी तेजी से बहने वाली है, कि स्वार्थी नेतागण एवं विदेशी शक्तियां इसका अनुचित लाभ उठाना चाहेंगी। इन सबसे मुकाबला करने के लिये कई मोर्चो पर युद्ध करना होगा। डा0 अम्बेडकर का विचार था कि विशाल भारतीय समाज का एक बड़ा भाग काल के प्रभाव के कारण अधिक दिनों तक धैर्य धारण न कर सकेगा, इसलिये उनके विचारानुसार उन्होंने प्रयास किया था, कि दलित समाज को विदेशाभिमुख एवं धनाभिलाषी होने से रोका जा सके।

डा0 अम्बेडकर ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने मूकनायक(1920), बहिष्कृतभारत(1927), पत्र प्रकाशित कर भारत के दलित समाज के जनजागरण में प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होने सम्पूर्ण भारतीय पत्रकारिता में एक नये युग की नींव रखी, जिसे हम दलित मुक्ति आन्दोलन के प्रबोधन की बुनियाद कह सकते हैं। उन्होंने दलित समाज के प्रश्नों पर प्राथमिकता से चर्चा की। नये सिद्धान्त स्थापित किये एवं दलितों, पिछड़ों व मजदूर वर्ग के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शिक्षा संम्बन्धी मूलभूत प्रश्नों पर अपने विचार केन्द्रित किए। डा0 अम्बेडकर ने तथ्यों एवं तर्को का सटीक इस्तेमाल किया, वे न सिर्फ प्रतिक्रियावाद से संघर्ष कर रहे थे, वरन्

अपने समाज की कमियों को भी इंगित करते रहे थे।

डा0 अम्बेडकर के पत्रों से ज्ञात होता है कि उन्होने अस्वस्थ रहते हुये भी अपार मेहनत की, और ऐसा करने के पीछे उनका विचार था, कि जो व्यक्ति न अपने कल्याण के लिये कार्य करता है, और न दूसरों के लिये अर्थात् न अपनी स्वतंत्रता एवं समानता की चिन्ता करता है, और न अन्य लोगों की, वह निरर्थक जीवन के अस्तित्व में जी रहा है। वह अपने लिये ही नही वरन् समस्त संसार के लिये व्यर्थ है। जिस आदमी ने अन्य लोगो की स्वतंत्रता एवं समानता के लिये संघर्ष किया, वह श्रेष्ठ एवं महान दोनों ही है और जिस मानव ने अपने लिये ही नही वरन्, सबके कल्याण में योगदान किया है, वह निश्चितरूप से सर्वोतम सद्गुणों से विभूषित व्यक्ति है।

3. डा0 अम्बेडकर के विचारों की आलोचना, प्रत्यालोचना एवं निष्कर्षः

एक ओर जहां डा0 अम्बेडकर के प्रशंसकों का अभाव नहीं है, वहीं उनके कार्यो की आलोचना करने वालों की भी कमी नहीं है। विचारकों ने उनके कार्यो का मूल्यांकन एवं आलोचना अपने दृष्टिकोण से की है।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका :—

डा0 अम्बेडकर के बारे में प्रख्यात पत्रकार एवं वर्तमान केन्द्रीय मंत्री अरूण शौरी कहते हैं, कि डा0 अम्बेडकर का जो चित्र संसद के केन्द्रीय कक्ष में लगा है, वह उनके जीवन से अधिक बड़ा है।[1] अधिकतर जातीय राजनीति करने वाले लोग अम्बेडकर की तरह देवता बन जाते है। ऐसा भी होता है कि कुछ तथ्य मिथ बन जाते है,

---

1- Arun Shourie, Worshipping false Gods P. - X

एवं कुछ मिथ तथ्य बन जाते है। एक भी घटना या उदाहरण इस प्रकार का नहीं है, कि डा0 अम्बेडकर ने देश के किसी स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा बंटाया हो, इसके विपरीत उन्होंने हर जगह राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध किया। वे उनके साथ थे जो इसकी विफलता पर खुशी मना रहे थे।[1] डा0 अम्बेडकर ने राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध किया था, इस बात के लिये उनका यश कम हो सकता है।[2] अगर देखा जाय तो इस बात के लिये भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि अंग्रेजों के द्वारा युद्ध जीतने में प्रमुख भूमिका अछूतों ने निभायी।[3]

डा0 अम्बेडकर इस बात से भी भयाक्रांत थे, कि कहीं अंग्रेजों के जाने के बाद सवर्ण हिन्दू अछूतों पर और अधिक अत्याचार न करने लगें। ब्रिटिश राज के समर्थन करने का यह भी एक कारण था।[4]

डा0 अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में अंग्रेजों की मंशा के अनुरूप कार्य किया। 28 दिसम्बर 1932 को सर सेमुएल होर ने लिखा, कि डा0 अम्बेडकर ने कान्फ्रेंस में अच्छा कार्य किया है। हमें हर सम्भव तरीके से उनकी मद्द करनी है। डा0 अम्बेडकर ने दूसरे सैनिकों के बदले में अफगानिस्तान में दलितों को अधिक सक्षम बताया था,[5] इस बात पर भी आश्चर्य होता है, कि डा0 अम्बेडकर ने मुस्लिमलीग की पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया था।[6]

ब्रिटिश डा0 अम्बेडकर को काफी पंसद करते थे। उनका वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में प्रवेश इसी का नतीजा था। इसका एक उद्देश्य कानूनों को

1- Arun Shourie, Worshipping false Gods — पृ0 - 03
2- वही, — पृ0 - 49
3- वही, — पृ0 - 604
4- वही, — P. - 17
5- वही, — पृ0 - 59
6- वही, — पृ0 - 59

आसानी से पारित करना भी था।

डा0 अम्बेडकर निर्वाचन सीटों के सम्बन्ध में भी जागरूक थे, उनका आरक्षण के सम्बन्ध में कहना था, कि वे गुणवत्ता एवं संख्या दोनों चाहते है। अरूण शौरी तो यहां तक लिखते हैं कि वे अछूतों के लिये शेष हिन्दुस्तान से अलग एक व्यवस्था चाहते थे।[1]

समाज सुधारक के रूप में भूमिका :—

डा0 अम्बेडकर के विचारानुसार समाज, राष्ट्र एवं देश एक स्पष्ट अर्थ की प्रतिध्वनि नहीं देते हैं। दार्शनिक अर्थ में राष्ट्र का अर्थ एक इकाई के रूप में तो हो सकता है, पर सामाजिक रूप से इसे वर्गों के रूप में ही देखना पड़ता है। देश की आजादी को वे निम्न वर्ग की आजादी को उच्च वर्ग के हाथों में देने के रूप में देखते थे।[2] देखा जाय, तो इस प्रकार डा0 अम्बेडकर वर्ग को राष्ट्र से अधिक महत्व देते थे।

डा0 अम्बेडकर दलितों को हिन्दू धर्म से पृथक मानते थे। कई बार तो ऐसा भी प्रतीत होता है, कि वे उन्हें हिन्दुओं से अधिक महत्व देते थे। वे दलितों को मुस्लिम एवं ईसाईयों की तरह अलग मानते थे। कांग्रेस के विरोध को वे वेतनभोगी कार्यकर्ताओं की करतूत मानते थे। इस प्रकार डा0 अम्बेडकर की यह भावना सुधार की न होकर पृथकता की है। उनके अनुसार हिन्दू एवं दलित सहभागिता की समान परिस्थितियां नहीं रखते हैं, हिन्दू अछूतों को अलग मानते हैं। हिन्दू दलितों को शत्रु के रूप में देखते हैं, इस प्रकार दोनों के मध्य शत्रुता है।[3] दोनों में सुसंगतता नहीं हो सकती। इस प्रकार

1– Arun Shourie, Worshipping false Gods पृ0 – 267

2. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, वॉल्यूम IX पृ0 – 201–202

3. वही, पृ0 – 92–94

डा0 अम्बेडकर इस पृथकता को स्थायी रूप देना चाहते थे। डा0 अम्बेडकर केवल समाज के एक वर्ग का हित देखते थे।

इस प्रकार डा0 अम्बेडकर ने घृणा के जो बीज बोये, उसकी उपज हमें वर्तमान राजनीति में देखने को मिलती है। वर्तमान में राजनीतिक दलों के मध्य जातीय आधार पर विद्वेष इसी भावना का विस्तार है। इसे स्वामी विवेकानन्द के विचारों से समझ सकते हैं। स्वामी जी ने शिक्षा प्रणाली पर प्रहार करते हुये कहा था, कि वर्तमान निषेधात्मक शिक्षा का परिणाम पूर्वजों एवं परम्पराओं के प्रति बढ़ते असम्मान के रूप में है।[1] प्रख्यात पत्रकार अरूण शौरी डा0 अम्बेडकर के ग्रन्थ 'रिडल्स इन हिन्दूइज्म' एवं अन्य ग्रन्थों में इसी शिक्षा का प्रभाव देखते हैं।[2] डा0 अम्बेडकर ने अपने अनुयायियों को हिन्दू धर्म के विरूद्ध घृणा एवं संघर्ष का पाठ पढ़ाया।

यहां पर हम डा0 अम्बेडकर की तुलना प्रसिद्ध समाज सुधारक नारायण गुरू से भी कर सकते हैं। प्रसिद्ध समाज सुधारक नारायण गुरू ने अपने अनुयायियों को पूजा के निम्न तरीके छोड़कर ईश्वर पर विश्वास करना सिखाया। उन्होंने लोगों को अधंविश्वास छोड़ने की सलाह दी। उन्होंने लोगों को दूसरे धर्मों को न अपनाने की सलाह दी थी एवं विशुद्ध हिन्दुत्व पर बल दिया। अरूण शौरी कहते है, कि डा0 अम्बेडकर ने लोगों को मांग करना सिखाया। नारायण गुरू ने स्वयं से लोगों को मांग करना सिखाया। नारायण गुरू ने उच्च जातियों से लोगों को मंदिर में प्रवेश करने देने के लिये कहा। उन्होंने पुजारियों से लोगों को सत्य का ज्ञान कराने एवं ईश्वर में विश्वास पैदा कराने के लिए कहा। जहां डा0 अम्बेडकर ने धर्म परिवर्तन की हिमायत की वहीं

---

3. स्वामी विवेकानन्द, द फ्यूचर ऑफ इण्डिया — पृ0 – 301– 302
4. Arun Shourie, Worshipping false Gods — P. - 377

नारायण गुरू ने धर्म परिवर्तन का विरोध किया। नारायण गुरू ने आत्मसम्मान एवं शिक्षा की सीख दी थी। डा0 अम्बेडकर ने लोगों को स्वार्थ एवं घृणा करना सिखाया। नारायण गुरू ने देश को पुनर्यौवन प्रदान किया।[1] वहीं डा0 अम्बेडकर ने जातिगत विद्धेष को बढ़ावा दिया। डा0 अम्बेडकर के एक काम की अरूण शौरी ने काफी तारीफ की है, वह है प्रलोभनों के बीच से भी बौद्ध धर्म स्वीकार करना, जो इस देश की मिट्टी से जुड़ा है।

संविधान निर्माता :–

प्रसिद्ध लेखक भानु प्रताप शुक्ला डा0 अम्बेडकर को संविधान का लेखक नहीं मानते है।[2] वे इस बात के प्रति भी चेताते हैं कि एक अति का हल दूसरी अति नहीं हो सकता, अरूण शौरी अपने एके लेख में कहते हैं कि किसी एक व्यक्ति को संविधान का लेखक नहीं कहा जा सकता। एक के बाद एक मुद्दे पर उपसमिति की रिपोर्ट से पता चलता हैं कि फैसले कैसे लिये गये? एक उदाहरण स्वरूप डा0 अम्बेडकर ने सुझाव दिया था, कि बहुसंख्यक समुदाय के उम्मीदवारों को तभी निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए, जब उन्होंने अपने निर्वाचन क्षेत्रों में अल्पसंख्यक समुदाय के मतदाताओं के निश्चित न्यूनतम संख्या में मत प्राप्त किये हों। यह प्रस्ताव भारी बहुमत से पराजित हो गया। मिनट्स में आगे लिखा है, "सिर्फ डा0 अम्बेडकर ने इसके पक्ष में वोट दिया।"[3] इसके अलावा मंत्री मण्डल में भी आरक्षण का प्रस्ताव पास नहीं हो सका था। उप समितियां भी बार–बार विचार की इसी प्रक्रिया से गुजरी और फिर खुद संविधान सभा भी, जिसने न सिर्फ अपनी समितियों की अनुशंसाए स्वीकार कीं, संशोधित की, बदली, खारिज की, बल्कि यही सब उसने अपने निर्णयों के साथ भी किया, जब प्रस्तावों पर विचार किया गया। अनुशंसाओं को इसी प्रकार अंतिम रूप दिया गया और फैसले इसी प्रकार लिए गये।

---

1. Arun Shourie, Worshipping false Gods P. - 381
2. दैनिक जागरण, 14 सितम्बर 1998
3. दैनिक जागरण, 13 दिसम्बर 1996

चर्चाओं के द्वारा बार–बार संशोधनों और पुनर्विचारों के द्वारा, वोटों के द्वारा, तो फिर संविधान के लेखक होने का सेहरा किसके सर पर बाँधा जाय?[1]

डा0 अम्बेडकर ने स्वयं कहा था कि मैं तो भाड़े का टट्टू था, जो कुछ मुझसे करने के लिये कहा गया, अपनी इच्छा के विरूद्ध मैंने कर दिया। मैं यह संविधान नहीं चाहता। यह किसी के लिये भी उपयुक्त नहीं है। डा0 अम्बेडकर ने अनुच्छेद 31 के बारे में चर्चा करते हुये 15 मार्च 1955 को राज्यसभा में कहा था, "जिस अनुच्छेद पर हम यहां चर्चा कर रहे है, वह एक ऐसा अनुच्छेद है, जिसके लिए मैं और प्रारूप समिति कोई भी जिम्मेदारी नहीं ले सकते। हम इसके लिये कोई जिम्मेदारी स्वीकार नही करते। यह हमारा प्रारूप नहीं है।[2]

उपरोक्त विवरण से इस बात की झलक मिलती है, कि संविधान वास्तव में किस प्रकार लिखा गया, एक पुनरावृत, सामूहिक प्रयास, अनेक व्यक्तियों के योगदान से कई–कई दृष्टिकोणों के समायोजन से स्वयं अम्बेडकर ने कांग्रेस पार्टी की बैठकों को संविधान सभा की बैठकों की संज्ञा दी थी।[3]

इस प्रकार संविधान का प्रारूप कई व्यक्तियों के सामूहिक श्रम का नतीजा है। अनेक हिस्सों के कई–कई रूपान्तर हुये। अनेक अनुच्छेद अंगीकार किये गये, कई अस्वीकार कर दिये गये। खुद डा0 अम्बेडकर ने इस प्रारूप के मौलिक होने का दावा नहीं किया था।[4] कई लोगों ने डा0 अम्बेडकर की आलोचना की एवं उनके संविधान के रचयिता होने को भ्रम ठहराया।

---

1. दैनिक जागरण, 13 दिसम्बर 1996
2. वही, 04 अक्टूबर 1996
3. वही, 04 अक्टूबर 1996
4. वही, 04 अक्टूबर 1996

इन समस्त आलोचनाओं एवं प्रत्यालोचनाओं के बाद भी कहा जा सकता है, कि डा0 अम्बेडकर आधुनिक भारत के उन थोड़े से नेताओं में से एक है, जिन्होंने चिन्तन एवं संघर्ष के द्वारा हमारे देश को हर क्षेत्र में प्रभावित किया है। वे अपने जीवनकाल में और उसके बाद भी बौद्धिक बहस व राजनीतिक वाद–विवाद के विषय बने रहें। उनकी जीवनी लिखने के बहाने लोगों ने सिद्ध करना चाहा कि वे एक सामान्य व्यक्ति थे, उन्होंने भारतीय जीवन को सही दिशा नहीं दी। किन्हीं भ्रान्त धारणाओं के वशीभूत समाज के एक वर्ग के लोग एक फर्जी देवता की पूजा करते हैं। वही कुछ लेखकों ने उन्हें देवदूत की श्रेणी में भी रखने का प्रयास किया है। पर इस शोधपत्र में उनका जो भी पक्ष समाज को प्रेरणा देने वाला है। उसका निष्पक्ष मूल्यांकन किया गया है। वे न तो भगवान या भगवान की ओर से भेजे गये कोई संदेशवाहक थे एवं न इतने निरीह, निर्जीवजन जिनके योगदान की उपेक्षा की जाय।

मेरी नजर में डा0 अम्बेडकर ने बचपन से ही, विद्यार्थी रूप में व उच्च शिक्षा अध्ययन करते समय समाज को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। 1918–19 के सुधार के समय ही उन्होंने दलितों के लिये विशेष अवसर की मांग प्रारम्भ कर दी थी, इसलिये उनका सार्वजनिक जीवन कब से प्रारम्भ हुआ, इसकी कोई एक निश्चित तिथि नहीं हैं। उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था से ही समाज के उपेक्षित वर्ग को प्रभावित किया।

जहां तक राष्ट्रीय आन्दोलन से असहयोग का प्रश्न है, इस मुद्दे पर सम्यक दृष्टि से समीक्षा करने की जरूरत है। अंग्रेजों ने चेम्सफोर्ड सुधार के जरिये जो संवैधानिक सुधार किये, उसमें अल्पसंख्यक (धार्मिक) आधार पर आरक्षण की बात कही

गयी, लेकिन दलित आरक्षण का विरोध हुआ। उस सुधार के लिये कांग्रेस का पक्ष रखने वाले डा0 राजेन्द्र प्रसाद एवं पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि व्यस्क मताधिकार होने पर दलितों का प्रश्न स्वयं हल हो जायेगा। उनके लिये आरक्षण की कोई जरूरत नहीं है। नामांकन मात्र से उनका प्रतिनिधित्व हो जायेगा। उस समय सभी दलित वर्गों के लोग दलित प्रश्नों से मुँह फेर लेते थे। इसलिये अंग्रेजों के विरूद्ध आंदोलन खड़ा होना स्वाभाविक था, कि उनके किसी प्रयास के बिना समाज की उपेक्षित वर्ग की साझेदारी कैसे संभव होती।

डा0 अम्बेडकर मानते थे, कि स्वतंत्रता संग्राम के दबावों के कारण ही इस देश के अछूतों पर अंग्रेज सरकार कुछ कृपा प्रदान कर सकती है। उस समय के कुछ देशी रियासतों ने भी इस कार्य में डा0 अम्बेडकर का साथ दिया, तथा कुछ रियासतों ने कानून बनाकर अछूतों को अपनी रियासती सेवाओं में काम का अवसर दिया था। इसलिये अंग्रेजों के कृपाकांक्षी वर्ग के लोगों के लिये प्रथम वरीयता समाज परिवर्तन के काम को था, जिसमें हजार वर्षों से शास्त्रसम्मत जन्मना जाति व्यवस्था के तिरस्कार से वे मुक्त हो सकें। राष्ट्रीय आन्दोलन के निशाने पर अंग्रेजों की सैकड़ों वर्षों की गुलामी से मुक्ति थी, तो डा0 अम्बेडकर की निशाने पर पाँच हजार वर्ष पुरानी वर्ण व्यवस्था के गर्भ से उपजी तिरस्कार मुक्ति थी।

आखिर जो बुद्धिजीवी 1942 के संग्राम में डा0 अम्बेडकर की पृथकता से खिन्न हो, उनकी आलोचना करते हैं। वही असहयोग करने के लिये अन्य लोगों की चर्चा क्यों नहीं करते। आजाद भारत ने ऐसी तमाम विभूतियों को महत्वपूर्ण

स्थान दिया, जिनका गांधी जी के नेतृत्व वाले आन्दोलन से कुछ लेना–देना नहीं था। प्रारम्भिक दौर में जिन्हें महान विद्रोही की संज्ञा दी गयी ऐसे एम0एन0राय के बारे में तो कहा जाता है, कि उन्हें 13 हजार रूपये माहवार अंग्रेज सरकार से मिलने लगा था, कि वे भारत के मजदूर आन्दोलन को कांग्रेस के चंगुल से अलग कर दें। आखिरकार अंग्रेज वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के मेम्बर सी0पी0रामास्वामी अय्यर, जे0पी0श्रीवास्तव और महान तिलकवादी माधवराव, श्रीहरि पाण्डेय भी थे, जिन्हें आजाद भारत की सरकार ने तमाम सम्मानजनक पदों पर स्थापित किया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विडम्बना है कि अंग्रेजी साम्राज्य का अन्तिम वायसराय लार्ड माउण्ट्बेटन, आजाद भारत का भी प्रथम गवर्नर जनरल हुआ और उन्हें स्थापित करने में स्वतंत्रता संग्राम की दोनों महान विभूतियों नेहरू एवं पटेल साझीदार थे। ऐसा कोई व्यक्ति जिसके कर्म और व्यक्तित्व ने किसी समाज को गहराई से प्रभावित किया हो, उसका मूल्यांकन निष्पक्ष होना चाहिये। डा0 अम्बेडकर के विद्रोह से आहत भारतीय समाज के कुछ वर्गों के लोगों में, जिन्होंने शास्त्रसम्मत व्यवस्था बनाकर हमारे सामाजिक स्वरूप को कुरूप कर दिया था, उनके मन में आने वाले काफी समय तक गुस्सा बना रहेगा। इसे सहानुभूति एवं अपनत्व से मिटाना होगा।

डा0 अम्बेडकर की राष्ट्रभक्ति बेजोड़ थी। भारत की एकता में उनका पूरा विश्वास था। भारत के संविधान का ढाँचा तैयार करते समय उन्होंने राष्ट्रीय एकता को ही महत्वपूर्ण माना और उसी के अनुरूप तंत्र के गठन पर जोर दिया। कांग्रेस के सभी

विवादों को ताक पर रखकर उन्होंने नेहरू मंत्रिमण्डल में शामिल होना स्वीकार किया। वे सामाजिक परिवर्तन के प्रबल पक्षधर थे, इसीलिये उनके ऐजेन्डे में यह विषय पहले नम्बर पर था।

किसी व्यक्ति के किसी कदम पर टीका करने के साथ परिस्थितियों का भी वस्तुनिष्ठ, विश्लेषण आवश्यक होना चाहिये। कभी–कभी अवसर आने पर डा0 अम्बेडकर के विरोध में कांग्रेस एवं लीग साथ–साथ खड़े हो जाते थे। कांग्रेस ने लीग के सन्तुष्टीकरण का प्रयास किया, जिसका परिणाम भारत विभाजन के रूप में सामने आया।

डा0 अम्बेडकर का मूल्यांकन मात्र इस आधार पर नहीं किया जाना चाहिये, कि स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान नगण्य था। समय–समय पर कई महापुरूषों नें कांग्रेस के नेतृत्व में छिड़ने वाले आन्दोलनों से नाता नहीं रखा। 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव किया था। इसके पूर्व 1919 में माँटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की रिपोर्ट छपी एवं रौलट एक्ट पारित किया गया था, इस कानून का जबरदस्त विरोध हुआ था, जिसके कारण जलियांवाला बाग का नृशंस हत्याकांड हुआ था। देश के इस भयानक परिदृश्य से मुक्ति हेतु शीघ्र संग्राम की जरूरत थी, फिर भी पं0 मदन मोहन मालवीय, देशबन्धु चिरंजनदास और श्रीमती एनी बेसेण्ट ने गांधीजी के प्रस्तावों का विरोध किया था। किसी भी राष्ट्रनायक के जीवन के अनेक पहलू होते हैं, किसी का किसी क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान होता है, और कृतज्ञ राष्ट्र उसके महत्वपूर्ण पक्ष को ध्यान में रखकर उस व्यक्ति को श्रृद्धा एवं सम्मान के साथ याद करता है।

संविधान का प्राक्‌दर्शन, इसके नीति निर्देशक तत्व और मूल अधिकारों का अध्याय हमारे देश के राष्ट्रीय मुक्तिसंग्राम के दौर में विकसित हुआ और उसे आगे बढ़ाने में नाम एवं अनाम हजारों लोगों के बलिदान, लाखों के त्याग, एवं न्यौछावर की भावना ने इन अध्यायों को आगे बढ़ाया। संविधान सभा में आने के पूर्व सभा के लिये डा0 अम्बेडकर द्वारा जो तैयार ज्ञापन है, उसमें उनके संवैधानिक दृष्टिकोण का सार है। उसे देखकर उनके बारे में बनायी धारणा का खंडन होता है। आज आवश्यकता हैं उनके सकारात्मक पक्ष को आगे रखकर समाज के उपेक्षित वर्ग को मुख्यधारा से जोड़ने की, शोध तथा चिंतन को निष्पक्षता से देने की।

निष्कर्ष :—

डा0 अम्बेडकर का मानना था कि केवल उथली समझ वाले लोग सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप नहीं दे सकते । इसे सत्तावाद के समीकरण से नहीं समझा जा सकता कालबाहय व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिये । डा0 अम्बेडकर का विचार विशुद्ध राष्ट्रीय एवं रचनात्मक था, जिस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति एवं व्यक्ति के मध्य परस्पर अनुकूलता होगी, वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसका सम्मान सुरक्षित होगा। व्यक्ति स्वतंत्र है,इसका अर्थ इस संदर्भ में यह हुआ कि वह स्वतंत्र है, इस बात के लिये कि वह दूसरों के अनुकूल किस प्रकार बन सकेगा? अपने जीवन में दूसरों के अनुकूल बनने के भाव में स्वयं सक्षम एवं समर्थ होना जरूरी होता है, अनुकूल वही हो सकता, जिसकी अपनी सत्ता हो।

डा0 अम्बेडकर सत्य, न्याय, निष्पक्षता एवं अध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित थे। वे भेद–भाव के विरूद्ध थे। समानता के प्रति सम्मान, जीवन और

कर्तव्यनिष्ठा, वैयक्तिक चरित्र में पवित्रता, मानव अध्यात्मवाद में अटूट विश्वास, कर्तव्य व्यवस्था के प्रति निष्ठा, जनतांत्रिक विधियों में आस्था, मानव–मानव के मध्य भ्रातृत्व सम्बन्धों में निष्ठा आदि उनके मूलभूत विश्वास एवं उद्देश्य थे। वे राजनीतिक क्रान्ति में आस्था नही रखते थे, पर राजनीतिक सुधारों में उनकी पूरी निष्ठा थी । वे जनमत के आधार पर चुनी गयी सरकार को देश व जाति के हित में मानते थे। वे इसे दूसरी सरकारों से अच्छा मानते थे और मार्क्सवाद को नही मानते थे। डा0 अम्बेडकर भारतीय संचेतना के प्रतिमूर्ति थे। वे धर्म और राजनीति को पृथक रखना चाहते थे। उन्होने धर्म का राजनीति में प्रयोग नहीं किया। वे कुलीन मानसिकता के विरूद्ध थे।

डा0 अम्बेडकर की कृतियों में भारत की परिस्थितियों का विश्लेषण मिलता है। उनका चिन्तन आम आदमी से जुड़कर असाधारण, सत्यनिष्ठ एवं निर्भय हो गया। वे मात्र राजनीतिक न होकर कल्याण में धर्म के दृष्टा एवं मानववादी विचारक थे, जिनका मानव प्रेम अथाह था, उनकी दृष्टि एवं चिन्तन सार्वभौमिक था,फिर भी भारत के अन्य समकालीन नेताओं, सुधारकों एवं विद्धानों से उनकी दृष्टि अलग थी। वे कट्टर परम्परा और निरर्थक पुरातनवाद के विरोधी थे। उनका विचार था मानव समाज का पुर्नगठन व्यक्ति के खुद के प्रयास से सम्भव होसकता है। वे नीचे से ऊपर की ओर चलना चाहते थे। उनका दर्शन सीधे व्यक्ति और उसकी सामाजिक स्थिति से जुड़ा है। वे सामाजिक दलदल में फंसे आदमी को पुनः न्यायोचित समाज में स्थापित करना चाहते थे, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को मूल्यों का आधिकारिक आवंटन हो सके। उनका विचार था कि इसके लिये आन्दोलन के अलावा पर्याप्त वैचारिक आधार होना चाहिये।

डा0 अम्बेडकर ने भारत के दलितों के दुखों का कारण खोजने का प्रयास किया। वे अछूतोद्वार की ललक से बुद्ध के सूत्र पर चले, "संसार में दुख है, दुख का कोई न कोई कारण अवश्य है।" डा0 अम्बेडकर के अनुसार यदि इस दुख के कारण का ज्ञान हो जाये, तो उसके निदान का उपाय खोजा जा सकता है। डा0 अम्बेडकर ने इसका कारण हिन्दू धर्म कुरीतियों एवं रूढ़ियों में खोजा था। उन्होने अपने देश एवं समाज में परिवर्तन लाने का स्वप्न देखा एवं प्रयास किया । वह इतिहास पुरूष थे। उन्होने शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष को जीवन का मूल मंत्र बताया था। भारत ने डा0 अम्बेडकर को उनके योगदान के लिये भारत रत्न की उपाधि से सम्मानित किया है, साथ स्वयं भारतीय समाज गौरान्वित हुआ है।

डा0 अम्बेडकर का विचार था कि सरकार निर्माण के साथ–साथ समाज का निर्माण भी जरूरी है। उनका विचार था कि कांग्रेस मात्र राजनीतिक स्वतत्रता की बाद कर रही है, जबकि वह स्वयं दो हजार वर्षो से मानवीय अधिकारो से वंचित दासता का जीवन जीने वाले दलितों की स्वतंत्रता और उनके मानवाधिकारों की बात करते है। उनकी प्रशंसा स्वयं महात्मा गांधी ने की थी।[1] वे कहते थे, कि डा0 अम्बेडकर में त्याग की शक्ति है, तपस्या की शक्ति है। दलित होने के बावजूद जीवन के उतरार्द्ध में डा0 अम्बेडकर को वे सारी चीजें प्राप्त हो गयी थी, जो किसी सवर्ण के पास होती, पर अपने उद्देश्य से डिगे नही, यह उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व की महानता थी। स्वतंत्र भारत में वे आजीवन मंत्री रह सकते थे, पर वह वंचित हितों के लिये सदैव जिये एवं मरे। डा0 अम्बेडकर दलितों शोषितों, पीड़ितों के आन्दोलन के पुरोधा थे।

---

1. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर पृ0 – 144

उनका संघर्ष अपने लिये नहीं वरन् भारत के करोड़ो दलितों के उत्थान के लिये, या कहें तो विश्व मानवता के लिये था। यह बात उन्हें अन्य नेताओं से अलग कर देती है, कि वे अच्छे इंसान थे। वे सृजनशील राजनीतिज्ञ थे। एक सक्रिय दार्शनिक थे। उन्होने अपने विचारों को भारत की विषम परिस्थितियों में व्यवहारिक रूप दिया था। वे व्यक्ति केन्द्रित व्यवस्था चाहते थे उनकी राजनीति का प्रमुख बिन्दु पददलित व्यक्ति की स्थिति है, इसी कारण उनका चिन्तन,प्रणाली एवं कार्य भारत में लोकप्रिय हो गये। उनका चिन्तन समस्त प्राणियों को प्रेरणास्पद है। उन्होने जीवन भर जातिवाद एवं अन्याय के प्रति संघर्ष किया । वे दलित उत्थान के माध्यम से समाज में समरसता लाना चाहते थे। वे देश के कतिपय मनीषियों, विचारकों एवं दलित वर्ग के उद्धारक के रूप में जाने जाते रहेगे। जिनका नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

डा0 अम्बेडकर ने भावुक होकर कहा था कि, "तुम्हारे लिये मैंने जो कुछ भी किया है, वह बेहद मुसीबतों,अत्यन्त दुखों एवं बेशुमार विरोधियों का मुकाबला करके किया है। यह कारवां, आज जिस जगह पर मै इसे बड़ी मुसीबत से लाया हूँ, तुम्हारा कर्तव्य है, कि यह कारवां सदैव आगे बढ़ता रहे, बेशक कितनी रूकावटें आयें। मेरे अनुयायी यदि इसे आगे न बढ़ा सके, तो इसे यहीं पर छोड़ दें, पर किसी भी हालत में इसे पीछे न जाने दें, आप लागों से यही मेरा संदेश है।"[1] वे आशान्वित थे कि मतदान का अधिकार इस देश का भाग्य तय करेगा, उनका कहना था कि सत्ता को सर्वोपरि सिद्धान्त नहीं होना चाहिये और सामाजिक समरसता का विचार सामाजिक धरातल पर ही सम्भव हो सकता है। डा0 अम्बेडकर के अनुसार आपस में देना ही जीवन है, रोक रखना ही मृत्यु है। मृत्यु को छोड़कर हम जीवन का वरण करें, अमरता का वरण करें। मृत्यु को जीत लें ।

1. शंकरानन्द शास्त्री, युगपुरूष बाबा साहब डा0 भीमराव अम्बेडकर, अन्तिम संदेश

डा0 अम्बेडकर का लक्ष्य स्वतंत्रता को समाज के निम्न से निम्नतम् व्यक्ति तक ले जाना संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से निम्नतम व्यक्ति भी उच्चतम स्थान पर आज पहुंच रहा है। परिस्थितिजन्य विषमताओं का उत्साह के साथ सामना करने वालों के लिये डा0 भीमराव अम्बेडकर प्रेरणा स्तम्भ हैं। सामाजिक एकता का उनका प्रयास स्तुत्य है।. सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत डा0 अम्बेडकर सामाजिक परिवर्तन के महासंघर्ष में शक्ति एवं प्रेरणा के स्त्रोत है। उनका सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन बहुत व्यापक और सभी के लिये भी चिन्तन का व्यापक धरातल प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(BIBLIOGRAPHY)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Bibliography

	लेखक	पुस्तक	प्रकाशन	सन्
1.	अरस्तु	पॉलीटिक्स		

2. अनन्तसदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1995

3. Arun Shorie, Worshipping false Gods, ASA Publication, New Delhi, 1997

4. डा0 आनन्द कौसल्यायन, अछूत कौन और कैसे

5. आर्टीकल 'नन्स' इन कैथोलिक एनसाइक्लोपीडिया वॉ0 II
(डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 151 से उद्धृत)

6. डा0 ए0के0 मित्तल, आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1999

7. डा0 बी0आर0 अम्बेडकर, मि0 गांधी एण्ड इमेंसीपेशन ऑफ अनटचेबिल्स
(डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन पृ0 – 98 से उद्धृत)

8. डा0 अम्बेडकर द्वारा 25 अप्रैल 1998 को दिया गया भाषण

9. डा0 अम्बेडकर, द इण्डियन एन्टीक्विटी

10. डा0 अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड III

11. डा0 अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज खण्ड IX

12. डा0 बाबा साहब अम्बेडकर के पत्र, राहुल प्रकाशन, दिल्ली, 1999

13. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, स्वराज हमारे ऊपर राज, कंचन प्रकाशन, दिल्ली, 2002

14. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अनटचेबिल्स, ठाकर एण्ड कम्पनी लि0, बम्बई, 1945

15. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, राज्य एवं अल्पसंख्यक दलित

16. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, एनहिलेशन ऑफ कास्ट, भीम पत्रिका प्रकाशन, जालन्धर

17. बी0 एल0 ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, 2000

18. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, भारत में जातिप्रथा, कंचन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2002

19. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, रानाडे, गांधी एवं जिन्ना, कंचन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली,

20. दलित जन उभार, बी0 एम0 एन0 प्रकाशन, लखनऊ

21. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं, संगीता प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 1995

22. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इण्डिया, ठाकर एण्ड कम्पनी लि0, बम्बई, 1946

23. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, शूद्र कौन, कंचन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2000

24. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स, मिलिन्द महाविद्यालय, औरंगाबाद, 1955

25. डा0 बी0 एल0 फड़िया, राजनीति विज्ञान के आधार, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

26. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, द प्राबलम ऑफ द रूपी, इट्स ऑरीजन एण्ड इट्स सोल्यूशन, पी0एस0 किंग एण्ड सन्स लि0, लन्दन, 1923

27. डा0 बालकृष्ण पंजाबी, डा0 अम्बेडकर के विचार

28. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, हिन्दू धर्म की रिडल, समता प्रकाशन, नागपुर, 1994

29. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमैन, डा0 अम्बेडकर पब्लिकेशन्स सोसाइटी, हैदराबाद, 1965

30. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, शूद्र कौन थे, मंहगीराम बौद्ध प्रकाशन, पौढ़ीगढ़वाल, 1992

31. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, द बुद्धा एण्ड हिज धम्म, प्यूपिल्स एजूकेशन सोसाइटी, बम्बई, 1957

32. डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर, जातिभेद का उन्मूलन, सागर प्रिन्टिंग प्रेस, मैनपुरी, 1996

33. बुद्ध शरण हंस, डा0 अम्बेडकर के विचार, अम्बेडकर मिशन, पटना, 1990

34. डा0 भगवान दास, दस स्पोक अम्बेडकर, 1,2

35. छोटेलाल ओझा, मुक्तिदूत, अरविन्द प्रकाशन, कोंच (जालौन), 1991

36. सी0 ई0 एम0 जोड, इन्ट्रोडक्शन टू मॉडर्न पॉलिटिकल थियरी

37. डा0 सी0 राजगोपालाचारी, अम्बेडकर रेफ्यूटेड, हिन्द किताब, बॉम्बे, 1946

38. सी0बी0 गेना, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, विकास पब्लिशिंग हाउस, जंगपुरा, नई दिल्ली, 1996

39. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का मानववादी चिन्तन, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993

40. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन, फोनिक्स पब्लिशिंग एजेन्सी, आगरा

41. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का त्रयी सिद्धान्त

42. डा0 डी0 आर0 जाटव, डा0 अम्बेडकर का समाजशास्त्रीय विचार, समता साहित्य सदन, जयपुर

43. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई

44. डा0 धर्मवीर, बालक अम्बेडकर, शेष साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 1990

45. डा0 धर्मवीर, डा0 अम्बेडकर और दलित आन्दोलन, शेष साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 1990

46. दत्तोपंत ठेगड़ी, डा0 बाबा साहब अम्बेडकर, लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, 1973

47. डी0 डी0 बसु, भारत का संविधान एक परिचय, प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1997

48. डार्विन का सिद्धान्त

49. धनंजय कीर, विश्वभूषण, डा0 बाबा साहब अम्बेडकर मानव और तत्व विचार

50. दलित साहित्य, संपादक जयप्रकाश कर्दम, अतिश प्रकाशन, हरिनगर, नई दिल्ली

51. ई0 बार्कर प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थियरी,

52. Farquhar, Modern Religious Movement in India.

53. डा0 जी0 पी0 प्रशान्त, आम्बेडकर इन्कलाब, हयूमन सर्विस चेरिटेबिल ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, लखनऊ, 1997

54. जी0 डब्ल्यू, कनिंघम, प्रॉब्लम्स ऑफ फिलासफी

55. एच0 एल0 पाण्डे, गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1998

56. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, 1999

57. डा0 जगदीश सहाय श्रीवास्तव, पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997

58. कमल शुक्ल, डा0 अम्बेडकर, दिनमान प्रकाशन, बल्लीमारान, दिल्ली, 1990

59. डा0 कुसुम वियोगी, डा0 अम्बेडकर के क्रान्तिकारी भाषण, ग्रन्थ भारती, दिल्ली,2002

60. एम0 एन0 दास, द पॉलिटिकल फिलासफी ऑफ जवाहर लाल नेहरू, 1961

61. प्रो0 मधु लिमये, डा0 अम्बेडकर एक चिन्तन

62. एम0 वी0 पायली, भारतीय संविधान

63. ओ0 पी0 गाबा, राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1994

64. डा0 प्यारेलाल आदर्श, भारतीय संविधान, भीम पुस्तक भण्डार, रायबरेली, 2000

65. डा0 पुखराज जैन व डा0 बी0 एल0 फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

66. प्रारूप संविधान

67. डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, डा0 अम्बेडकर जीवन और दर्शन, किताबघर दरियागंज, नई दिल्ली, 1990

68. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

69. डा0 राधेश्याम अग्रवाल, दलितों के मसीहा, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा, 1987

70. रशीदउद्दीन खान, भारत में लोकतन्त्र, एन0सी0ई0आर0टी0

71. राबर्ट एल0 हार्ड ग्रेव द द्रविड़ियन मूवमेन्ट, बम्बई

72. डा0 राधाकृष्णन द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, अनविन बुक्स, लंदन, 1961

73. डा0 आर0 के0 अवस्थी, राजनीतिशास्त्र के नये क्षितिज

74. डा० आर० ए० गौतम, भारत में हिन्दू धर्म के विकासार्थ, विधायिका का उपयोग

75. आर० सी० अग्रवाल, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन, एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1992

76. शंकरानन्द शास्त्री, युग पुरूष बाबा साहब डा० भीमराव अम्बेडकर–जीवन संघर्ष एवं राष्ट्र सेवाएं, डा० बी० आर० अम्बेडकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली, 1990

77. डा० एस० मूर्ति, बाबा साहब डा० भीमराव अम्बेडकर–सामाजिक दर्शन

78. डा० एस० डी० गुरू, स्वराज की दिशा

79. डा० सुभाष काश्यप, संविधानिक विकास एवं स्वाधीनता संघर्ष

80. संविधान निर्मात्री सभा, वाद–विवाद खण्ड XI

81. संविधान निर्मात्री सभा, वाद–विवाद खण्ड VII

82. सूचना एवं जन संम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, सामाजिक न्याय की नई पहल

83. स्वामी विवेकानन्द, द फ्यूचर ऑफ इण्डिया

84. विद्या धर महाजन, आधुनिक राजनीतिक विचारधाराए, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली, 1964

85. डा० विजय कुमार पुजारी, डा० अम्बेडकर जीवन और दर्शन

86. डा० डब्ल्यू एन कुबेर, आधुनिक भारत के निर्माता भीमराव अम्बेडकर

पत्र पत्रिकाएं

1. दैनिक जागरण — 16 अप्रैल 95; 4 अक्टूबर 96; 13 दिसम्बर 96; 11 सितम्बर 97; 14 सितम्बर 98; 17 मार्च 02

2. दिनमान

3. इण्डिया टुडे — 3 जनवरी 02; 10 जुलाई 02

4. हरिजन सेवक 11 जनवरी 1936

18 मई 1940

28 जुलाई 1946

5. पांचजन्य, भारत प्रकाशन दिल्ली, 23 जनवरी 1994

6. अम्बेडकर वाणी, इन्दौर

7. भीम पत्रिका, जालन्धर

8. अनार्य भारत, पाक्षिक, मैनपुरी (उ0प्र0)